H·0·925
GER खतर
0 VOLTS 400 वोल्ट्स
फ़ैसला
कुलदीप न
इमर्जेंसी का कच्चा चिट्ठा

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

24.11.80

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।

फ़ैसला
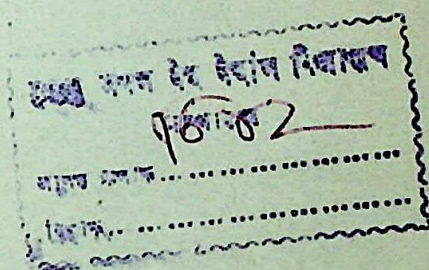
इमर्जेंसी का कच्चा चिट्ठा

कुलदीप नय्यर

हिन्दी रूपान्तर

मानस कश्यप

राधाकृष्ण

Originally published by
VIKAS PUBLISHING HOUSE PVT LTD
5, Ansari Road, New Delhi-110002 (India)
in the English language under the title
THE JUDGEMENT : Inside Story of the Emergency in India

प्रथम हिन्दी संस्करण : जुलाई, 1977
चतुर्थ आवृत्ति : सितम्बर, 1977

मूल्य
पेपरबैक संस्करण : 18 रुपये
सजिल्द संस्करण : 24 रुपये

आवरण सज्जा : सुकुमार शंकर

प्रकाशक
राधाकृष्ण
2, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-110002

मुद्रक : हरजीत आर्ट प्रेस, दिल्ली-110006.

यह पुस्तक
भारत की जनता को समर्पित है
जिसमें यह फ़ैसला करने की शक्ति थी
और जिसने यह फ़ैसला किया।

भूमिका

25 जून 1975 को आधी रात के समय अचानक टेलीफोन की घंटी बजी और मेरी आँख खुल गयी। उधर से कोई भोपाल से बात कर रहा था। वहाँ सड़कों पर पुलिस-ही-पुलिस दिखायी दे रही थी। वह चाहता था कि मैं पता लगाकर बताऊँ कि ऐसा क्यों है? मैंने अलसाये हुए स्वर में कहा कि अच्छा पता लगाऊँगा और टेलीफोन रख दिया। टेलीफोन रखते ही फिर घंटी बजी। इस बार जालंधर के एक अखबार से टेलीफोन आया था और उधर से जो आदमी बोल रहा था उसने बताया कि पुलिस ने प्रेस पर कब्ज़ा कर लिया था और उस दिन के सारे अखबार ज़ब्त कर लिये थे। इसके बाद मेरे अपने दफ़्तर से टेलीफोन आया कि बहादुरशाह जफ़र मार्ग पर सारे अखबारों के दफ़्तरों की बिजली काट दी गयी है और ग़ैर-सरकारी सूत्रों का कहना था कि वह 'जल्दी' लौटकर आने वाली नहीं है।

सच पूछिये तो मैंने इन घटनाओं के बीच आपस में कोई सम्बन्ध नहीं देखा। मैंने सोचा कि नौकरशाही एक बार फिर अपने हथकंडे आज़मा रही है। कई महीने पहले बस-ड्राइवरों की हड़ताल के मौक़े पर दिल्ली के अखबारों के दफ़्तरों की बिजली काट दी गयी थी; दस घंटे बाद बिजली आयी थी। शायद सरकार नहीं चाहती थी कि जयप्रकाश की 25 जून वाली उस मीटिंग की खबर अखबारों में छपे जिसमें उन्होंने सत्याग्रह का नारा दिया था।

इतने में इरफ़ान खाँ का टेलीफोन आया, जो उन दिनों जयप्रकाश के शुरू किये हुए साप्ताहिक अखबार एवरीमैंस में काम कर रहे थे। उन्होंने बताया कि उन्हें खबर मिली थी कि जयप्रकाश, मोरारजी और चन्द्रशेखर सहित बहुत-से नेता गिरफ़्तार कर लिये गये हैं। इसके कुछ ही घंटे बाद इमर्जेंसी और सेंसरशिप लागू होने का ऐलान आया; सारे राष्ट्र को जंजीरों में जकड़ दिया गया था और उसकी जबान बन्द कर दी गयी थी।

किसी भी अखबारवाले को किसी भी दूसरी बात से इतनी निराशा नहीं होती जितनी कि इस बात से कि उसे ऐसी खबरें जमा करनी पड़ें जिनके बारे में वह जानता हो कि वे छप नहीं सकतीं। जल्द ही यह बात ज़ाहिर हो गयी कि इमर्जेंसी का हमला 'कामयाब' हो गया था और ऐसा लगता था कि जनतन्त्र को अब ऐसी रात का सामना करना पड़ेगा जिसका कोई अन्त नहीं होगा। लेकिन

सुबह की उम्मीद कितनी ही धुंधली क्यों न रही हो, जब मैं इमर्जेंसी लागू किये जाने की वजहों का पता लगाने निकला तो मेरे मन में हर बात को दर्ज करते जाने और किसी दिन किताब लिखने का विचार उठा। जानकारी जमा करना बहुत कठिन काम था।

ऐसा खौफ़ छाया हुआ था, चारों तरफ़ इतनी दहशत थी कि शायद ही कोई जबान खोलता हो। कुछ बातों का पता तो मुझे चला लेकिन 26 जुलाई को मैं गिरफ़्तार कर लिया गया। सात हफ़्ते बाद जब मुझे रिहा कर दिया गया तब मैंने फिर से इसका सिरा पकड़ा।

चुनावों का ऐलान होने के साथ ही 18 जनवरी को इमर्जेंसी में ढील पड़ने के बाद भी बहुत थोड़े ही लोग थे जो मुझसे बात करने को तैयार थे। लेकिन चुनावों के बाद हर चीज बदल गयी और मैंने संजय गांधी, आर० के० धवन, एच० आर० गोखले, चन्द्रजीत यादव, रुखसाना सुल्ताना, बेगम आबिदा अहमद और पुलिस के और दूसरे विभागों के चोटी के अफ़सरों से बात की। इन सभी लोगों ने कहा कि किसी बात के साथ उनका नाम न जोड़ा जाये और मैंने अपना वायदा पूरी तरह निभाया है। लेकिन इन सभी लोगों ने बहुत खुलकर बातें कीं और इमर्जेंसी की कहानी का लगभग सारा ताना-बाना मैंने इन्हीं लोगों की बातों की बुनियाद पर बुना है। मैंने कम-से-कम छः बार श्रीमती गांधी से इंटरव्यू लेने की कोशिश की लेकिन वह राज़ी नहीं हुईं।

इमर्जेंसी के दौरान दो बार मैंने लगभग पूरे देश का दौरा किया—एक बार अक्तूबर-नवम्बर 1975 में और फिर 1976 के मध्य में। इन यात्राओं के दौरान मैं बहुत-से लोगों से मिला और मैंने बहुत-सी सामग्री भी जमा की। मैंने कुछ 'अण्डरग्राउण्ड' प्रकाशन भी जमा किये जो दहशत के उन उन्नीस महीनों के दौरान छापे गये थे।

मैं यह दावा नहीं करता कि इमर्जेंसी के बारे में सारी बातें इस किताब में हैं। एक बात तो यह कि यह इतनी लम्बी कहानी है कि एक लाख शब्दों में पूरी बयान नहीं की जा सकती; दूसरे, इमर्जेंसी हटने के बाद जो बहुत-से आरोप लगाये गये हैं, और जो बहुत-सी अफ़वाहें फैली हैं उनकी मैं पूरी तरह छानबीन नहीं कर पाया हूँ और इमर्जेंसी के दौरान बहुत-से लोगों की काली करतूतों पर राज़ का जो पर्दा पड़ा हुआ है उसे भी मैं नहीं चीर सका हूँ। लेकिन इस किताब में जो कुछ भी दिया गया है उसकी सच्चाई के बारे में अच्छी तरह छानबीन कर ली गयी है।

मैं जानता हूँ कि कुछ बातें जो मैंने चुनकर निकाली हैं वे इनमें से कुछ लोगों को अच्छी नहीं लगेंगी और मुमकिन है कि वे उनका खण्डन भी करें। मैं उनसे कोई झगड़ा नहीं करना चाहता। मैंने तो घटनाओं को सच्चाई के साथ बयान कर देने का अपना काम किया है; मुझे किसी से द्वेष नहीं है। अपनी योग्यता भर मैंने चीज़ों को उनके असली रूप में बयान कर देने की कोशिश की है।

अपनी यात्राओं और लोगों से बातचीत के दौरान मैंने एक बात यह देखी है कि लगभग हर आदमी कितना ही सहमा हुआ क्यों न रहा हो पर निरंकुश शासन को स्वीकार किसी ने नहीं किया था। लोगों में डर था, जो कुछ उनसे कहा जाता था वे वैसा ही करते भी थे, पर उन्होंने इस शासन को कभी स्वीकार नहीं किया। लोगों के मन में यह डर किसने बिठाया था और इसकी क्या वजह है कि सरकार के अन्दर और दूसरी जगहों में भी लगभग किसी ने भी इस दबाव का मुक़ाबला करने की कोशिश नहीं की ? इन सवालों के बारे में खुली बहस होनी चाहिए।

—कुलदीप नय्यर

क्रम

डिक्टेटरशिप की ओर

प्रधानमंत्री की कोठी के एक छोटे-से अँधेरे कमरे में दो टेलिप्रिंटर लगातार खड़खड़ा रहे थे और शब्दों की एक अविराम धारा उँडेलते जा रहे थे। सुबह के वक़्त, जब काम ज्यादा नहीं होता, प्रेस ट्रस्ट ऑफ़ इण्डिया (पी० टी० आई०) और यूनाइटेड न्यूज़ ऑफ़ इण्डिया (यू० एन० आई०) के दफ़्तर रात की आयी हुई खबरों को निबटा रहे थे। आमतौर पर कोई इन मशीनों की ओर झाँककर भी नहीं देखता था, कम-से-कम दिन में इतनी जल्दी तो नहीं ही देखता था।

लेकिन 12 जून 1975 को श्रीमती इन्दिरा गांधी के सबसे सीनियर प्राइवेट सेक्रेटरी नेइवुलने कृष्ण अय्यर शेषन, घबराये हुए एक मशीन से दूसरी मशीन के बीच चक्कर लगा रहे थे। कमरे में डरावना सन्नाटा छाया हुआ था, जिसे टेलिप्रिंटरों और टेलीफोन का शोर भी नहीं बेध पा रहा था।

बहुत बड़ी खबर आनेवाली थी और शेषन बड़ी बेचैनी से उसका इन्तज़ार कर रहे थे। उस दिन इलाहाबाद हाईकोर्ट के जज जस्टिस जगमोहन लाल सिनहा 1971 में लोकसभा के लिए प्रधानमंत्री के चुने जाने के खिलाफ़ राजनारायण की दायर की हुई याचिका पर अपना फ़ैसला सुनानेवाले थे। लगभग 10 बजनेवाले थे और कुछ ही देर पहले इलाहाबाद टेलीफोन करने पर पता चला था कि जज साहब अभी अपने घर से नहीं निकले थे।

शेषन ने सोचा सिनहा साहब भी अजीब आदमी हैं। हर आदमी की एक क़ीमत होती है, लेकिन सिनहा साहब की शायद नहीं थी। उन्हें न कोई लालच दिया जा सकता था और न ही उनसे दबाव डालकर कोई काम कराया जा सकता था।

श्रीमती गांधी के अपने प्रान्त उत्तर प्रदेश के एक संसद सदस्य ने इलाहाबाद जाकर बातों-बातों में सिनहा साहब से इसका ज़िक्र किया था कि क्या 5,00,000 रु० में उनका काम चल जायेगा। सिनहा साहब ने कोई जवाब नहीं दिया था। बाद में उनके एक साथी जज ने उनसे कहा था कि मुझे उम्मीद है कि 'फ़सले के बाद' आपको तरक्क़ी देकर सुप्रीम कोर्ट भेज दिया जायेगा। सिनहा साहब ने बस उन्हें तिरस्कार भरी नजरों से देखा था।

फ़ैसले को टलवाने की कोशिशें भी बेकार साबित हुई थीं। गृह मंत्रालय के ज्वाइंट सेक्रेटरी प्रेम प्रकाश नैयर उत्तर प्रदेश हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस से देहरादून में मिले थे और उनके सामने यह सुझाव रखा था कि अगर फ़ैसला प्रधानमंत्री के अपनी विदेश-यात्रा पूरी कर लेने तक के लिए टाल दिया जाये तो अच्छा हो—फ़ैसला ख़िलाफ़ होने पर ऐसी हालत में बड़ी परेशानी होगी।

चीफ़ जस्टिस साहब ने यह प्रार्थना सिनहा साहब तक पहुँचा दी। जज साहब इतना नाराज हुए कि उन्होंने फ़ौरन अदालत के रजिस्ट्रार को टेलीफोन किया और यह ऐलान कर देने को कहा कि 12 जून को फ़ैसला सुनाया जायेगा। सिनहा साहब ने

शासक कांग्रेस पार्टी के साथ इतनी रिआयत की थी कि उन्होंने 8 जून को गुजरात विधान सभा के चुनाव से पहले फ़ैसला सुनाने की तारीख़ नहीं रखी थी ताकि चुनाव के नतीजों पर उसका असर न पड़े।

फ़ैसला क्या होगा इसका पता जज साहब और उनके स्टेनोग्राफर के अलावा किसी को भी न था, न शेषन को और न किसी और को। खुफिया विभाग के लोग भी कुछ पता नहीं लगा सके थे। उसके कुछ लोग सिनहा साहब के स्टेनोग्राफर नेगीराम निगम को बहला-फुसलाकर भेद लेने के लिए नई दिल्ली से इलाहाबाद तक गये थे। मगर वह भी अपने साहब के ही साँचे में ढला हुआ लगता था। धमकियों से भी कोई काम नहीं निकला। और 11 जून की रात से वह और उसकी पत्नी अपने घर से 'लापता' थे। उनके कोई बच्चा था नहीं और खुफिया विभाग के लोग जब वहाँ पहुँचे तो घर में बिलकुल सन्नाटा था।

प्रधानमंत्री के सेक्रेटेरियट के लिए उम्मीद की केवल एक किरण यह थी कि सिनहा साहब की धार्मिक प्रवृत्ति को जानते हुए उनके घर के बाहर जो एक साधु तैनात किया गया था उसने बताया था कि "सब-कुछ ठीक हो जायेगा।" अन्य गुप्त-चरों के साथ वह भी कई दिन से सिनहा साहब की कोठी की चारदीवारी के बाहर डटा हुआ था। लेकिन उसे इस बात का पता नहीं हो सकता था कि सिनहा साहब ने अपने स्टेनोग्राफर को क्या लिखवाया है। फ़ैसले का असली हिस्सा सिनहा साहब के सामने 11 जून को ही टाइप किया गया था, और शायद सिनहा साहब ने उसी वक़्त अपने स्टेनोग्राफर को 'लापता' हो जाने के लिए कह दिया था।

सिनहा साहब जिन नतीजों पर पहुंचे थे वे उन्होंने बिलकुल अपने ही तक रखे थे। मुक़दमे की सुनवाई के दौरान भी यह पता लगाना मुश्किल था कि उनका झुकाव किस तरफ़ है। अगर वह एक पक्ष से दो सवाल पूछते थे तो इस बात का पूरा ध्यान रखते थे कि दूसरे पक्ष से भी उतने ही सवाल पूछें। सुनवाई में चार साल लगे थे, और जब वह 23 मई, 1975 को ख़त्म हुई थी उसके बाद से न वह अपने घर से बाहर निकले थे और न ही उन्होंने किसी का टेलीफोन उठाकर सुना था।

शेषन ने एक बार फिर अपनी घड़ी देखी। टेलिप्रिंटर लगातार इधर-उधर की खबरें खड़खड़ाये जा रहे थे, जिनका कोई महत्त्व नहीं था। शेषन ने एक बार फिर घड़ी देखी। दस बजने में पाँच मिनट रह गये थे। सिनहा साहब वक़्त के बहुत पाबन्द थे। वह अब ज़रूर हाईकोर्ट पहुँच गये होंगे। हाँ, वह पहुँच गये थे। जज साहब दुबले-पतले शरीर के, पचपन वर्ष के आदमी थे। वह अपनी मोटर पर घर से सीधे अदालत आये थे। जैसे ही वह कमरा नं० 24 में अपनी कुर्सी पर आकर बैठे, एक पेशकार ने, जो बड़े सलीक़े के साफ़-सुथरे कपड़े पहने हुए था, खचाखच भरी हुई अदालत में ऐलान किया, "साहबान, सुनिये, जब जज साहब राजनारायण की चुनाव याचिका पर अपना फ़ैसला सुनायें तो कोई ताली न बजाये।"

सिनहा साहब के सामने 258 पेज का फ़ैसला रखा था। उन्होंने कहा, "इस मुक़दमे में जो सवाल उठाये गये हैं उनके बारे में मैं जिन नतीजों पर पहुँचा हूँ, सिर्फ़ वही मैं पढ़कर सुनाऊँगा।"

इसके बाद उन्होंने कहा, "याचिका मंजूर की जाती है।" एक क्षण तक बिल-कुल सन्नाटा छाया रहा और फिर अचानक तालियों की गड़गड़ाहट गूंज उठी। अखबार वाले टेलीफोनों की तरफ़ लपके और गुप्तचर अपने-अपने दफ़्तरों की ओर।

शेषन ने दस बजकर दो मिनट पर यू० एन० आई० के टेलिप्रिंटर की घंटी बजते सुनी और अचानक उनकी नज़र उस पर बिजली के कौंदे की तरह छपी हुई खबर

पर पड़ी। श्रीमती गांधी का चुनाव रद्द। शेषन ने काग़ज़ मशीन पर से फाड़ा और उस कमरे की तरफ़ लपके जहाँ श्रीमती गांधी बैठी हुई थीं। कमरे के बाहर ही उनकी मुठ-भेड़ उनके बड़े बेटे राजीव से हो गयी, जो इण्डियन एयर लाइंस में पाइलट है। उन्होंने खबर-उसे सुनायी।

राजीव ने जाकर अपनी माँ को बताया, "उन लोगों ने आपका चुनाव रद्द कर दिया है।"

श्रीमती गांधी ने खबर सुनकर कोई तूफ़ान खड़ा नहीं किया। उन्हें शायद कुछ राहत ही मिली कि इन्तज़ार से तो छुटकारा मिला।

कल सारा दिन वह सोच में डूबी रही थीं। उनकी मुसीबत इस बात से और बढ़ गयी थी कि उनके घनिष्ठ मित्र दुर्गाप्रसाद धर का, जो पहले उनके मंत्रिमण्डल में मंत्री थे और बाद में राजदूत होकर मास्को चले गये थे, देहान्त हो गया था लेकिन उस दिन सुबह वह ज़्यादा खुश दिखायी दे रही थीं।

इतने में एक और खबर आयी कि उन्हें छः साल के लिए कोई निर्वाचित पद सँभालने से रोक दिया गया है। इस खबर से वह कुछ परेशान हुईं और ऐसा लगा कि वह अपने भावों को छिपाने की कोशिश कर रही हैं। धीरे-धीरे चलकर वह बैठक में गयीं।

सिनहा साहब ने उन्हें चुनाव में दो भ्रष्ट आचरणों का अपराधी ठहराया था। पहला यह था कि उन्होंने प्रधानमंत्री के सेक्रेटेरियट के आफ़िसर, ऑन स्पेशल ड्यूटी यशपाल कपूर को "चुनाव में अपनी जीत की सम्भावनाएँ बढ़ाने" के लिए इस्तेमाल किया था। सरकारी नौकर होने की हैसियत से उन्हें इस काम के लिए नहीं इस्तेमाल किया जाना चाहिये था। सिनहा साहब ने कहा कि यशपाल कपूर ने हालाँकि श्रीमती गांधी के चुनाव का प्रचार 7 जनवरी 1971 को शुरू किया था और अपनी नौकरी से इस्तीफ़ा 13 जनवरी को जाकर दिया था, लेकिन वह 25 जनवरी तक सरकारी नौकरी पर बने हुए थे। जज साहब के अनुसार श्रीमती गांधी ने "अपने उम्मीदवार होने का ऐलान" 29 दिसम्बर 1970 को कर दिया था, जब उन्होंने नई दिल्ली में एक प्रेस कान्फ्रेंस में भाषण देते हुए चुनाव में खड़े होने के अपने फ़ैसले का ऐलान किया था।

दूसरी अनुचित बात यह थी कि श्रीमती गांधी ने वे मंच बनाने के लिए, जिन पर खड़े होकर उन्होंने चुनाव की मीटिंगों में भाषण दिये थे, उत्तर प्रदेश के सरकारी अफ़सरों की मदद ली थी। लाउडस्पीकरों का और उनके लिए बिजली का इन्तज़ाम भी इन अफ़सरों ने ही किया था।

राजनारायण 1,00,000 से अधिक वोटों से हारे थे; इन अनुचित-आचरणों का चुनाव के नतीजे पर कोई ख़ास असर नहीं पड़ा होगा। प्रधानमंत्री के चुनाव को रद्द कर देने को उचित ठहराने के लिए ये बहुत ही कमज़ोर आधार थे। लगभग बिलकुल वैसी ही बात थी कि सड़क पर आवाजाही के किसी क़ानून को तोड़ने के अपराध में प्रधानमंत्री का चुनाव रद्द कर दिया जाये।

लेकिन क़ानून तो क़ानून होता है और यह बिलकुल साफ़ था कि अगर कोई उम्मीदवार "चुनाव में अपने जीतने की सम्भावना को बढ़ाने के लिए" किसी सरकारी नौकर से मदद लेगा तो यह भ्रष्ट आचरण माना जायेगा। सिनहा साहब ने खुद अपने फ़ैसले में कहा कि उनके लिए कोई और चारा ही नहीं रह गया था। प्रधानमंत्री के लिए क़ानून में अलग से कुछ नहीं कहा गया था और वह इसके अलावा कोई और फ़ैसला दे ही नहीं सकते थे। इस क़ानून को तोड़ने की सज़ा भी तय कर दी गयी थी और जज को अपनी तरफ़ से उसमें हेर-फेर करने का कोई अधिकार नहीं था।

प्रधानमंत्री की कोठी पर जो लोग सबसे पहले पहुँचे वे थे आमतौर पर बहुत प्रसन्नचित्त रहनेवाले पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री सिद्धार्थशंकर रे और कांग्रेस के गोल-मटोल अध्यक्ष देवकान्त बरुआ। उनके चेहरे पर विस्मय छाया हुआ था लेकिन जब श्रीमती गांधी ने कहा कि मुझे इस्तीफ़ा देना पड़ेगा तो दोनों चुप रहे।

जैसे-जैसे खबर फैली, मंत्री और दूसरे लोग घबराये हुए 1 सफ़दरजंग रोड पर ताँता बाँधकर आने लगे। बैठक खचाखच भरी हुई थी। कांग्रेस की एक जनरल सेक्रेटरी श्रीमती पूरबी मुखर्जी आयीं और आते ही फफक-फफककर रोने लगीं। यों तो वहाँ पर जितने लोग मौजूद थे सभी ऐसा लगता था किसी का शोक मनाने आये हैं, लेकिन वे भी समझ रहे थे कि पूरबी मुखर्जी ने अपनी भावनाओं का प्रदर्शन कुछ जरूरत से ज्यादा ही खुलकर किया था। श्रीमती गांधी ने कुछ झुँझलाकर उनसे अपने ऊपर क़ाबू रखने को कहा। प्रधानमंत्री का चेहरा उतरा हुआ पर शान्त था। वह जानती थीं कि उनके पास अब इस्तीफ़ा देने के अलावा कोई चारा ही नहीं रह गया है।

किसी ने सुझाव दिया कि वह सुप्रीम कोर्ट में अपील कर सकती हैं। लेकिन उसमें वक़्त लगेगा। अभी सिद्धार्थशंकर रे, जो प्रधानमंत्री के सबसे निकट होने का दावा करते थे, और क़ानूनमंत्री हरि रामचन्द्र गोखले के बीच बहस हो ही रही थी कि इतने में टेलिप्रिंटर पर एक और खबर आयी कि सिनहा साहब ने अपने फ़ैसले की तामील को बीस दिन तक स्थगित रखने की साफ शब्दों में मंजूरी दे दी है। वातावरण बदल गया; सबने सन्तोष की साँस ली। गोखले[1] ने पक्का पता करने के लिए इलाहा-बाद टेलीफोन किया। बात सच थी। श्रीमती गांधी के लिए फ़ौरन इस्तीफ़ा देना ज़रूरी नहीं था।

लेकिन बस बाल-बाल ही बचाव हो गया था। सिनहा साहब ने फ़ैसले की तामील को स्थगित रखने की अर्ज़ी लगभग नामंज़ूर ही कर दी थी क्योंकि उससे एक दिन पहले खुफ़िया विभाग के लोगों ने उनके स्टेनोग्राफर को जिस तरह परेशान किया था उस पर वह बहुत झल्लाये हुए थे। लेकिन श्रीमती गांधी के वकील वी० एन० खरे ने, जिन्हें फ़ैसला सुनाये जाने के मुश्किल से बारह घंटे पहले हवाई जहाज़ से श्रीनगर से इलाहाबाद पहुँचाया गया था, सिनहा साहब को समझाया कि पुलिस ने उनके स्टेनोग्राफर के साथ जो कुछ भी किया उसमें उनके मुवक्किल का कोई दोष नहीं है। सिनहा साहब ने बात मान ली।

फ़ैसले पर अमल को स्थगित रखने के पक्ष में खरे साहब की दलील यह थी कि नया नेता चुनने में कुछ समय लगेगा और अगर प्रधानमंत्री से तुरन्त अपना पद छोड़ देने को कहा गया तो सारे देश का प्रशासन अस्त-व्यस्त हो जायेगा।

प्रधानमंत्री की कोठी अब तक मंत्रियों, व्यापारियों, बड़े-बड़े सरकारी अफ़सरों और खुशामदियों से खचाखच भर चुकी थी। सिनहा साहब को बुरा-भला कहा जा रहा था। साथ ही इस बात पर सन्तोष भी था कि उन्होंने अपने फ़ैसले पर अमल स्थगित कर दिया था। अब उस वटवृक्ष को बचाने के लिए कुछ समय मिल गया था जिसकी छाया में अब तक इन लोगों को शरण मिली हुई थी, वैसे ही जैसे उनके पिता के ज़माने में भी ये लोग वटवृक्ष की छाया में पनपते रहे थे।

संकट की इस घड़ी में राजीव अपनी माँ के पास था। पर श्रीमती गांधी का

1. आधे घंटे बाद उन्होंने सुप्रीम कोर्ट के अवकाशकालीन जज कृष्ण अय्यर को टेलीफोन किया, पर उन्होंने बात करने से इंकार कर दिया।

दूसरा बेटा संजय अपने मारुति[1] के कारखाने में था, जो 'जनता' मोटर बनाने के लिए लगाया गया था। इस सारी गड़बड़ी में किसी को उसे खबर भेजने का ध्यान ही नहीं आया था, हालाँकि इधर कुछ दिनों से अपनी माँ को उन कम्युनिस्टों से बचाने के लिए, जिनसे उसे नफ़रत थी, उसने राजनीति में सक्रिय रूप से हिस्सा लेना शुरू कर दिया था; उसका भाई राजीव राजनीति में कोई हिस्सा नहीं लेता था।

जब संजय अपनी विलायती मोटर पर दोपहर के समय घर लौटा तो बाहर उसे एक भीड़ दिखायी दी। वह समझ गया कि क्या हुआ होगा और वह सीधा अपनी माँ के पास गया। उसने कहा कुछ नहीं पर उसे देखते ही माँ का चेहरा खिल उठा। संजय अभी अट्ठाईस ही वर्ष का था पर माँ अपने अनुभव से जानती थी कि उसकी सलाह कितनी 'तजुर्बेकार लोगों जैसी' होती थी।

श्रीमती गांधी ने कमरा बन्द करके अपने परिवारवालों के साथ सलाह-मशविरा किया कि क्या करना चाहिए। उनके दोनों बेटे, राजीव और संजय, इसके खिलाफ़ थे कि वह कुछ दिन के लिए भी इस्तीफ़ा दें। संजय ने यह बात ज्यादा ज़ोर देकर कही। उसने उन्हें वही बात बतायी जो वह खुद पहले से जानती थीं—विपक्ष के लोगों से ज़्यादा उन्हें खुद अपनी पार्टी के लोगों के ऊँचे हौसलों से डरना चाहिए।

इसके बाद वह अपने घर की सामान रखने की कोठरी में चली गयीं। जब भी किसी संकट का सामना होता था वह ऐसा ही करती थीं। यही उनका शरण-स्थल था, जहाँ उन्हें सोचने का समय और अवसर मिलता था।

उन्हें बहुत-सी बातों के बारे में सोचना था। अगर मैं अभी इस्तीफ़ा दे दूँ और सुप्रीम कोर्ट से 'बरी' होने के बाद फिर वापस आ जाऊँ तो मेरे उन आलोचकों का मुँह बन्द हो जायेगा, जो यह आरोप लगाते हैं कि मैं हर क़ीमत पर कुर्सी से चिपकी रहना चाहती हूँ। लेकिन अगर सुप्रीम कोर्ट ने भी इलाहाबाद हाईकोर्ट के फ़ैसले को सही ठहराया तो मुझे हमेशा के लिए अपनी कुर्सी छोड़नी पड़ेगी और एक और कलंक ऊपर से लगा रहेगा।

उन्हें भरोसा नहीं था कि जो अपील वह दायर करेंगी उस पर अदालत का रवैया क्या होगा। अबसे पहले भी जिन सदस्यों का चुनाव हाईकोर्ट से रद्द हो गया था या पाबन्दी लगा दी गयी थी, उन्हें भी सदन में बैठने की इजाज़त दे दी गयी थी, लेकिन उन्हें वोट देने, बहस में हिस्सा लेने या भत्ता पाने का अधिकार नहीं होता था। अगर अदालत ने कुछ शर्तें लगाकर फ़ैसला उनके पक्ष में दिया तो?

उनके सलाहकारों ने संविधान की 88वीं धारा का आसरा लगा रखा था, जिसमें कहा गया था कि 'वोट देने का अधिकार' न होने पर भी किसी भी मंत्री या एटार्नी-जनरल को दोनों ही सदनों में बोलने और बहस में हिस्सा लेने का 'अधिकार होगा'। स्थगन आदेश किसी भी ढंग का हो पर अदालत यह अधिकार किसी भी मंत्री से नहीं छीन सकती थी।

अगर मैं इस्तीफ़ा दे दूँ तो सारी दुनिया में मेरी वाह-वाह होगी; एक सच्चे जनवादी की हैसियत से मेरी साख इतनी बढ़ जायेगी कि अबकी जब चुनाव होगा तो एक बार फिर 1971 की तरह सत्ता मेरे हाथ में आ जायेगी। लेकिन अगर सुप्रीम कोर्ट ने मुझ पर छः साल के लिए चुनाव न लड़ने की पाबन्दी लगा दी तो? इतना समय तो बहुत होता है—इतने समय में तो लोग मेरा किया हुआ सारा अच्छा काम भूल भी जायेंगे, और खुद मेरी पार्टी के अन्दर के और उसके बाहर के सत्ता के लालची लोगों

1. पूरी कहानी परिशिष्ट 1 में पढ़िये।

को मेरे गढ़े हुए मुर्दे उखाड़ने का काफ़ी मौक़ा मिल जायेगा।

संजय ही उनका अकेला सहारा था। उन्हें पूरा भरोसा था कि इस आड़े वक़्त में वही उनके काम आयेगा। कहा जाता है कि 1971 के चुनाव में चुनाव जीतनेवाला यह नारा उसी का दिया हुआ था, "वह कहते हैं 'इन्दिरा हटाओ', लेकिन मैं कहती हूँ 'ग़रीबी हटाओ'।" लेकिन अब सिर्फ़ नारा गढ़ लेने से काम नहीं चलनेवाला था। वह जानता था कि उसकी माँ आसानी से हार माननेवाली नहीं थीं, लेकिन इस समय तो वह यही करने जा रही थीं। ऐसा किसी हालत में नहीं होने दिया जायेगा। मुझे जनता का समर्थन जुटाना होगा, न सिर्फ़ माँ को यक़ीन दिलाने के लिए कि देश को उनकी ज़रूरत है, बल्कि उनके दुश्मनों को दूर रखने के लिए भी।

संजय ने दून स्कूल में अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ दी थी और फिर इंग्लैंड में रोल्स रायस के कारखाने में अप्रेंटिस मेकैनिक रहा था। राजनीति में 'अपने पाँव जमाने' के लिए उसे क्या कुछ न करना पड़ा था। धन और सत्ता दोनों से उसे बहुत लगाव था और अब ये दोनों ही चीज़ें उसे मिलना शुरू हो गयी थीं।

उसके खास मददगार थे 35 वर्षीय राजेन्द्रकुमार धवन, जो प्रधानमंत्री के सेक्रेटेरियट में एडीशनल प्राइवेट सेक्रेटरी थे। अब से कोई दस-बारह साल पहले तक वह रेलवे में 450 रु० महीने पर क्लर्क थे। धवन के पास इस समय जो कुछ था वह संजय की बदौलत था; दोनों बहुत गहरे दोस्त थे और कितने ही हंगामों में दोनों साथ थे। श्रीमती गांधी को कोई भी काम पड़ता तो सबसे पहले उन्हीं को सौंपा जाता। कुछ लोग तो उन्हें दूसरा एम^ ओ० मथाई भी कहते थे, जो नेहरू के स्टेनोग्राफर थे और उनके दफ़्तर में एक सबसे प्रभावशाली आदमी बन गये थे।

संजय इस तुच्छ सरकारी अफ़सर के सहारे सारी सरकार की मशीनरी को अपने इशारों पर नचाता था, या बात इसकी उल्टी थी? धवन के हाथ में इतनी ताक़त थी कि किसी भी छोटे-मोटे मंत्री या बड़े-से-बड़े अफ़सर को तो वह चुटकियों में उड़ा सकता था; वह जो कुछ कहता था उसे प्रधानमंत्री का कहा हुआ समझा जाता था। एक बार उसने एक मंत्री को इस बात पर बहुत लताड़ा कि उसने प्रधानमंत्री के सेक्रेटेरियट को किसी महत्त्वपूर्ण सवाल के बारे में याद दिलाने के लिए दूसरा पत्र भेज दिया था।

संजय के एक और बहुत गहरे दोस्त थे, हालाँकि वह उम्र में उससे बहुत बड़े थे। वह थे 52 वर्षीय बंसीलाल, हरियाणा के मुख्यमंत्री, जहाँ वह इस तरह शासन करते थे मानो वह उनकी जागीर हो। उनको उचित-अनुचित, सही-ग़लत की कोई परवाह नहीं थी; उन्हें इससे कोई सरोकार नहीं था कि काम किन तरीक़ों से किया जाये, बस अपना मतलब पूरा होना चाहिए। एक फटीचर वकील से तरक्क़ी करके वह दस वर्ष से भी कम में मुख्यमंत्री बन बैठे थे और इससे भी आगे बढ़ने की तमन्ना रखते थे। उन्होंने ही संजय को मारुति के कारखाने के लिए कौड़ियों के मोल 290 एकड़ ज़मीन दे दी थी और यह क़ीमत चुकाने के लिए सरकारी कर्ज़ ऊपर से दिलवा दिया था। इसके बदले में संजय ने उन्हें प्रधानमंत्री के दरबारे-खास में पहुँचा दिया था। माँ और बेटे दोनों को उन पर पूरा भरोसा था, क्योंकि वह हर वक़्त उनके इशारे पर हाज़िर रहते थे, सही या ग़लत कोई भी काम दे दो पूरा कर देते थे।

श्रीमती गांधी इसी त्रिमूर्ति के बीच घिरी हुई थीं। और उन्हें इन पर सोलह आने भरोसा भी था। सरकार में, पार्टी में और आमतौर पर सारी राजनीति में यही लोग उनकी तरफ़ से सब-कुछ करते थे। वह जानती थीं कि ये लोग कभी-कभी ओछे हथकंडे भी इस्तेमाल करते थे, लेकिन इसमें तो कोई शक नहीं था कि वे काम पूरा कर

देते थे। उन्होंने इन लोगों को मनमानी छूट दे रखी थी क्योंकि इससे उनके क़दम मज़बूत होते थे।

एक और आदमी था जो आड़े वक़्त में काम आता था। वह थे कांग्रेस के अध्यक्ष देवकान्त बरुआ। उन्हें लोग दरबारी मसखरा कहते थे और वह हरदम श्रीमती गांधी के गुण गाया करते थे। श्रीमती गांधी ही उन्हें असम राज्य की राजनीति से निकालकर लायी थीं और उन्हें पहले बिहार का गवर्नर, फिर अपने मंत्रिमण्डल का मंत्री और अन्त में कांग्रेस पार्टी का अध्यक्ष बनाया था। अब वह उनका सहारा ले सकती थीं।

श्रीमती गांधी उन्हें अपने पति फ़ीरोज़ गांधी के एक दोस्त की हैसियत से जानती थीं। पति और पत्नी के बीच, जो दोनों ही अपने हठ के पक्के थे, आयेदिन जो झगड़े उठ खड़े होते थे उनमें बरुआ ने अक्सर बीच में पड़कर सुलह-समझौता कराया था। बरुआ का दक्षिणपंथी कम्युनिस्टों के साथ भी मेल-जोल रह चुका था क्योंकि उससे उनको एक विचारधारा की चमक-दमक मिल गयी थी, जिसका एक पिछड़े हुए देश में बहुत अच्छा असर पड़ता है। यह बात संजय को पसन्द नहीं थी। वह उन्हें तिरस्कार से 'कॉमी' (कम्युनिस्ट का संक्षिप्त रूप) कहता था, लेकिन जब दोनों ही को विपक्ष की ओर से ख़तरे का सामना करना पड़ा तो बरुआ और संजय कम-से-कम उस वक़्त तो साथ आ ही गये।

जल्द ही वे दोनों सारी दुनिया के सामने यह साबित करने में जुट गये कि एक जज कुछ भी कहता रहे पर जनता को इसमें ज़रा भी शक नहीं था कि श्रीमती गांधी उसकी चुनी हुई नेता थीं और रहेंगी। उन्होंने पहला क़दम यह उठाया कि उनकी लोकप्रियता को 'साबित करने' के लिए भीड़ें जुटाना शुरू किया। यह तमाशा वे पहले भी कई बार कर चुके थे। जबर्दस्ती ट्रकें जमा करके गाँवों में भेजी गयीं कि लोगों को अपने नेता के साथ वफ़ादारी का सबूत देने के लिये 1 सफ़दरजंग रोड पर श्रीमती गांधी की कोठी पर लायें। सरकारी (दिल्ली ट्रान्सपोर्ट कार्पोरेशन की) बसें लोगों की भीड़ को मुफ़्त लाने के लिए धड़ल्ले के साथ इस्तेमाल की गयीं। यह दूसरी बात है कि इन मीटिंगों के बाद लोगों को मुफ़्त वापस ले जाने का कोई बन्दोबस्त नहीं था और उन्हें पैदल ही रगड़ते हुए घर वापस जाना पड़ा।

प्रधानमंत्री की कोठी से धवन ने आस-पास के राज्यों, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के मुख्यमंत्रियों को ऐसी ही मीटिंगें कराने के लिए टेलीफोन किया। उन्हें भीड़ें जुटाने के लिए पूरी सरकारी मशीनरी लगा देने का बहुत अनुभव था। जुलाई 1969 में वे यह कर चुके थे, जब श्रीमती गांधी ने 'प्रगतिशील' रूप धारण करने के लिए भारत के चौदह बड़े बैंकों के राष्ट्रीयकरण का फ़ैसला किया था; साथ ही जब वह यह भी दिखाना चाहती थीं कि कांग्रेस में उनके प्रतिद्वंद्वी 74-वर्षीय मोरारजी देसाई 'दक्षिणपंथी' हैं क्योंकि वह बैंकों पर सिर्फ़ 'सामाजिक नियन्त्रण' लागू करना चाहते थे।

देसाई दो बार प्रधानमंत्री बनने की कोशिश कर चुके थे। एक बार 1966 में, जब श्रीमती गांधी से पहलेवाले प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री का ताशकंद में देहान्त हो गया था, और दुबारा 1967 में जब कांग्रेस उस समय की लोकसभा की 520 सीटों में से केवल 285 सीटें जीत पायी थी और किसी तरह बड़ी मुश्किल से उसने सत्ता अपने हाथ में सँभाले रखी थी।

धवन ने 'जनता का समर्थन' जुटाने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी क्योंकि यशपाल कपूर, जो इन बातों का ज्यादा तजुर्बा रखते थे, इन दिनों नज़र से गिर चुके थे। लोग उन्हें इस बात के लिए बहुत बुरा-भला कह रहे थे कि उन्हीं की वजह से

श्रीमती गांधी मुसीबत में फँसीं और उन पर चुनाव में भ्रष्ट आचरण का आरोप लगा। लेकिन धवन यशपाल कपूर की बहन के बेटे थे और उन्होंने अपने मामा से बहुत-कुछ सीखा था। यशपाल कपूर भी रंक से राजा बने थे। एक मामूली स्टेनोग्राफर से बढ़कर वह राज्यसभा के सदस्य बन गये थे, और इससे भी बड़ी बात यह थी कि वह श्रीमती गांधी के राजनीतिक सलाहकार और मुख़बिर थे। कपूर हवा बाँधने में बहुत माहिर थे; जब भी श्रीमती गांधी को जनता में अपनी साख ऊँची करने के लिए किसी सहारे की ज़रूरत पड़ी थी तो यशपाल कपूर बहुत काम आये थे। वह जानते थे कि किस मौक़े पर कौन-सी डोरी खींची जाये।

कुछ दिन तक वह रूठे हुए अपने घर पर ही पड़े रहे। उनसे कह दिया गया था कि इलाहाबाद हाईकोर्ट के फ़ैसले में चूँकि उनका चर्चा ख़ास तौर पर किया गया है इसलिए वह जनता की नज़रों के सामने न आयें। बाद में उन्हें फिर वापस बुला लिया गया। यह नारा उन्होंने ही गढ़ा था कि 'देश की नेता इन्दिरा गांधी'। बरुआ ने यह कहकर कि 'इन्दिरा ही भारत हैं' उसमें चार चाँद लगा दिये थे। बरुआ ने यह सोचा भी नहीं था कि इसकी वजह से बहुत उलझन पैदा हो जायेगी क्योंकि यह नारा उस शपथ से बहुत मिलता-जुलता था जो नाज़ी नौजवानों को दिलायी जाती थी : "एडोल्फ हिटलर ही जर्मनी है, और जर्मनी एडोल्फ हिटलर है।"

मुख्यमंत्रियों को लोगों को बसों में भर-भरकर श्रीमती गांधी की कोठी के बाहरवाले चौराहे पर भेजने में बहुत समय नहीं लगा। 1969 में जब वी० वी० गिरि भारत के राष्ट्रपति चुने गये थे उसी दिन से वहाँ इस तरह के जलसे-जुलूसों के लिए एक बना-बनाया मंच मौजूद था। उस समय श्रीमती गांधी ने इस [illegible] के लिए खुद कांग्रेस के उम्मीदवार संजीव रेड्डी का विरोध किया था और उस समय भी 'प्रतिक्रिया और प्रगति' की लड़ाई में उनके प्रति अपने समर्थन का सबूत देने के लिए भीड़ें 'जुटाई गयी' थीं।

ज़ाहिर है, जनता के लिए राजनीति को सीधे-सादे शब्दों में पेश करना ज़रूरी था। विचारधारा, या विचारधारा को मानने का दावा करने का अपना अलग महत्त्व था। कांग्रेस बहुत अरसे से 'जनवाद' और 'समाजवादी सिद्धान्तों' का दम भरती आयी थी, और इसी वजह से वह उस 'समाजवाद' से थोड़ा-सा अलग दिखायी देती थी जो कि सोशलिस्ट पार्टी की योजना का हिस्सा था। उस समय 'प्रतिक्रियावादी' की टक्कर पर 'प्रगतिशील' शब्द का बहुत चलन था। श्रीमती गांधी प्रगतिशील थीं और सोशलिस्ट राजनारायण प्रतिक्रियावादी थे, और वह जज भी जिसने कुछ प्रतिक्रियावादी क़ानूनों का सहारा लेकर अपना फ़ैसला सुनाया था।

फ़ैसला तो जल्द ही एक आयी-गयी बात हो गया। श्रीमती गांधी ने यह जता दिया कि वह अपनी गद्दी छोड़नेवाली नहीं हैं, क्योंकि 'जनता के विश्वास के सहारे' वह ग़रीबी हटाने और एक नया समाज क़ायम करने के लिए काम करती रहेंगी। कांग्रेस के छात्र संगठन भारतीय राष्ट्रीय छात्र संघ ने, जो बाद में संजय गांधी की सेना 'युवक कांग्रेस' में विलीन हो गया, कहा, "श्रीमती गांधी भारत के करोड़ों दबे-कुचले लोगों और शोषित जनता की नेता हैं; न्याय और बराबरी की बुनियाद पर समाज को बदलकर समाजवादी ढंग का बना देने के संघर्ष में वह उसका नेतृत्व कर रही हैं।" उसने उनके ख़िलाफ़ हाईकोर्ट के फ़ैसले के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा।

श्रीमती गांधी के लिए समर्थन की यह नुमाइश इतनी भोंडी थी कि कांग्रेस के कुछ संसद सदस्यों ने जनता को बहलानेवाले इन जलसे-जुलूसों पर नाक-भौं सिकोड़ी। लेकिन श्रीमती गांधी का एक ही जवाब था, "यह सब-कुछ अपने-आप हो रहा है।"

देश में सेठों-साहूकारों के पाँचों संगठनों ने और बड़े-बड़े उद्योगपतियों ने भी श्रीमती गांधी के समर्थन में अपनी आवाज़ उठायी। उनके 'समाजवादी ढंग के' रवैये के बावजूद ये लोग जानते थे कि अपनी धन-सम्पत्ति और अपने विशेषाधिकारों को बचाये रखने के लिए उन्हीं का सहारा लेना सबसे अच्छा है। उनकी नीतियाँ उन समाजवादी नीतियों से तो कहीं अच्छी थीं जिन्हें लागू करने का विपक्ष के बहुत-से लोग दावा करते थे। उनकी पीठ पर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का भी हाथ था, जिसने अपने 13 जून के प्रस्ताव में कहा था, "दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादी तथाकथित नैतिक आधारों पर प्रधानमंत्री के इस्तीफ़े के लिए छात्रों से जो शोर मचवा रहे हैं, उससे उनके ख़तरनाक राजनीतिक उद्देश्य छिपे नहीं रह सकते।" पार्टी, जिसका रवैया सोवियत-समर्थक था, यह उम्मीद करती थी कि वह कांग्रेस के कंधों पर बैठकर कम्युनिस्ट राज्यसत्ता के दरवाज़े तक पहुँच जायेगी।

श्रीमती गांधी में अपना विश्वास व्यक्त करने में जामिया मिलिया इस्लामिया और भारतीय दलित वर्ग संघ जैसी संस्थाएँ भी पीछे नहीं रहीं। कई वर्षों से वह और उनके पिता धर्म-निरपेक्ष समाज बनाने की कोशिश करते आये थे। ये लोग विपक्ष पर कैसे भरोसा कर सकते थे, जिसमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का संसदीय संगठन जनसंघ शामिल था; राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एक हिन्दू संगठन था, जो हिन्दू संस्कृति के आधार पर, या जिसे उसके संचालक भारतीय संस्कृति कहते थे, एक 'अनुशासनबद्ध' समाज बनाने में विश्वास रखता था।

इस बात के बारे में तो किसी को कोई शक नहीं था कि अगर श्रीमती गांधी का बेटा उनके लिए किराये की भीड़ें न भी जुटाता तब भी उन्हें बहुत व्यापक समर्थन प्राप्त था। विपक्ष भले ही यह कहता रहे कि असल सवाल यह है कि एक अपराधी प्रधानमंत्री को अपने पद पर बने रहना चाहिए या नहीं और उन लोगों के खिलाफ़ जनता को चेतावनी देता रहे जो एक अदालती फ़ैसले को सड़कों पर चुनौती देकर देश के जनवादी ढाँचे को तहस-नहस कर देने पर तुले हुए थे। लेकिन उनकी आवाज़ श्रीमती गांधी की जयजयकार के नारों में लगभग बिलकुल डूबकर रह गयी।

कुछ नौजवान सोशलिस्टों ने अलबत्ता जवाबी प्रदर्शन करने की कोशिश की। जब उनमें से कुछ लोग प्रधानमंत्री की कोठी के बाहर पुलिस का घेरा तोड़कर अन्दर चले गये और 'इन्दिरा गांधी, इस्तीफ़ा दें' के नारे लगाने लगे तो संजय गांधी की खास मददगार लम्बे क़द और खूबसूरत नाक-नक़्शे वाली अंबिका सोनी ने झपटकर एक लड़के को थप्पड़ मार दिया। 35-वर्षीया अंबिका सोनी, जो आगे चलकर युवक कांग्रेस की प्रेसिडेंट बननेवाली थीं, यह साबित कर रही थीं कि वह किसी से पीछे रहनेवाली औरत नहीं हैं। यह देखकर पुलिस को भी फ़ौरन जोश आ गया; विरोध का स्वर उठानेवालों को बुरी तरह पीटा गया और उनमें से कुछ गिरफ़्तार कर लिये गये।

लेकिन इससे विपक्ष ने हिम्मत नहीं हारी। सोवियत-समर्थक भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को छोड़कर, जो श्रीमती गांधी का इसलिए साथ देती थी कि वह समझती थी कि उनका झुकाव रूस की तरफ़ है, विपक्ष की सभी पार्टियों ने ऐलान कर दिया कि वे उन्हें अपना प्रधानमंत्री नहीं मानतीं। उन्होंने उन पर इस बात के लिए वार किया कि हाईकोर्ट के फ़ैसले में अपराधी ठहरा दिये जाने के बाद भी वह गद्दी से चिपकी हुई थीं।

उन सबके लिए—पुराने नेताओं की कांग्रेस पार्टी, हिन्दू राष्ट्रवादी जनसंघ, किसानों के हितों के समर्थक भारतीय लोकदल, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से टूटकर

निकली हुई मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी और सोशलिस्टों के लिए—इलाहाबाद हाईकोर्ट का फ़ैसला मुँहमाँगा वरदान था। वे कई बातों के लिए—भ्रष्टाचार, जनवादी परम्पराओं की तनिक भी परवाह न करने, डिक्टेटरशिप की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति आदि के लिए—श्रीमती गांधी पर बार-बार हमले कर चुके थे, लेकिन कोई भी तरकीब काम नहीं करती थी।

जो काम वे बरसों में नहीं कर पाये थे वह अब अदालत के फ़ैसले ने उनकी तरफ़ से कर दिया था। उन्होंने श्रीमती गांधी के इस्तीफ़े की माँग की और राष्ट्रपति भवन के सामने धरना दिया, हालाँकि राष्ट्रपति उन दिनों कश्मीर गये हुए थे। उन्होंने कहा कि वे श्रीमती गांधी के खिलाफ़ और भी क़ानूनी कार्रवाइयाँ करेंगे और उन्होंने विभिन्न राज्यों में अपनी पार्टियों के कार्यकर्ताओं को इन्दिरा-विरोधी मीटिंगों और प्रदर्शनों की मुहिम तेज़ कर देने का आदेश दे दिया।

विपक्ष की सब पार्टियों को मिलाकर भी संसद में उनके साठ सदस्य भी नहीं थे। लेकिन अब उनका पलड़ा भारी था। उन्होंने नैतिकता और उचित आचरण का सवाल उठाया और जयप्रकाश नारायण को, जो महात्मा गांधी के बाद राष्ट्र के अन्तरात्मा के रखवाले माने जाते थे, सन्देश भिजवाया कि आकर हमारा नेतृत्व कीजिये।

वह अपने लिए जयप्रकाश से अच्छा कोई नेता चुन ही नहीं सकते थे, हालाँकि 1974 में वह जयप्रकाश नारायण को निराश कर चुके थे क्योंकि उन्होंने उनकी यह सलाह नहीं मानी थी कि वे सब एक ही पार्टी में मिलकर कांग्रेस के ख़िलाफ़ चुनाव लड़ें। जयप्रकाश गांधीवादी थे और अंग्रेज़ों के खिलाफ़ 1942 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के हीरो रह चुके थे। वह हमेशा दबे-कुचले और हर चीज़ से वंचित उन बहुमत देशवासियों की तरफ़ से आवाज़ उठाते रहे थे जिनकी अपनी कोई आवाज़ नहीं थी। एक लम्बे अरसे के दौरान वह सार्वजनिक जीवन में साफ़-सुथरेपन और ईमानदारी का प्रतीक बन गये थे। उन्होंने अपने बिहार राज्य में सार्वजनिक जीवन में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार के ख़िलाफ़ जो आन्दोलन शुरू किया था वह धीरे-धीरे ठंडा पड़ गया था। वह आन्दोलन राज्य विधानसभा को भंग कराने जैसे मामूली लक्ष्य में घिरकर रह गया था और उसने उन उच्चतर नैतिक लक्ष्यों को भुला दिया था जिन्हें जयप्रकाश नारायण पूरा करना चाहते थे—एक ऐसा सच्चा जनवादी ढाँचा बनाने की आवश्यकता, जो जनता की ज़रूरतों को पूरा करने के उपाय कर सके और राजनीति को अवसरवाद से छुटकारा दिलाता। लेकिन बिहार आन्दोलन के दौरान जो पेड़ लगाया गया था उसमें दो वर्ष बाद फल लगे।

अब से पहले जयप्रकाश श्रीमती गांधी से इस बात पर झगड़ा करते रहे थे कि उन्होंने भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया और समाजवाद के लक्ष्य के साथ ग़द्दारी की। इलाहाबाद हाईकोर्ट के फ़ैसले में उन्हें नैतिक पुनरुत्थान की, सार्वजनिक जीवन के मानदंडों का स्तर ऊँचा उठाने की लड़ाई फिर शुरू करने का सुनहरा अवसर दिखायी दिया।

बहुत अरसे तक उनके और श्रीमती गांधी के बीच चाचा-भतीजी जैसे सम्बन्ध रहे थे और वह उन्हें इंदु कहते थे। लेकिन कई वर्षों से, खास तौर पर पिछले दो वर्षों से, वे दोनों एक-दूसरे से दूर होते गये थे। वह श्रीमती गांधी को सारे भ्रष्टाचार की जड़ समझते थे और उनकी राय थी कि श्रीमती गांधी ने बुनियादी आदर्शों को नष्ट कर दिया है। इसलिए इलाहाबाद हाईकोर्ट के फ़ैसले के बाद उन्होंने कहा कि श्रीमती गांधी को प्रधानमंत्री बने रहने का कोई अधिकार नहीं है। उन्हें फ़ौरन पद से हट जाना चाहिए। उनका गद्दी से चिपके रहना "सार्वजनिक जीवन में शिष्टता और जन-

वादी आचरण के सरासर खिलाफ़" था।

श्रीमती गांधी जानती थीं कि जयप्रकाश की ताक़त से इंकार नहीं किया जा सकता। जब वह 1 नवम्बर 1974 को उनसे मिले थे—इस मुलाक़ात का बन्दोबस्त दुर्गाप्रसाद धर ने कराया था—तो श्रीमती गांधी इस बात पर राज़ी हो गयी थीं कि अगर वह कोई और माँग न रखें तो बिहार की विधानसभा भंग कर दी जायेगी। जयप्रकाश इसके लिए राज़ी नहीं हुए।

जयप्रकाश नारायण को 17 जून को विपक्ष की पार्टियों का एक फ़ौरी सन्देश मिला कि वह फ़ौरन दिल्ली आकर उनकी विशाल रैली की अगुवाई करें। लेकिन उन्होंने इंकार कर दिया। वह इसके पक्ष में थे कि श्रीमती गांधी ने जो अपील दायर की थी उसके बारे में सुप्रीम कोर्ट का फ़ैसला आ जाने के बाद ही कोई लड़ाई छेड़ी जाये।

जयप्रकाश अच्छी तरह जानते थे कि अगर विपक्ष की पार्टियाँ मिलकर एक हो जायें तो उनकी ताक़त बेहद बढ़ जायेगी। गुजरात विधानसभा के चुनाव में जनता मोर्चे की सफलता इस बात का काफ़ी सबूत था, जहाँ उसने 182 सदस्यों के सदन में 87 सीटें जीती थीं, और छः निर्दलीय सदस्यों के आकर मिल जाने से जनता पार्टी को पूरा बहुमत मिल गया था। कांग्रेस को सिर्फ़ 74 सीटें मिली थीं, जबकि 1972 के चुनाव में, जब विपक्ष की पार्टियों में कोई एका नहीं था, उसने 140 सीटें जीती थीं।

इस चुनाव से पहले वहाँ जयप्रकाश की 'सम्पूर्ण क्रांति' की पहली मुहिम चल चुकी थी। जयप्रकाश गुजरात जैसा आन्दोलन सारे देश में छेड़ना चाहते थे। मौक़ा बहुत अच्छा था लेकिन पहले वह यह सुन लेना चाहते थे कि सुप्रीम कोर्ट को श्रीमती गांधी की अपील के बारे में क्या कहना है। उन्हें उम्मीद थी कि क़ानून की परम्पराओं को देखते हुए देश का सर्वोच्च न्यायालय जस्टिस सिनहा के फ़ैसले को सही ठहराने के अलावा और कुछ कर ही नहीं सकता।

श्रीमती गांधी भी इन्तज़ार कर रही थीं और उन्हें भी यही उम्मीद थी कि अदालत क़ानून का अक्षरशः पालन करने के बजाय उसकी असली भावना के अनुसार फ़ैसला देगी।

अब चूंकि कम्युनिस्ट पार्टी को छोड़कर विपक्ष की सभी पार्टियों ने उन्हें प्रधानमंत्री न मानने का ऐलान कर दिया था इसलिए उनके लिए मुसीबतें ही मुसीबतों का सामना था। संसद की बैठक में वह किस मुँह से जायेंगी।

यों ही उन्हें संसद-सदस्य तुलमोहन राम को दिये गये इंपोर्ट परमिट के बारे में केन्द्रीय जाँच ब्यूरो (सी० बी० आई०) की रिपोर्ट के सिलसिले में संसद में काफ़ी मुसीबत का सामना करना पड़ रहा था। तुलमोहन राम रेल मंत्री ललितनारायण मिश्र के खास आदमी थे, और इससे पहले कि यह परमिट जारी करने की ज़िम्मेदारी किसी के खिलाफ़ साबित की जा सकती, 3 जनवरी 1975 को ललितनारायण मिश्र की हत्या कर दी गयी थी।

एक बार मोरारजी देसाई ने धमकी दी थी कि सी० बी० आई० की रिपोर्ट सबके सामने पेश करने की विपक्ष की एकमत माँग अगर पूरी न की गयी तो वह सदन में सत्याग्रह कर देंगे। श्रीमती गांधी ने स्पीकर गुरदयालसिंह ढिल्लों से बहुत अकड़कर माँग की थी कि मोरारजी देसाई को इस बात पर सदन से बाहर निकाल दिया जाये। बाद में वह स्पीकर के इस फ़ैसले पर बहुत झुंझलायीं कि वह और मोरारजी उनसे उनके चैंबर में मिलें। उन्हें यह अपमान इसलिए चुपचाप सह लेना पड़ा कि जब स्पीकर ने सुना कि उन्हें उनका यह फ़ैसला अच्छा नहीं लगा तो उन्होंने इस्तीफ़ा दे दिया, और

श्रीमती गांधी को उन्हें समझा-बुझाकर राज़ी करना पड़ा कि वह अपने पद पर बने रहें।

इस तरह की गन्दी अफ़वाहें भी उड़ रही थीं कि ललितनारायण मिश्र को मरवा देने में उनका हाथ था। यह सच है कि इंपोर्ट लाइसेंस कांड में उनका हाथ होने की सम्भावना के बारे में जो ले-दे हो रही थी उसकी वजह से उन्होंने उनसे इस्तीफ़ा देने को ज़रूर कहा था। पर उन्हें इस बात पर पछतावा हो रहा था और वह अपने आपको अपराधी समझ रही थीं कि ललितनारायण मिश्र को उनका साथ देने की क़ीमत अपने प्राणों से चुकानी पड़ी थी। संजय और धवन ने रेल-भवन में मिश्रजी के दफ़्तर पर सील लगवा दी, लेकिन इसकी वजह यह थी कि उन्होंने वहाँ मारुति के बारे में कुछ काग़ज़ात जमा कर रखे थे और ये लोग नहीं चाहते थे कि वे काग़ज़ात किसी दूसरे के हाथों में पड़ें। श्रीमती गांधी को भी इस बात का पता चला, लेकिन अभी तक चूंकि उन्होंने कभी मारुति के 'मामलात में दखल' नहीं दिया था इसलिए अब भी उन्होंने इसकी कोई ज़रूरत नहीं समझी।

यह मामला भी संसद में उठेगा। श्रीमती गांधी ने संसद का जुलाई-अगस्त अधिवेशन टलवा देने की बात भी सोची। अगर इंपोर्ट लाइसेंस कांड पर बहस के दौरान विपक्ष ने सदन की कोई कार्रवाई नहीं चलने दी थी, तो इलाहाबाद के फ़ैसले के बाद तो उसका बर्ताव और भी बुरा होगा। और यह नहीं कहा जा सकता था कि 'कामचलाऊ' प्रधानमंत्री का इन दबावों के सामने क्या रवैया होगा।

अपने पद पर बने रहने से उन्हें घटनाक्रम को अपने हिसाब से मोड़ सकने का थोड़ा-बहुत तो मौक़ा मिलेगा। वह किसी हालत में इस्तीफ़ा दे ही नहीं सकती थीं। लेकिन दूसरों को इसका पता नहीं चलने देना चाहिए। लोग उन पर यह शुबहा करें कि वह हर हालत में अपनी गद्दी से चिपकी रहना चाहती हैं, इससे तो कहीं अच्छा होगा कि वह यह जतायें कि दूसरों के समझाने-बुझाने पर ही वह इसके लिए राज़ी हुई हैं। शायद उनका जवाब पहले से जानते हुए भी उन्होंने अपने मंत्रिमण्डल के पुराने अनुभवी साथियों जगजीवनराम, यशवंतराव चव्हाण और स्वर्णसिंह से पूछा कि क्या मेरी अपील पर सुप्रीम कोर्ट का फ़ैसला आने तक मेरे लिए अपने पद पर बने रहना मुनासिब होगा। तीनों ही ने कहा कि अगर उन्होंने इस्तीफ़ा दे दिया तो ग़ज़ब हो जायेगा। लेकिन ऐसा कहने के लिए उन सबकी वजहें अलग-अलग थीं।

जगजीवनराम ने कहा कि उन्हें अदालती कार्रवाई का सिलसिला पूरा हो जाने तक इन्तज़ार करना चाहिए। लेकिन उन्हें अंदेशा था कि सुप्रीम कोर्ट कुछ शर्तों के साथ ही इलाहाबाद हाईकोर्ट के फ़ैसले को स्थगित रखने की मंज़ूरी देगा, क्योंकि ऐसे मामलों में अभी तक सुप्रीम कोर्ट ने कभी बिना किसी शर्त के इस तरह की मंज़ूरी नहीं दी थी। वह सोच रहे थे कि वही विद्रोह का झंडा खड़ा करने के लिए सबसे अच्छा वक़्त होगा। उन्होंने मुझसे उन्हीं दिनों कहा था, "हम सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले तक बड़ी आसानी से इन्तज़ार कर सकते हैं।"

पिछले कुछ वर्षों के दौरान श्रीमती गांधी के साथ जगजीवनराम के सम्बन्ध बिगड़ते गये थे। यहाँ तक कि इधर कुछ दिनों से, बड़े-बड़े सवालों की कौन कहे, छोटे-छोटे सवालों पर भी उनसे सलाह नहीं ली जा रही थी। श्रीमती गांधी हमेशा से जानती थीं कि पार्टी में वह उनके सबसे बड़े प्रतिद्वन्द्वियों में से थे, और 1969 में ज़ाकिर हुसैन के मरने के बाद उन्होंने यही सोचकर उन्हें राष्ट्रपति के पद के लिए कांग्रेस का उम्मीदवार बनाने का सुझाव रखा था कि शायद वह उस ऊँचे पद के लोभ में आ जायेंगे। उन्हें मंत्रिमण्डल में रखने के मुक़ाबले इस सजावटी पद पर रखने में

कोई खतरा नहीं था।

यह सच है कि श्रीमती गांधी ने उन्हें इस बात के लिए माफ़ कर दिया था कि वह दस साल तक इनकम-टैक्स देना 'भूल गये थे'। लेकिन जगजीवनराम यह समझते थे कि उन्होंने मोरारजी के खिलाफ़ उनका साथ देकर यह कर्ज़ चुका दिया है, हालाँकि 1963 में उनके पिता जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस के पुनर्गठन के नाम पर कामराज-योजना में जब जगजीवनराम और मोरारजी दोनों को मंत्रिमण्डल से निकाल दिया था तो दोनों राजनीति के निर्जन वन में साथ-साथ भटकते रहे थे। वह बहुत चालाक और महत्वाकांक्षी आदमी थे और श्रीमती गांधी इस बात को जानती थीं। अगर सुप्रीम कोर्ट का फ़ैसला उनके खिलाफ़ हुआ तो विद्रोह का जोखिम उठाये बिना ही प्रधानमंत्री का ताज अपने-आप ही उन्हें पहना दिया जायेगा। ज़ाहिर है कि ऐसी हालत में जगजीवनराम को फ़ैसले तक इन्तज़ार कर लेने में तकलीफ़ ही क्या हो सकती थी।

चह्वाण के लिए[1] जब तक श्रीमती गांधी बनी हुई थीं तभी तक वह भी बने हुए थे। उनकी तमन्ना बस यही थी कि उनके बाद दूसरे नम्बर पर वही माने जायें। 1969 में राष्ट्रपति के चुनाव में इस भरोसे पर कि उन्हें प्रधानमंत्री बना दिया जायेगा उन्होंने कांग्रेस के पुराने सूरमाओं के साथ वोट दिया था, लेकिन जब पुराने नेताओं की मण्डली ने सौदेबाज़ी शुरू कर दी तो वह फिर श्रीमती गांधी के साथ आ गये थे। इस-लिए विपक्ष वालों के बीच उनकी साख बहुत गिर चुकी थी। जयप्रकाश नारायण के साफ़ शब्दों में यह कह देने के बाद कि प्रधानमंत्री के पद पर उनके मुक़ाबले में वह जगजीवनराम को ज्यादा पसन्द करेंगे,[2] उन्हें अब श्रीमती गांधी का साथ छोड़ने में कोई फ़ायदा नहीं था।

स्वर्णसिंह की साख यह थी कि उनसे किसी का कोई झगड़ा नहीं है। लेकिन जब प्रधानमंत्री के एक खास आदमी से उन्होंने सुना कि अगर उन्होंने कभी भी थोड़े दिन के लिए भी अपने पद से इस्तीफ़ा दिया तो अन्तरिम काल में वह उन्हीं को प्रधान-मंत्री बनायेंगी, तो उनकी उमंगें भी जाग उठीं, वह समझते थे कि वह खुद ही इस्तीफ़ा दे देंगी, और हालाँकि उन्होंने उनको ऐसा न करने की सलाह दी, लेकिन साथ ही यह भी जता दिया कि अगर वह इस्तीफ़ा दे भी दें तब भी कोई हर्ज़ नहीं है।

श्रीमती गांधी के क़ानूनी सलाहकार, ख़ासतौर पर सिद्धार्थशंकर रे और गोखले भी (जिन्होंने इलाहाबाद में उनके मुक़दमे को चौपट करके रख दिया था) उनके इस्तीफ़ा देने के ख़िलाफ़ थे। उनकी दलील यह थी कि सुप्रीम कोर्ट 'दर्शकों को खुश करने' की कोशिश नहीं करेगा जैसा कि इलाहाबाद के जज ने किया था, और इसलिए उन्हें फ़ैसले का इन्तज़ार करना चाहिए। कुछ और लोगों ने, जिनका क़ानून से कोई मतलब नहीं था, यह समझाया कि जिन अपराधों के लिए उन्हें दोषी ठहराया गया है वे सिर्फ़ 'तकनीकी' अपराध हैं।

इस बात से तसल्ली तो बहुत मिली, लेकिन देश में बहुत-से लोग ऐसे भी थे जिनकी समझ में यह बात नहीं आयी कि जनप्रतिनिधित्व अधिनियम में यह कहाँ कहा गया है कि कुछ अपराध तकनीकी होते हैं और कुछ ठोस अपराध होते हैं। 1951 में दो तरह के अपराध हुआ करते थे—मामूली और संगीन। चुनाव रद्द सिर्फ़ संगीन अपराधों की बुनियाद पर किये जाते थे। लेकिन 1956 में नेहरू के जमाने में चुनाव के

1. कांग्रेस के पुराने नेताओं की मण्डली ने, जिसे सिंडीकेट कहा जाता था, चह्वाण से कहा कि वह चुनाव तक के लिए मोरारजी को प्रधानमंत्री बन जाने दें, जो 1972 में होनेवाले थे।
2. जयप्रकाश नारायण ने यह बात मुझको 1974 में अख़बार के लिए एक इंटरव्यू के दौरान बतायी।

क़ानूनों में हेर-फेर करके उन्हें आसान बना दिया गया। जिन अपराधों को भ्रष्ट आचरण माना गया था उनकी सूची काट-छाँटकर बहुत छोटी कर दी गयी थी। लेकिन सरकारी नौकरों को चुनाव के काम के लिए इस्तेमाल करना अब भी अपराध माना गया था। राज्यों के कई मंत्री और संसद के सदस्य और विधायक इसी बुनियाद पर अपनी सीटें खो चुके थे। जब श्रीमती गांधी के मंत्रिमण्डल के आंध्र प्रदेश के मंत्री चेन्ना रेड्डी को चुनाव में भ्रष्टाचार के तरीक़े अपनाने का अपराधी ठहराया गया था तो उन्होंने खुद उनसे इस्तीफ़ा देने को कहा था।

इसी उसूल पर चलकर तो उन्हें भी इस्तीफ़ा दे देना चाहिए था। वह पार्टी के नेताओं से सलाह-मशविरा करती रहीं और इन लोगों ने समझा कि यह उनके ढुलमुलपन की निशानी है। वे लोग खुद अपने-अपने राज्यों के संसद-सदस्यों से सलाह-मशविरा करने लगे।

सबसे महत्त्वपूर्ण मीटिंग चन्द्रजीत यादव के घर पर हुई, जो केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में एक राज्यमंत्री थे और कुछ कम्युनिस्ट विचार रखते थे। बरुआ ने इस मीटिंग की अध्यक्षता की। कांग्रेस के केवल कुछ गिने-चुने भरोसे के नेताओं को इस मीटिंग में बुलाया गया था। उनमें प्रणव मुखर्जी भी थे, जो उस समय बहुत ही छोटे मंत्री थे। इन लोगों ने इस सवाल पर विचार किया कि अगर श्रीमती गांधी को कुछ दिन के लिए भी अपना पद छोड़ना पड़े तो उनकी जगह प्रधानमंत्री किसको बनाया जाये।

दो में से एक को चुनना था—जगजीवनराम या स्वर्णसिंह। ज़्यादातर लोग स्वर्णसिंह के पक्ष में थे, क्योंकि उनके बारे में यह समझा जाता था कि उनसे किसी तरह का खतरा नहीं है और उनसे जो भी कहा जायेगा वही करेंगे। लेकिन जगजीवनराम मंत्रिमण्डल के सबसे पुराने सदस्य थे और उनको इस तरह रास्ते से हटा देने का मतलब यही था कि इन लोगों के मन में जो यह डर था कि अगर सुप्रीम कोर्ट ने श्रीमती गांधी को बरी भी कर दिया तो भी जगजीवनराम पर यह भरोसा नहीं किया जा सकता कि वह उनके लिए फिर गद्दी खाली कर देंगे, वह डर खुलेआम सबके सामने ज़ाहिर हो जाता। इन लोगों की समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाये। इस मौक़े पर जगजीवनराम ने जिस तरह श्रीमती गांधी का साथ दिया था उससे तो इन लोगों को यही लगा कि शायद श्रीमती गांधी को भी उन पर भरोसा करने में कोई संकोच नहीं होता। और अगर उनको नज़रअन्दाज़ किया गया और उन्होंने विद्रोह कर दिया तो शायद पार्टी टूट जाये। ये लोग कोई फ़ैसला नहीं कर सके। प्रणव ने मुझे बताया कि अगर सिद्धार्थशंकर रे केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में होते[1] तो सीधे उन्हीं को अन्तरिम प्रधानमंत्री बना दिया जाता। शायद जगजीवनराम के लिए भी उनसे टक्कर लेना मुश्किल होता।

लेकिन यह कोरी अटकलबाज़ी थी। श्रीमती गांधी अभी अपने पद पर बनी हुई थीं और जब तक वह अपने पद पर थीं तब तक इस बात का पूरा यक़ीन था कि उन्हें वही भरपूर समर्थन मिलता रहेगा जो हमेशा मिलता रहा था।

केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के मंत्रियों, मुख्यमंत्रियों और राज्य के मंत्रियों से कहा गया कि वे श्रीमती गांधी के नेतृत्व में विश्वास प्रकट करते हुए एक शपथ पर दस्तखत करें। चूंकि परमेश्वरनाथ हक्सर[2] मसविदा बहुत अच्छा तैयार करना जानते थे, इसलिए इस शपथ

1. पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री बनने से पहले वह केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में शिक्षामंत्री थे।
2. हक्सर किसी ज़माने में प्रधानमंत्री के सबसे चहेते कर्मचारी थे, लेकिन बाद में जब उन्होंने उनको यह समझाने की कोशिश की कि वह संजय और यशपाल कपूर को 'बढ़ावा' न दें, तो उन्हें दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंका गया और योजना आयोग का डिप्टी चेयरमैन बना दिया गया।

को शब्दों में पिरोने का काम उन्हीं को सौंपा गया। 1969 में जब कांग्रेस के दो टुकड़े हो गये थे उसके दौरान दूसरे पक्ष को भेजे गये लगभग सभी पत्रों का मसविदा उन्होंने ही तैयार किया था। हकसर के मसविदे में ढके-छुपे ढंग से अदालतों की भी आलोचना की गयी थी लेकिन इसे बदल दिया गया क्योंकि जजों को नाराज़ करने से कोई फ़ायदा नहीं था, ज़बकि सुप्रीम कोर्ट में श्रीमती गांधी की अपील की सुनवाई होना अभी बाक़ी थी। लेकिन उनके मसविदे का जो असली हिस्सा था वह ज्यों-का-त्यों रहने दिया गया : "श्रीमती गांधी अब भी प्रधानमंत्री हैं। हम अच्छी तरह सोच-विचार करके इस पक्के नतीजे पर पहुँचे हैं कि देश की अखण्डता, स्थायित्व और प्रगति के लिए उनका गतिवान नेतृत्व नितान्त आवश्यक है।"

इस बयान पर दस्तखत करने के लिए होड़ लग गयी, क्योंकि इसे वफ़ादारी का पट्टा समझा जाने लगा था। संजय अपनी माँ को बराबर बताता रहता था कि किस-किसने अब तक दस्तखत कर दिये हैं। और भला ऐसा कौन था जिसने दस्तखत न किये हों? अखबारों में इन नामों की जो सूची छपी वह बराबर बढ़ती ही जा रही थी।

उड़ीसा की मुख्यमंत्री श्रीमती नन्दिनी सत्पथी उस पर दस्तखत करने के लिए भुवनेश्वर से दिल्ली रात को कुछ देर से पहुँचीं और इस बात पर हठ करने लगीं कि अगले दिन सुबह के अखबारों में दस्तखत करनेवालों की जो सूची छपे उसमें उनका नाम भी शामिल रहे। सरकार के सूचना कार्यालय के अफ़सरों ने सम्पादकों को टेलीफोन करके इसका पक्का बन्दोबस्त करा दिया। इस बात का बहुत महत्त्व था कि सब लोग जान लें कि कौन-कौन श्रीमती गांधी का वफ़ादार है। एक मंत्री जिन्होंने प्रधानमंत्री की कोठी से बार-बार टेलीफोन किये जाने पर भी दस्तखत करने में देर की वह थे स्वर्णसिंह। वह अपने दिमाग़ से किसी तरह यह बात नहीं निकाल पा रहे थे कि अगर श्रीमती गांधी इस्तीफ़ा दे दें तो वह अन्तरिम प्रधानमंत्री बन जायेंगे। और कई महीने बाद उन्हें इसकी क़ीमत चुकानी पड़ी।

इस बीच शहरों और क़स्बों में राज्यों की सरकारों और पार्टी ने अपने खर्चे से लाखों लोगों के प्रदर्शन संगठित किये थे, जो सड़कों पर नारे लगाते फिरते थे कि "हम इलाहाबाद हाईकोर्ट के फ़ैसले को नहीं मानते।" इसमें यह मतलब भी छिपा हुआ था कि अगर सुप्रीम कोर्ट ने इसके पक्ष में फ़ैसला दिया तो वे सुप्रीम कोर्ट का फ़ैसला भी नहीं मानेंगे। श्रीमती गांधी और उनके लोग हर सूरत के लिए पूरी तैयारी कर रहे थे; अगर कोई अदालत किसी चुनाव के बारे में, ख़ासतौर पर प्रधानमंत्री के चुनाव के बारे में, 'तकनीकी' मुद्दों की बुनियाद पर फ़ैसला दे दे तो वह पत्थर की लकीर नहीं हो जाता—जनता अपनी जो मर्ज़ी ज़ाहिर कर दे उसके बारे में तो कोई भी अदालत फ़ैसला नहीं सुना सकती।

श्रीमती गांधी को एक ऐसी जगह से भी समर्थन मिल गया जहाँ से उन्होंने इसकी कोई उम्मीद भी नहीं की थी। टी० स्वामीनाथन पहले उनके कैबिनेट सेक्रेटरी रह चुके थे। पहले तो उनकी नौकरी की मियाद बढ़ा दी गयी थी और बाद में उन्हें श्रीमती गांधी ने चीफ़ एलेक्शन कमिश्नर नियुक्त कर दिया था। उन्होंने ऐलान किया कि उन्हें इस बात का अधिकार था कि अगर कोई भी व्यक्ति, प्रधानमंत्री सहित, किसी निर्वाचित पद पर हो और उसे किसी भी वजह से इसके लिए अयोग्य ठहरा दिया जाये तो वह अयोग्यता के इस आदेश को रद्द कर सकते हैं। नियमों में यही कहा गया था, हालाँकि उनसे पहले वाले चीफ़ एलेक्शन कमिश्नर सेन वर्मा ने 1971 के चुनाव के बारे में अपनी रिपोर्ट में यह कहा था कि एलेक्शन कमिश्नर को इस तरह के 'मनमाने अधिकार' नहीं होने चाहिये।

इस बात की पहले से ही काफ़ी चेतावनी दे दी गयी थी कि सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले को अटल मान लेना ज़रूरी नहीं है। फिर भी श्रीमती गांधी इस बुनियाद पर अदालत में आने वाली लड़ाई की तरफ़ लापरवाही नहीं बरत रही थीं।

उन्होंने सुप्रीम कोर्ट में अपनी अपील की पैरवी के लिए बम्बई के माने हुए वकील नानी ए० पालकीवाला से सम्पर्क किया। पालकीवाला को उस वक़्त प्रतिक्रियावादी कहा गया था जब उन्होंने भेदभाव की बुनियाद पर चौदह भारतीय बैंकों का राष्ट्रीयकरण अदालतों से रद्द करवा दिया था और पुराने देसी रजवाड़ों का गुज़ारा बन्द कर दिये जाने के बारे में इस दलील की बुनियाद पर शंका उठायी थी कि गुज़ारा चूंकि जायदाद का हिस्सा है और जायदाद को संविधान में बुनियादी अधिकार माना गया है इसलिए गुज़ारा बन्द नहीं किया जा सकता।[1] लेकिन वक़्त पड़ने पर श्रीमती गांधी के बुलाने पर पालकीवाला, जो देश के सबसे बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठान टाटा के एक सीनियर डायरेक्टर भी थे, हवाई जहाज़ से दिल्ली पहुँचे। उन्होंने श्रीमती गांधी से कहा कि मैं मुक़दमा जिता सकता हूँ। लेकिन उनका अपने पद पर बने रहना जनवाद की कसौटी पर कहाँ तक खरा उतरता था? लेकिन अब उन्हें किसी को भी यह बताने में कोई झिझक नहीं रह गयी थी कि उन्होंने अपने पद पर बने रहने का फ़ैसला कर लिया है और वह थोड़े दिन के लिए भी अपना पद छोड़ने को तैयार नहीं हैं।

उन्हें कोई पक्का फ़ैसला करना ही था क्योंकि उन्हें इस्तीफ़ा देने पर राज़ी करने के लिए दबाव बढ़ता ही जा रहा था। और यह दबाव विपक्ष की ओर से ही डाला जा रहा हो, ऐसी बात नहीं थी। खुफ़िया विभाग ने यह सूचना दी थी कि कांग्रेस पार्टी के कुछ सदस्य भी यह चाहते थे कि जब तक 'बादल छट न जायें,' मतलब यह कि जब तक वह सुप्रीम कोर्ट से बरी न हो जायें, तब तक के लिए उन्हें इस्तीफ़ा दे देना चाहिये। पुराने सोशलिस्टों का एक छोटा-सा, अपनी धुन का पक्का गिरोह, जिसे युवा-तुर्क कहा जाता था, इस मुहिम में आगे-आगे था। श्रीमती गांधी जानती थीं कि ये लोग क्या कर सकते हैं। एक बार उन्होंने मोरारजी देसाई को नीचा दिखाने के लिए इन लोगों का सहारा लिया था। उन्होंने सरकारी फ़ाइलें युवा तुर्क चन्द्रशेखर को यह साबित करने के लिए दिलवा दी थीं कि अपने बेटे कान्ति देसाई की करतूतों में मोरारजी की 'रज़ामन्दी' शामिल है। कान्ति देसाई ने अपना जीवन एक बीमा एजेण्ट की हैसियत से शुरू किया था और अब एक मालदार व्यापारी बन बैठा था।

यह बात सभी जानते थे कि प्रधानमंत्री की हैसियत से श्रीमती गांधी ने जो कुछ किया था उससे युवा तुर्क खुश नहीं थे। कुछ समय से वह इन लोगों को दबाकर रखने की कोशिश कर रही थीं। हालाँकि वह चन्द्रशेखर के कांग्रेस वर्किंग कमेटी में चुने जाने में रुकावट डालने में सफल नहीं हो पायी थीं, लेकिन उन्होंने राष्ट्रपति से कहकर एक और युवा तुर्क मोहन धारिया को मंत्रिमण्डल से इसलिए निकलवा दिया था कि उन्होंने उनसे जयप्रकाश नारायण के साथ बातचीत शुरू करने के लिए कहा था।

और अब धारिया उनके इस्तीफ़े की माँग कर रहे थे। उनका सुझाव था कि जब तक सुप्रीम कोर्ट उन्हें बरी न कर दे तब तक के लिए उन्हें अपना पद छोड़कर जगजीवनराम या स्वर्णसिंह को प्रधानमंत्री बना देना चाहिये। दूसरे युवा तुर्क भी उनके साथ थे और श्रीमती गांधी को डर था कि यह मांग तेज़ी के साथ बढ़ती ही जायेगी।

1. गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य वाले मुक़दमे में यह फ़ैसला दिया गया था कि मूल अधिकारों पर संसद को 'पुनर्विचार करने का अधिकार नहीं है'।

खुफ़िया रिपोर्टों में बताया गया था कि युवा तुर्कों का जगजीवनराम से लगातार सम्पर्क था और वह विद्रोह की आग भड़का रहे थे। जगजीवनराम ने लगभग बिलकुल खुले तौर पर कहना शुरू कर दिया था कि प्रधानमंत्री के खिलाफ़ अदालत के फ़ैसले को कोई साधारण बात नहीं समझा जाना चाहिये।

वह गिनतियों के खेल में भी हिस्सा लेने लगे थे और यह हिसाब लगाने लगे थे कि अगर मैं विद्रोह कर दूं तो कितने लोग मेरा साथ देंगे। लेकिन उन्होंने देखा कि उनका साथ देनेवालों की संख्या काफ़ी नहीं थी।

श्रीमती गांधी दाँव-पेंच खूब जानती थीं। उन्होंने इस सुझाव का चर्चा करवा दिया कि अगर मैं अपना पद छोड़ने का फ़ैसला करूँ भी तो अगला प्रधानमंत्री नियुक्त करने का अधिकार मुझी को रहना चाहिये। जैसा कि उन्हें अन्देशा था इस सुझाव को किसी ने शुरू से ही नहीं माना—जगजीवनराम और चह्वाण दोनों इसके खिलाफ़ थे।

जगजीवनराम खून का घूंट पीकर रह गये जब उन्हें यह मालूम हुआ कि बहुत थोड़े अरसे के लिए जब श्रीमती गांधी डाँवाडोल थीं तो उनके दिमाग़ में कमलापति त्रिपाठी का नाम था, जिन्हें वह उत्तर प्रदेश से केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में 'कामचलाऊ प्रधानमंत्री' की हैसियत से लायी थीं।

इसके बारे में जगजीवनराम ने यह रवैया अपनाया कि "हम लोग इस शर्त पर त्रिपाठीजी का समर्थन करने को तैयार हैं कि वह श्रीमती गांधी को फिर वापस न आने दें।"

थोड़े दिन के लिए जिसे प्रधानमंत्री बनाया जाये अगर वह अपनी वफ़ादारी से फिर सकता है तो वह आसानी से जाँच बिठाने के लिए भी तैयार हो सकता है, और श्रीमती गांधी बहुत अरसे से जाँच का विरोध करती रही थीं। जाँच से उनकी साख को ऐसा धक्का पहुँचता कि उनके लिए दुबारा सँभल सकना मुश्किल हो जाता। उनकी एक दुखती रग तो उनके बेटे का मोटर का कारखाना मारुति ही था।

दूसरी दुखती रग थी मुक़द्दमे की सुनवाई के दौरान 'दिल का दौरा' पड़ जाने से[1] रुस्तम सोहराब नागरवाला की मौत। नागरवाला पेंशनयाफ़्ता फ़ौजी अफ़सर थे और कहा जाता था कि उन्होंने प्रधानमंत्री और उनके सेक्रेटरी हकसर की आवाज़ की नकल करके नई दिल्ली में स्टेट बैंक ऑफ़ इण्डिया की तिजोरियों से साठ लाख रुपये निकलवा लिये थे। (बैंक के बड़े खज़ांची वेदप्रकाश, जिन्होंने इसकी इजाज़त दी थी, नौकरी छोड़ने के बाद कांग्रेस में चले गये थे।)

श्रीमती गांधी अगर जगजीवनराम पर भरोसा नहीं करती थीं तो इसकी वजह थी। उन्हें यों भी युवा तुर्कों से टक्कर लेनी पड़ रही थी। पार्टी के अन्दर जोड़-तोड़ और तिकड़मों का बाज़ार इतना गर्म होता जा रहा था कि उनके लिए यह ज़रूरी हो गया था कि संसद में उनके भरोसे के लोग हों। उन्होंने सभी मुख्यमंत्रियों को दिल्ली में तलब किया कि वे अपने-अपने राज्यों के संसद-सदस्यों पर 'नियन्त्रण' रखें। वह चाहती थीं कि कांग्रेस संसदीय दल, जिसकी मीटिंग उनके मशविरे से 18 जून के लिए तय की गयी थी, उन्हें अपना भरपूर समर्थन दे। सिद्धार्थशंकर रे और आंध्र प्रदेश से राज्यसभा के सदस्य बी० बी० राजू को इस काम पर तैनात किया गया। उनको हिदायत दी गयी कि जो प्रस्ताव वे तैयार करें उस पर जगजीवनराम से पक्की हामी भरवा लें।

1. एक डॉक्टर ने, जिसका नागरवाला के शव की जाँच से 'कुछ' सम्बन्ध था, मुझे बताया कि दिल का दौरा पड़ने के चिह्न बनावटी तरीक़ों से भी पैदा किये जा सकते हैं।

इन लोगों पर पूरा भरोसा किया जा सकता था कि वे इस काम में कोई कसर उठा न रखेंगे। कांग्रेस संसदीय दल के भरपूर समर्थन का ऐसा सबूत मिल जाने के बाद राष्ट्रपति के लिए विपक्ष की उनको बर्ख़ास्त कर देने की माँग को रद्द कर देना आसान हो जायेगा। संविधान यह कहता था कि जब तक बहुमत दल को उन पर विश्वास रहे तब तक वह प्रधानमंत्री बनी रह सकती थीं।

जिस समय इलाहाबाद हाईकोर्ट का फ़ैसला आया था उस समय राष्ट्रपति फ़ख़रुद्दीन अली अहमद श्रीनगर गये हुए थे। जब उन्होंने फ़ैसला सुना तो वह उसी दिन लौट आना चाहते थे, लेकिन श्रीमती गांधी ने उन्हें टेलीफोन करके ऐसा करने से रोक दिया। अगले तीन दिन तक वह लगातार उनसे पूछते रहे कि वह वापस लौट आयें या नहीं, लेकिन वह नहीं चाहती थीं कि वह वक़्त से पहले अपने दौरे पर से वापस आ जायें कि कहीं लोग इसका कोई गहरा मतलब न लगाने लगें और यह न सोचने लगें कि राष्ट्रपति उनका इस्तीफ़ा लेने के लिए जल्दी वापस आ रहे हैं। राष्ट्रपति भवन के बाहर विपक्ष के लोग यही माँग लेकर धरना दिये बैठे थे।

16 जून को उनके दिल्ली वापस पहुँचने के थोड़ी ही देर बाद श्रीमती गांधी उनसे मिलीं। बहुत ही थोड़ी देर की मुलाक़ात थी, पन्द्रह मिनट से भी कम लगे होंगे, जिसके दौरान उन्होंने राष्ट्रपति को बताया कि इलाहाबाद हाईकोर्ट के ख़िलाफ़ सुप्रीम कोर्ट में अपील दायर करने के सिलसिले में क्या तैयारियाँ की जा रही हैं।

उसी दिन बाद में कम्युनिस्टों को छोड़कर विपक्ष के दूसरे नेताओं के साथ राष्ट्रपति की मुलाक़ात ज़्यादा लम्बी रही। इन लोगों ने उनसे प्रार्थना की कि आप श्रीमती गांधी को अपना पद छोड़ देने का 'हुक्म' दे दें। राष्ट्रपति अहमद ने ज़ाहिर यही किया कि वह इस सुझाव पर विचार कर रहे हैं—वह यह नहीं चाहते थे कि ऐसा लगे कि वह किसी का पक्ष ले रहे हैं; वह इस कलंक को भी धो डालना चाहते थे कि वह श्रीमती गांधी के लिए सिर्फ़ रबड़ की एक मुहर हैं। उन्होंने पहले तो उनसे कहा कि यह तो देख लें कि कांग्रेस संसदीय दल की मीटिंग में क्या नतीजा निकलता है। लेकिन तब उन्होंने महसूस किया कि शायद उन्होंने ग़लत बात कह दी है और मुमकिन है कि इसका यह मतलब लगाया जाये कि वह किसी ऐसी बात की तरफ़ इशारा कर रहे हैं जिसका उनको गुमान भी नहीं था। उन्होंने फ़ौरन अपनी बात बदल दी और कहा कि उनका मतलब यह था कि वे लोग सुप्रीम कोर्ट का फ़ैसला आ जाने तक इन्तज़ार कर लें। उनके प्रेस सेक्रेटरी ने यह सफ़ाई देते हुए एक बयान भी जारी कर दिया ताकि अख़बारों को कोई ग़लतफ़हमी न रह जाये।

राष्ट्रपति से मिलने के बाद विपक्ष के लोगों ने राष्ट्रपति भवन के सामने से अपना धरना उठा लिया। लेकिन इसके साथ ही उन्होंने श्रीमती गांधी को पद छोड़ने पर मजबूर करने के लिए अपनी मुहिम और तेज़ करने का भी फ़ैसला किया। उनमें से कई लोगों ने कांग्रेस पार्टी के सदस्यों के साथ सम्पर्क स्थापित करने की बात भी सोची कि कम-से-कम उनसे यह अपील तो की ही जाये कि वे प्रधानमंत्री के पद की मर्यादा बनाये रखें। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी उस प्रतिनिधिमण्डल में शामिल नहीं थी जो राष्ट्रपति से मिलने गया था, लेकिन उसने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को छोड़कर विपक्ष की बाक़ी सभी पार्टियों की इस माँग का पूरा समर्थन किया कि श्रीमती गांधी अपनी कुर्सी छोड़ दें।

श्रीमती गांधी के इस्तीफ़े की माँग करने के लिए राष्ट्रपति से विपक्ष के लोगों की मुलाक़ात पर वह सबसे ज़्यादा चिढ़ गयीं। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। 1962 में चीनियों के हाथों भारत की हार के बाद जब उनके पिता की साख रसातल पहुँच

गयी थी, तब भी प्रधानमंत्री के इस्तीफ़े की माँग करने के लिए विपक्षवाले एक साथ राष्ट्रपति से नहीं मिले थे।

वह महसूस करने लगी थीं कि वह चारों ओर से घिर गयी हैं। उन्हें सबसे बड़ी चिन्ता विपक्ष की वजह से नहीं बल्कि खुद अपनी पार्टी की वजह से थी, जिसमें असन्तोष उबल रहा था। ज़्यादातर सदस्य यह महसूस कर रहे थे कि अगर वह नेता बनी रहीं तो उनके लिए फ़रवरी 1976 में होनेवाला अगला चुनाव लड़ना नामुमकिन हो जायेगा। जगजीवनराम और युवा तुर्क ज़्यादा-से-ज़्यादा संसद-सदस्यों के साथ सम्पर्क स्थापित कर रहे थे, और उनके सामने यह दलील रख रहे थे कि अदालती फ़ैसलों की मर्यादा बनाये रखने के लिए श्रीमती गांधी को इस्तीफ़ा दे देना चाहिए। यह ऐसी दलील थी जिसे समझने में आम लोगों को भले ही कोई कठिनाई होती पर विधायकों और संसद-सदस्यों को नहीं।

इस खींचातानी का उन पर असर पड़ने लगा था। बात-बात पर अब उन्हें गुस्सा आने लगा था। अब उनके भाषण भी गुस्से से भरे होते थे। "मेरे ख़िलाफ़ तरह-तरह के झूठे इल्ज़ाम लगाये जाते हैं, झूठी बातें कही जाती हैं, मुझे बदनाम करने के लिए उल्टी-सीधी तोहमतें लगायी जाती हैं लेकिन मैं सब-कुछ बर्दाश्त करती रही हूँ।" इस तरह की बातें वह उन मीटिंगों में कहती थीं जो उनके समर्थन के लिए जुटायी जाती थीं।

उन्होंने जस्टिस सिनहा से भी लोहा लिया। खुलेआम उन्होंने कहा कि यशपाल कपूर 14 जनवरी के बाद से सरकारी नौकर नहीं रह गये थे और उसी तारीख से उन्होंने तनख्वाह लेना भी बन्द कर दिया था। (सिनहा साहब ने कहा था कि यशपाल कपूर 25 जनवरी तक सरकारी नौकर की हैसियत से काम करते रहे थे), और यह कि प्रधानमंत्री की मीटिंगों के लिए सरकारी अफ़सरों से मंच बनवाने का चलन उनके पिता के ज़माने में भी था।

अपने भाषणों में वह अक्सर 1971 की बँगला देश की लड़ाई में पाकिस्तान के ख़िलाफ़ भारत की जीत का चर्चा भी ले आती थीं; उस वक़्त उनके सबसे कट्टर विरोधी जनसंघ ने भी कहा था कि वह कांग्रेस पार्टी की नहीं बल्कि भारत की नेता हैं, वह पार्टियों और विचारधाराओं से परे हैं।

वह अपने हर भाषण में विपक्षी दलों पर हमला करने लगीं और पहले की तरह ही सरकार की नीतियों की हर खराबी के लिए उन्हें दोष देने लगीं; ये लोग 'ग़द्दार' थे। वह कहती थीं कि विपक्षवाले ही प्रगति के रास्ते का रोड़ा हैं। अब वह कहने लगीं कि 'स्वार्थी लोगों की तरफ़ से डाली जाने वाली बाधाओं' के बावजूद समाजवाद कामयाबियाँ हासिल करता रहेगा।

विपक्ष की ओर उनके पिता का जो रवैया रहा था उसमें और उनके रवैये में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ था। विपक्ष के बहुत-से लोगों को वह दिन याद थे जब राष्ट्रीय महत्त्व के सवालों पर उनसे सलाह ली जाती थी और खाने की समस्या या राष्ट्रीय एकता की समस्या से सम्बन्ध रखनेवाले कार्यक्रमों में उनका सहयोग माँगा जाता था। अब उन्हें सिर्फ़ कांग्रेस पार्टी के फ़ैसलों की सूचना देने के लिए बुलाया जाता था। वे जानते थे कि संसद में उनकी संख्या बहुत थोड़ी थी। लेकिन ऐसा तो नेहरू के ज़माने में भी था और इसके बावजूद उनसे सलाह ली जाती थी और उनकी बात सुनी जाती थी। नेहरू ने उन्हें कभी यह महसूस नहीं होने दिया कि इन लोगों को उन पर या उनकी सरकार पर उँगली उठाने का कोई अधिकार नहीं है। वह विरोध करने के अधिकार को बढ़ावा देते थे और संसदीय लोकतंत्र में विपक्ष के लिए जो भूमिका तय

की गयी हैं उसे अच्छी तरह समझते थे।

श्रीमती गांधी के लिए विपक्ष बस एक रोड़ा था। उन्होंने विपक्ष पर इल्ज़ाम लगाया कि वह हमेशा अपने राजनीतिक फ़ायदे के लिए देश का सारा काम-काज ठप्प कर देने की कोशिश करता रहता था, और इस सिलसिले में उन्होंने 1974 की रेलवे हड़ताल की मिसाल दी। रेलवे के कुल 13,50,000 नियमित कर्मचारियों में से, जिनमें से 3,50,000 रोज़ाना मज़दूरी पर काम करते थे, लगभग 65 प्रतिशत ने हड़ताल में हिस्सा लिया था, लेकिन सरकार ने उन्हें कुचलने के लिए ऐसे भीषण दमन का सहारा लिया जैसा इससे पहले कभी नहीं देखा गया था—कितने ही लोग नौकरियों से बर्ख़ास्त कर दिये गये, कितने ही नज़रबन्द कर दिये गये, हड़ताल करनेवालों के परिवारों को रेलवे के क्वार्टरों से निकाल दिया गया, रेलवे की सस्ते अनाज की दुकानों को माल देना बन्द कर दिया गया और मज़दूरों की बस्तियों का पानी-बिजली काट दिया गया।

वह इस बात की चर्चा करते नहीं थकती थीं कि चारों तरफ़ अराजकता और राजनीतिक तिकड़मबाज़ी फैलती जा रही है। यह सच है कि कुछ यूनिवर्सिटियों में गड़बड़ी मची हुई थी और कारखानों में इससे पहले कभी काम का इतना नुक़सान नहीं हुआ था।

विपक्ष यह समझता था कि वह डिक्टेटर बनना चाहती हैं और इसलिए उनके पाँव उखाड़ना ज़रूरी है। जयप्रकाश ने अपना हमला और तेज़ कर दिया था और वह केन्द्रीय सरकार को 'लोकतन्त्र की आड़ में डिक्टेटरशिप के दर्जे पर उतार लायी गयी एक औरत की हुकूमत' कहने लगे थे। दबी ज़बान से उनकी पार्टी के कई लोग भी अब इसी तरह की दलीलें देने लगे थे।

और सबसे बड़ी बात यह थी कि क़ानूनी राय भी कुछ बहुत हौसला बढ़ाने वाली नहीं थी। क़ानून के अच्छे-से-अच्छे जानकारों ने उनको बताया था कि हद-से-हद वह इसकी उम्मीद कर सकती हैं कि सुप्रीम कोर्ट कुछ शर्तों के साथ हाईकोर्ट के फ़ैसले को स्थगित कर दे, हालाँकि वे समझते थे कि 'अन्तिम फ़ैसले' में उन्हें बरी कर दिया जायेगा। अगर हाईकोर्ट का फ़ैसला कुछ शर्तों के साथ स्थगित किया गया तो उससे उनकी साख को जो झटका लगेगा उसके बाद क्या वह हुकूमत कर पायेंगी?

जैसा कि उन्होंने एक सम्पादक से कहा 'राजनीति को सँभालना' यों ही मुश्किल हो गया है। बाहर से विपक्ष के दबाव—जयप्रकाश को सुनने के लिए लाखों लोगों की भीड़ जमा होने लगी थी—और खुद अपनी पार्टी के अन्दर सुलगती हुई विद्रोह की आग की वजह से उनके मन में तरह-तरह की आशंकाएँ उठने लगीं।

फ़ैसले और उसके बाद की घटनाओं के बारे में अख़बारों ने जो सुर्खियाँ दीं और जो ब्यौरा छापा उससे उनका अंदेशा और बढ़ता गया। वह सोचने लगीं कि अख़बारों ने न कभी उनकी कठिनाइयों को ठीक से समझा है और न ही उनकी कामयाबियों को! नई दिल्ली के एक दैनिक अख़बार ने तो उनका और उनके परिवार वालों का विरोधियों की हत्या तक में हाथ बताया था। उन्हें पूरा यक़ीन था कि अख़बारों को उनसे बैर था; एक बार उन्होंने सम्पादकों को बताया कि उन्होंने तो अख़बार पढ़ना ही छोड़ दिया था क्योंकि उन्हें मालूम था कि कौन-सा अख़बार क्या लिखेगा।

अख़बारवालों के बारे में उनकी राय अच्छी नहीं थी। वह जानती थीं कि उन्हें खरीदा जा सकता है। सच तो यह है कि उन्हें ललितनारायण मिश्र ने बताया था कि किस तरह उन्होंने ह्विस्की, नक़द पैसा और सूट का कपड़ा देकर कितने ही

पत्रकारों को, ख़ास तौर पर नई दिल्ली के पत्रकारों को, अपनी तरफ़ मिला रखा था। उनके कहने पर उनके अपने सेक्रेटेरियट ने भी कितनी ही बार उनके आलोचकों पर हमला करने के लिए 'प्रगतिशील' पत्रकारों को इस्तेमाल किया था। वह जानती थीं कि पत्रकार ही क्यों, अखबारों के मालिक भी खरीदे जा सकते थे। लेकिन अब ऐसा लगता था कि इन सब लोगों ने उनके खिलाफ़ गिरोहबन्दी कर रखी थी।

उनका धीरज टूटने लगा था और उन्हें ऐसा लग रहा था कि जैसे चारों तरफ़ से दुश्मनों ने उन्हें घेर लिया हो। ऐसा लगता था कि उनके बेटे संजय और उसकी टोली को छोड़कर, जिसमें धवन भी शामिल थे, बाक़ी सब लोग उनको गिरा देने के लिए कमर बाँध चुके हैं।

चारों तरफ़ बेचैनी और हलचल बढ़ती जा रही थी; 'ग़रीबी हटाओ' के उनके नारे से जनता के रहन-सहन में कोई सुधार नहीं हुआ था। 1950-51 और 1965-66 के बीच क़ीमतें तीन फ़ीसदी प्रतिवर्ष से कुछ ही ज्यादा बढ़ी थीं। लेकिन उनके शासन-काल में क़ीमतें औसत से पन्द्रह फ़ीसदी की रफ़्तार से बढ़ी थीं। अब उनके खिलाफ़ लोग जितना खुलकर बोलने लगे थे उतना इससे पहले उन्होंने कभी नहीं देखा था।

उन्होंने महसूस किया कि हालत जिस तरह बिगड़ती जा रही है वह उनके लिए खतरनाक साबित हो सकती है। यही वह वक़्त था जब उन्होंने उन लोगों का मुँह बन्द करने के लिए, जो कांग्रेस के अन्दर और बाहर दोनों जगह उनकी बुराइयाँ गिनाने लगे थे, कुछ सख्त क़दम उठाने की बात सोची। विपक्ष जनमत को अपने पक्ष में कर सकता था। लगभग सभी पार्टियाँ मिलकर एक हो गयी थीं और कांग्रेस पार्टी के अन्दर से टूट जाने का ख़तरा था।

उन्हें विपक्ष के बारे में 'कुछ' करना होगा, जिसकी ताक़त संसद में उनकी अपनी पार्टी के छठे हिस्से के बराबर भी नहीं थी। उन्हें पूरा भरोसा था कि जब भी उन्होंने कोई कार्रवाई करने का फ़ैसला किया तो उसे पूरा करने में देर नहीं लगेगी, क्योंकि उन्होंने सारी ताक़त प्रधानमंत्री के सेक्रेटेरियट के हाथों में समेट रखी थी।

यह सिलसिला उनसे पहलेवाले प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री के ज़माने में ही शुरू हो चुका था। उनके सेक्रेटरी एल० के० झा का हर चीज़ में दखल रहता था और उन्हें लोग सुपर-सेक्रेटरी कहने लगे थे। श्रीमती गांधी के सिविल सर्विसवाले सेक्रेटरी पी० एन० हक्सर तो झा से भी दो क़दम आगे बढ़ गये थे और उन्होंने पूरी व्यवस्था को इस तरह संगठित किया था कि हर चीज़ प्रधानमंत्री के सेक्रेटेरियट के चारों ओर ही घूमती थी। उसकी मंज़ूरी के बिना कोई डिप्टी-सेक्रेटरी तक नहीं नियुक्त किया जा सकता था। उन्होंने अलग ही एक मिनी-सरकार बना ली थी। इस सेक्रेटेरियट के हर अफ़सर को एक-एक क्षेत्र की लगभग पूरी ज़िम्मेदारी सौंप दी गयी थी—चाहे वह आर्थिक क्षेत्र हो, या विदेशों से सम्बन्ध रखता हो या विज्ञान का क्षेत्र हो। सभी मंत्रालय इन्हीं लोगों से आदेश लेकर काम करते थे। लेकिन हक्सर की सबसे बड़ी देन यह थी कि उन्होंने इस ढाँचे पर राजनीतिक रंग चढ़ा दिया था। आज़ादी के बाद देश के इतिहास में पहली बार सरकार की मशीनरी को राजनीतिक कामों के लिए, ज़रूरत पड़ने पर कांग्रेस पार्टी के कामों के लिए, इस्तेमाल किया जाने लगा था। कुछ वर्षों बाद उन्हें अपने इस दिन के किये पर पछताना पड़ा।

श्रीमती गांधी ने इस मशीनरी को उन लोगों पर नियंत्रण रखने की ताक़त दी जो 'सुरक्षा' प्रदान कर सकते थे। केन्द्र में उनके पास बॉर्डर सिक्योरिटी फ़ोर्स (बी० एस० एफ़०), सेन्ट्रल रिज़र्व पुलिस (सी० आर० पी०), सेन्ट्रल इंडस्ट्रियल सिक्योरिटी फ़ोर्स (सी० आई० एस० एफ़०) और होमगार्ड के लगभग 7,00,000 पुलिसवाले थे।

इन टुकड़ियों का विभिन्न राज्यों की पुलिस से (जिसकी संख्या 8,00,000 बतायी जाती थी) और हथियारबन्द फ़ौज से, जिसमें लगभग 10,00,000 सिपाही थे, कोई सम्बन्ध नहीं था।

उनको ऐसा लगा कि विपक्ष हद तक जाने की तैयारी कर रहा है; उनकी अपनी पार्टी के अन्दर के और बाहर के दुश्मन अब वह करने की कोशिश कर रहे थे जो वह राजनीतिक लड़ाई में नहीं कर पाये थे—उन्हें हटाने के लिए वे एक 'अड़ियल' जज के फ़ैसले का सहारा लेने जा रहे थे। ज़रूरत पड़ने पर वह भी हद तक जा सकती हैं।

संजय को इसके बारे में कोई शक नहीं था और उसने अपनी माँ को यह बता भी दिया। और जब वह हाईकोर्ट के फ़ैसले के बाद सत्ता और उचित आचरण की खींचातानी में पड़ी हुई थीं तब उसी ने उन्हें फ़ैसला करने में मदद दी थी और उसके बाद से वही उनका खास सलाहकार बन गया था। और उसी ने उनके सामने यह बात साबित कर दी थी कि देश को और देश की जनता को उनकी ज़रूरत थी।

संजय दिन-रात उनके मन में यही बात बिठाता रहता था कि आप अपने विरोधियों के साथ ज़रूरत से ज़्यादा नरमी बरतती हैं और उनके खिलाफ़ कोई कार्रवाई करने में झिझकती हैं। आड़े वक़्त में काम आनेवाले उसके दोस्त बंसीलाल का भी यही कहना था, जिन्होंने अपने विरोधियों को पिटवाकर, हवालात में बन्द करवाकर या पुलिस से तंग करवाकर हरियाणा में विपक्ष की आवाज़ बिलकुल बन्द कर दी थी। बंसीलाल ने कहा, "मैं होता तो इन सबको जेल में डलवा देता। बहनजी, आप इन लोगों को मेरे हवाले कर दीजिये, मैं एक-एक को ठीक कर दूंगा। आप ज़रूरत से ज़्यादा मुरव्वत और शराफ़त से काम लेती हैं।" उन्होंने अपने हरियाणा राज्य में यह बात साबित कर दी थी कि लोग इज़्ज़त उसी की करते हैं जिसमें ताक़त हो, जो काम पूरा करके दिखा सके।

लगभग सभी मुख्यमंत्री श्रीमती गांधी को यह चेतावनी दे चुके थे कि उन्हें 'कुछ' करना होगा, नहीं तो घटनाओं की लहर उन्हें अपनी लपेट में ले लेगी। उन्होंने ये मामला संजय पर छोड़ दिया। वही उन्हें दबाव के आगे न झुकने के लिए पूरा साथ दे रहा था। जिस वक़्त उनके पक्के-से-पक्के समर्थकों के पाँव भी लड़खड़ाते दिखायी दे रहे थे उस वक़्त उसी ने उनको इस्तीफ़ा न देने की सलाह दी थी।

जैसा कि बाद में संजय ने अपने एक दोस्त को बताया, 15 जून को उसने "हालात को ठीक करने के लिए कोई योजना" बनाने का काम शुरू किया। उसका मंसूबा यह था कि राजनीतिक स्तर पर और सरकारी स्तर पर सरकार का ढाँचा बदल दिया जाये। उसे काम करने का लोकतान्त्रिक तरीक़ा पसन्द नहीं था। न ही उसमें क़ायदे-क़ानून की लम्बी चक्करदार कार्रवाई को बर्दाश्त करने का धीरज था। वह वक़्त चाहता था, और वक़्त तेज़ी से निकलता जा रहा था।

सबसे पहला काम उसने यह किया कि अपने कमरे में दो 'खुफ़िया टेलीफोन' लगवा लिये। ये टेलीफोन सिर्फ़ मंत्रियों और चोटी के अफ़सरों के यहाँ लगाये जा सकते थे, लेकिन सभी लोग जानते थे कि उसका हुक्म प्रधानमंत्री का हुक्म है और इसलिए यह काम फ़ौरन कर दिया गया। अब वह किसी को भी उसके सेक्रेटरी की मार्फ़त टेलीफोन करने का खतरा मोल लिये बिना सीधे टेलीफोन कर सकता था।

उसके दिमाग़ में इस बात की पहले से कोई योजना नहीं थी कि वह क्या करना चाहता है। लेकिन उसे पूरा यक़ीन था कि हर विरोधी को या तो ख़रीदा जा सकता है या तोड़ा जा सकता है। इसमें किसी तरह की मुरव्वत नहीं की जानी

चाहिए। जैसा कि एक बार उसने पश्चिम जर्मनी के किसी अखबार से इंटरव्यू के दौरान कहा था, वह डिक्टेटरशिप को पसन्द करता था, लेकिन 'हिटलर जैसी नहीं'। एक बार अगर लोगों के मन में डर बिठा दिया जाये तो वे या तो हुक्म मानना सीख जायेंगे या कम-से-कम अपनी ज़बान नहीं खोलेंगे। संजय चाहता था कि जो हुक्म दिया जाये उसे लोग मानें और इसके लिए वह ओछे-से-ओछे हथकंडे को भी बुरा नहीं समझता था।

शुरू में योजना सिर्फ़ अखबारों पर लगाम लगाने और विपक्ष के कुछ नेताओं और महत्त्वपूर्ण लोगों का 'मुँह बन्द' कर देने की थी। इस तरह 'अनुशासन' का पक्का बन्दोबस्त हो जायेगा और सब लोग ठीक रास्ते पर आ जायेंगे। अखबार ऐसी कोई बात नहीं छाप पायेंगे जो सरकार को बुरी लगे और विपक्ष के लोग ऐसी बात नहीं कह पायेंगे जो 'नापसन्द' हो।

अखबारों का मुँह बन्द करना ज़रूरी था। जैसा कि श्रीमती गांधी और संजय दोनों ही अकसर अपने परिवार के दूसरे लोगों को कहा करते थे, उनके विरोधियों को आसमान पर चढ़ा देने और सरकार के ख़िलाफ़ 'अविश्वास का वातावरण' पैदा करने का सारा दोष अखबारों का था। लेकिन अखबार और विपक्षवाले दोनों ही मिट्टी के शेर थे और उन्हें आसानी से क़ाबू में किया जा सकता था।

संजय ने जब अपना मारुति का कारखाना लगाया था उसी दिन से वह अखबारों से खुश नहीं था। अखबारवालों ने इस कारखाने के बारे में और खुद उसके बारे में हद से ज़्यादा लिखा था—ज़रूरत से ज़्यादा ऐसी बातें जो उसे अच्छी नहीं लगी थीं, हालाँकि उसने सम्पादकों को अपना कारखाना दिखाने का खुद ही बन्दोबस्त किया था।

इसकी ज़्यादातर ज़िम्मेदारी उसने सूचनामंत्री इन्द्रकुमार गुजराल के मत्थे मढ़ दी थी। उसका कहना था कि गुजराल की पत्रकारों से दोस्ती है लेकिन वह उनसे कभी सरकार के पक्ष में कोई बात नहीं लिखवा पाये। यह उसकी ज़्यादती थी। 1969 में जब चौदह बैंकों का कारोबार सरकार ने अपने हाथ में ले लिया था उसके बाद से गुजराल ने ही श्रीमती गांधी की धूम बाँधकर उन्हें आसमान पर चढ़ा दिया था और उनके पैर मज़बूत करने के लिए सरकारी रेडियो और टेलिविजन और प्रकाशकों का पूरी तरह इस्तेमाल किया था। उन्होंने अखबारों पर भी दबाव डाला था, खासतौर पर इश्तहार देकर छोटे और कमज़ोर अखबारों पर—देश-भर में सबसे अधिक इश्तहार सरकार ही देती थी, इसलिए उसके पास दूसरों को अपने पक्ष में रखने के लिए देने को बहुत-कुछ था। लेकिन इलाहाबाद हाईकोर्ट के फ़ैसले के बाद ऐसा लगता था कि गुजराल का जोश कुछ ठंडा पड़ गया था।

संजय के साथियों धवन और बंसीलाल को भी गुजराल और अखबार दोनों ही से चिढ़ थी। धवन यह दलील देते थे कि गुजराल ने पत्रकारों को बहुत सर पर चढ़ा रखा है और उन्हें उनकी असली हैसियत बता दी जानी चाहिए। बंसीलाल ने उन्हें बताया कि चंडीगढ़ के ट्रिब्यून अखबार को सरकारी इश्तहार देना बन्द करके और जो गाड़ियाँ यह अखबार लेकर हरियाणा आती थीं या उस राज्य में होकर गुज़रती थीं उनका पुलिस से चलान करवाकर किस तरह उन्होंने उसे सीधा कर दिया था।

लेकिन एक छोटे-से राज्य में एक अखबार के ख़िलाफ़ जो कुछ किया गया था क्या वही सारे देश में अखबारों को क़ाबू में रखने के लिए किया जा सकता था? संजय

के दोस्त कुलदीप नारंग[1] ने उसे एक छोटी-सी किताब दी जिसमें फ़िलीपाइंस के सेंसरशिप के नियम दिये हुए थे और इस बात का भी पूरा ब्यौरा दिया गया था कि इन नियमों को वहाँ लागू करने के लिए क्या बन्दोबस्त किया गया था। नारंग को यह सामग्री नई दिल्ली में अमरीकी दूतावास के अपने कुछ दोस्तों से मिली थी।

जयप्रकाश नारायण और दूसरे लोगों के ख़िलाफ़ कार्रवाई की योजना तो बहुत पहले जनवरी में ही बना ली गयी थी। मुझे इसका पता प्रधानमंत्री के सेक्रेटेरियट के एक सदस्य से चला था। उसने कहा था कि 'कब्ज़ा करने' की कुछ तरक़ीबों के बारे में सोच-विचार हुआ है। बस यहाँ-वहाँ से कुछ बिखरी-बिखरी बातें ही वह पकड़ सका था, और हालाँकि उसे पूरा ब्यौरा नहीं मालूम था, उनमें जयप्रकाश की गिरफ़्तारी और आर० एस० एस० पर पाबन्दी शामिल थीं।

तब मैं सम्वाददाता नहीं था, दफ़्तर में बैठकर काम करता था, इसलिए मैंने यह ख़बर जनसंघ के दनिक मदरलैंड और इंडियन एक्सप्रेस को भिजवा दी। मदरलैंड में ख़बर इस तरह छपी :

> नई दिल्ली, 30 जनवरी—भारत सरकार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर पाबन्दी लगा देने का फ़ैसला कर लिया है।[2] उसने श्री जयप्रकाश नारायण को गिरफ़्तार करने का भी फ़ैसला किया है।
>
> उम्मीद की जाती है कि आर० एस० एस० पर पाबन्दी 2-3 फरवरी की रात को लगायी जायेगी और जयप्रकाश को 3 फरवरी को पटना में हवाई जहाज़ से उतरते ही गिरफ़्तार कर लिया जायेगा।
>
> श्री गफ़ूर (बिहार के मुख्यमंत्री) ने जब यह कहा था कि "मैं किसी भी हद तक जाने को तैयार हूँ", तो वह सिर्फ़ प्रधानमंत्री के फ़ैसले का ऐलान कर रहे थे।
>
> ये दोनों फ़ैसले इसी हफ़्ते कैबिनेट की राजनीतिक मामलात की कमेटी में लिये गये।
>
> इस आर्डिनेंस का मसविदा तैयार करने में पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री श्री सिद्धार्थशंकर रे ने भी हाथ बँटाया है—जो 1969 में प्रधानमंत्री के लिए आधी रात को भेजे जानेवाले सन्देशों का मसविदा भी तैयार करते थे।
>
> इस आर्डिनेंस में कई बार फैलाया गया यह झूठ फिर दोहराया गया है कि आर० एस० एस० एक ख़ुफ़िया संगठन है जो अहिंसा में विश्वास नहीं रखता। और उससे श्री एल० एन० मिश्रा की हत्या की ज़िम्मेदारी 'हिंसा के उस वातावरण' पर रखी गयी है जो आर० एस० एस० ने और जे० पी० के आन्दोलन ने पैदा किया है।...

इंडियन एक्सप्रेस ने जे० पी० की गिरफ़्तारी के बारे में इसके अलावा और कुछ नहीं कहा कि इसकी सम्भावना है, लेकिन बाक़ी ख़बर छाप दी।

> नई दिल्ली, 30 जनवरी—यहाँ के राजनीतिक क्षेत्रों में ऐसा समझा जाता है कि जल्द ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर पाबन्दी लगाने के बारे में एक आर्डिनेंस जारी किया जानेवाला है।

1. उसी की गाड़ी में संजय एक बार ग्रेजुएट लड़कियों के होस्टल के बाहर पकड़ा गया था और नारंग ने उसे बचाया था।
2. सिद्धार्थशंकर रे ने श्रीमती गांधी को 8 जनवरी को एक पत्र लिखकर उनसे आर्डिनेंस जारी करवा कर आर० एस० एस० पर पाबन्दी लगाने को कहा था।

इस दिशा में अटकलबाज़ी बिहार के मुख्यमंत्री श्री अब्दुल गफ़ूर के इस बयान से शुरू हुई, जो उन्होंने बुधवार को यहां एक प्रेस कान्फ्रेंस के दौरान दिया था कि बिहार में श्री जयप्रकाश नारायण के आन्दोलन की रोकथाम के लिए कड़ी कारंवाई की जानेवाली है।

याद रहे कि श्री गफ़ूर ने इस बात से भी इंकार नहीं किया था कि श्री नारायण गिरफ़्तार किये जा सकते हैं। यह भी समझा जाता है कि सर्वोदय नेता की गिरफ़्तारी इस हफ़्ते के आखिर में या अगले हफ़्ते के शुरू में हो सकती है।

आर० एस० एस० पर पाबन्दी लगने के बाद इस संगठन के खास-खास नेता भी गिरफ़्तार कर लिए जायेंगे। गिरफ़्तार किये जानेवाले लोगों की सूची कई दर्जन तक पहुँच सकती है।...

जनसंघ से श्रीमती गांधी को जो नफ़रत थी उसे सभी जानते थे। जब उसने मार्च 1974 में दिल्ली में एक प्रदर्शन करने की योजना बनायी थी तो उन्होंने दिल्ली पुलिस के इंस्पेक्टर जनरल को उन लोगों के नाम दिये थे जिन्हें वह चाहती थीं कि वे गिरफ़्तार कर लिए जायें। अधिकारी यह महसूस करते थे कि हालत ऐसी नहीं है कि ऐसा क़दम उठाया जाये लेकिन उनका हुक्म था। बाद में उन्होंने दिल्ली प्रशासन के चोटी के अफ़सरों को बदल दिया। और यही वह वक़्त था जब संजय और धवन ने ऐसे अफ़सरों को जो उनके वफ़ादार रहें दिल्ली में तैनात करवा दिया।

जनवरी में जो मंसूबे बनाये गये थे वे संजय के अब बहुत काम आये, जो 'हर चीज़ को क़ाबू में रखने' की तरकीबें सोच रहा था। श्रीमती गांधी, जिनसे हर क़दम पर सलाह ली जाती थी, जयप्रकाश और मोरारजी देसाई को शुरू ही में गिरफ़्तार कर लेने के पक्ष में नहीं थीं। लेकिन बाद में बात उनकी समझ में आ गयी—उनके जैसे नेताओं को उपद्रव भड़काने के लिए खुला छोड़ रखना खतरनाक साबित हो सकता था।

इन तैयारियों में 55वर्षीय राज्यमंत्री ओम मेहता भी हाथ बँटा रहे थे। हालाँकि गृह मंत्रालय में वह दूसरे नम्बर पर थे लेकिन असली ताक़त उन्हीं के हाथ में थी क्योंकि चर्चा यह थी कि वह प्रधानमंत्री के क़रीब हैं। उन्हें कई बार 'होम' मेहता के नाम से भी पुकारा जाता था। 'संविधान से हटकर' जो भी काम करवाना होता था उसके लिए संजय उन्हीं को इस्तेमाल करता था।

धवन को ओम मेहता फूटी आँखों नहीं सुहाते थे क्योंकि उनकी संजय तक सीधी पहुँच थी। लेकिन यह निजी पसन्द और नापसन्द का वक़्त नहीं था; सब लोग मिलकर काम करते रहे। धवन बहुत बुनियादी हैसियत रखते थे क्योंकि श्रीमती गांधी अफ़सरों को ही नहीं बल्कि मंत्रियों तक को उन्हीं के ज़रिये आदेश भिजवाती थीं। धवन जो कुछ कह देते थे उसके बारे में यह समझा जाता था कि प्रधानमंत्री यही चाहती हैं।

बंसीलाल का प्रधानमंत्री के साथ बराबर सम्पर्क रहता था। उनसे 18 जून की मीटिंग के लिए दिल्ली में जमा राज्यों के मुख्यमंत्रियों से चर्चा करने के लिए कहा कि कोई बड़ी कारंवाई की जाने वाली है। बंसीलाल ने सिद्धार्थशंकर रे और नन्दिनी सत्पथी से बात करने से इंकार कर दिया, क्योंकि वह उन्हें कम्युनिस्ट समझते थे। बंसीलाल और संजय दोनों ही उन्हें नापसन्द करते थे, इसलिए श्रीमती गांधी ने उन्हें बताने की ज़िम्मेदारी खुद अपने ऊपर ले ली।

ज़ाहिर में उन्हें यह नहीं बताना था कि क्या कारंवाई की जाने वाली है।

लेकिन हर राज्य में भरोसे के अफ़सरों को यह बताया जा रहा था कि उन्हें क्या करना चाहिये। दिल्ली में, जहाँ विपक्ष के ज्यादातर नेता मौजूद थे, यह काम किशनचंद को सौंपा गया। वह आई० सी० एस० से रिटायर हो गये थे और उस वक़्त दिल्ली के लेफ़्टिनेंट-गवर्नर थे। संजय का उन पर यह बहुत बड़ा एहसान था कि उसी ने उनको इतने ऊँचे पद पर पहुँचा दिया था। उनके साथ और नवीन चावला के साथ संजय का सीधा सम्पर्क था। नवीन दून स्कूल में उसके साथ पढ़ चुका था और इस वक़्त लेफ़्टिनेंट-गवर्नर का स्पेशल असिस्टेंट था।

उस वक़्त तक इमर्जेंसी की कोई बात नहीं थी; बस इतना सुनने में आता था कि अखबारों के खिलाफ़ और विपक्षवालों के खिलाफ़ 'कोई कार्रवाई' होने वाली है। इस पर कोई चर्चा नहीं करता था कि वह कार्रवाई क्या होगी। क़ानून और संविधान की दृष्टि से इसके नतीजे क्या हो सकते हैं, इसका लेखा-जोखा अभी करना बाक़ी था। लेकिन इरादा पक्का था; इस संकट से बाहर निकलने का कोई रास्ता ढूंढना ही था।

कार्रवाई की तारीख भी अभी तय होनी थी। लेकिन श्रीमती गांधी के दिमाग़ में यह बात साफ़ थी कि जो कुछ भी करना हो वह इलाहाबाद हाईकोर्ट के फ़ैसले के खिलाफ़ स्टे-ऑर्डर के लिए सुप्रीम कोर्ट में उन्होंने जो अर्ज़ी दे रखी है, उसका फ़ैसला हो जाने के बाद ही किया जाये। उनके वकील अवकाशकालीन जज जस्टिस वी० आर० कृष्ण अय्यर[1] के सामने अपील दायर करने की तैयारियाँ कर रहे थे, जिनके बारे में श्रीमती गांधी समझती थीं कि 'विचारधारा' की हद तक वह उनकी तरफ़ हैं।

उधर उनका बेटा और उसकी टोली 'लड़ाई का नक़्शा' बनाने में लगे हुए थे, और इधर श्रीमती गांधी पार्टी का भरपूर समर्थन जुटाने की मुहिम में लगी हुई थीं। और ऐसा लगता था कि उनको कामयाबी मिल रही है। सिद्धार्थशंकर रे और राजू 'समर्थन प्रस्ताव' लेकर जगजीवनराम के पास गये थे और यह सुझाव रखा था कि वही उसे पेश करें। प्रस्ताव में श्रीमती गांधी में पार्टी का 'पूरा भरोसा और विश्वास' एक बार फिर दोहराया गया था और यह यक़ीन ज़ाहिर किया गया था कि "प्रधानमंत्री की हैसियत से उनके लगातार नेतृत्व के बिना राष्ट्र का काम ही नहीं चल सकता।" जगजीवनराम ने प्रस्ताव के मसविदे में कोई खास हेर-फेर नहीं किया; सच तो यह है कि उन्होंने राजू को शाबाशी दी और कहा कि तुमने 'कांग्रेस को बचा लिया' है।

श्रीमती गांधी ने भी जगजीवनराम के पास यह सन्देश भिजवाया कि वह इस बात का पक्का बन्दोबस्त कर लें कि युवा तुर्क प्रस्ताव के खिलाफ़ कुछ न बोलें। युवा तुर्कों ने जगजीवनराम को बता दिया था कि वे प्रस्ताव का समर्थन करने को तैयार हैं, शर्त बस इतनी है कि उसका वह अन्तिम वाक्य निकाल दिया जाये जिसमें कहा गया था कि "प्रधानमंत्री की हैसियत से उनके लगातार नेतृत्व के बिना राष्ट्र का काम ही नहीं चल सकता।" उन लोगों ने इस हिस्से पर कोई एतराज़ नहीं किया कि "श्रीमती गांधी नव-उत्थान के पथ पर आगे बढ़ते हुए आज के भारत की और जनता की उमंगों की प्रतीक हैं। इस समय पहले कभी की अपेक्षा कांग्रेस को और राष्ट्र को उनके नेतृत्व और मार्ग-दर्शन की ज़रूरत है।" लेकिन वे इस बेहूदा बात को मानने के लिए तैयार नहीं थे कि उनके बिना काम ही नहीं चल सकता।

1. भारत के भूतपूर्व चीफ़ जस्टिस एस० एम० सीकरी ने 1972 में अय्यर की नियुक्ति का विरोध इस बुनियाद पर किया था कि अय्यर कम्युनिस्ट थे।

जगजीवनराम उन सबकी इस सामूहिक राय को तो नहीं बदलवा सके, लेकिन अलबत्ता इस बात पर राज़ी कर लिया कि वे मीटिंग में आयें ही नहीं, क्योंकि अगर उन्होंने यह सवाल उठाया तो बदमज़गी होगी। युवा तुर्कों के न होने पर कुछ लोगों का माथा तो ठनका और कुछ कानाफूसी भी हुई, लेकिन 516 सदस्यों वाले संसदीय दल पर इसका कोई असर नहीं पड़ा, उसने तो वही किया जो उसे करना था। उसने एकमत होकर श्रीमती गांधी का समर्थन किया। अपने-अपने राज्यों के संसद-सदस्यों पर कड़ी नज़र रखनेवाले मुख्यमंत्री दूर खड़े तालियाँ बजाते रहे। जगजीवनराम ने प्रस्ताव पेश किया, लेकिन उन्होंने श्रीमती गांधी के गुण गिनाने से ज़्यादा इस बात की चर्चा की कि सरकार और अदालतों के बीच तालमेल रहना चाहिए। चह्वाण ने प्रस्ताव का समर्थन करते हुए जो भाषण दिया उसने यह कमी पूरी कर दी; उन्होंने श्रीमती गांधी की तारीफ़ न सिर्फ़ इस बात के लिए की कि उन्होंने 1971 की लड़ाई में देश का नेतृत्व करके उसे विजय की मंज़िल तक पहुँचाया बल्कि इस बात के लिए भी कि इस लड़ाई के बाद जो आर्थिक संकट आया उससे भी देश को उन्होंने ही उबारा।

जैसा कि पहले से तय था, श्रीमती गांधी पार्टी की मीटिंग में इस तरह आयीं जैसे कोई रानी सलामी लेने आयी हो, और वह बस बहुत थोड़ी देर ही वहाँ ठहरीं। उन्होंने अपने भाषण में जो कुछ कहा उसमें कोई नयी बात नहीं थी—यही कि मौजूदा संकट के बादल काफ़ी दिन से घिर रहे थे और यह उनके ख़िलाफ़ और कांग्रेस के ख़िलाफ़ 'कई ताक़तों के गठजोड़' का नतीजा था, और यह कि वह अपनी सारी ताक़त जनता से हासिल करती हैं।

जब प्रस्ताव को सभी ने एकमत होकर पास कर दिया तो मीटिंग के अध्यक्ष बरुआ ने सुझाव दिया कि सब लोग श्रीमती गांधी के कमरे में चलें, जो संसद के सेंट्रल हॉल के पास ही था जहाँ कांग्रेस के संसद-सदस्य जमा हुए थे; जगजीवनराम ने यह कहकर कि श्रीमती गांधी अपने घर जा चुकी हैं इस सुझाव को वहीं दफ़न कर दिया। वह समझौतेबाज़ी के रास्ते पर काफ़ी आगे जा चुके थे; सच तो यह है कि वह ज़रूरत से ज़्यादा समझौतेबाज़ी कर चुके थे और इसके बाद वह ख़ुशामद की खुली नुमाइश नहीं करना चाहते थे।

प्रस्ताव पास हो जाने के बाद इस सवाल में कोई दम ही नहीं रह गया कि सुप्रीम कोर्ट अपना फ़ैसला कुछ शर्तों के साथ देगा या बिना किसी शर्त के। सभी का रवैया यह मालूम होता था कि चाहे जो कुछ हो जाये, उन्हें अपनी जगह बने रहना चाहिये। अगर सुप्रीम कोर्ट उन्हें संसद की बहसों में वोट देने या हिस्सा लेने की इजाज़त न भी दे तो क्या हुआ? प्रधानमंत्री तो वह तब भी रहेंगी।

श्रीमती गांधी के चोटी के क़ानूनी और राजनीतिक सलाहकार इस बात पर सोच-विचार कर रहे थे कि अगर फ़ैसले में उन पर यह पाबन्दी लगा दी गयी कि छः साल तक वे किसी ऐसे पद पर नहीं रह सकतीं जिसके लिए चुनाव जीतना ज़रूरी हो, तो ज़रूरत पड़ने पर इस रुकावट को कैसे दूर किया जा सकता है। उन लोगों ने ऐसा क़ानून पास करवा देने की बात भी सोची कि एक ख़ास तारीख तक, मिसाल के तौर पर 1 जुलाई 1975 तक, जितने भी मेम्बरों पर इस तरह की पाबन्दी लगायी गयी हो उन सब पर से उसे हटा लिया जाये। एक बार पहले भी इस तरह का क़दम उठाने की बात सोची गयी थी ताकि मध्य प्रदेश के डी० पी० मिश्रा और आन्ध्र प्रदेश के चेन्ना रेड्डी पद पर रह सकें, लेकिन फिर उस पर अमल नहीं किया गया।

एक सुझाव यह भी था कि इलाहाबाद हाईकोर्ट के उस फ़ैसले को मानकर, जिसमें उनका चुनाव रद्द कर दिया गया था, वह ज़रूरत पड़ने पर रायबरेली से दुबारा

चुनाव लड़ सकता हैं।

लेकिन अजीब बात है कि जब भी इस तरह का कोई सुझाव श्रीमती गांधी के सामने रखा जाता था तो वह उसमें कोई दिलचस्पी नहीं दिखाती थीं। ऐसा लगता था कि वह अपने ही ख़यालों में डूबी हुई हैं। कुछ तो वह सुप्रीम कोर्ट में अपनी अपील की तैयारियों में लगी हुई थीं, लेकिन ज़्यादातर उनका दिमाग़ उन बातों में उलझा रहता था जिनकी योजना बनाने में संजय और उसकी टोली जुटी हुई थी।

ग़ैर-कम्युनिस्ट विपक्ष ने श्रीमती गांधी के इस्तीफ़े की माँग उठाने का फ़ैसला किया। उन्होंने 21 और 22 जून को जनता मोर्चे में शामिल पार्टियों की कार्यकारिणी समितियों की एक मिली-जुली बैठक बुलायी और श्रीमती गांधी को हटाने के लिए सारे देश में आन्दोलन छेड़ने की योजना बनायी। जयप्रकाश ने सन्देश भेजा कि वह मोर्चे की बातचीत में और विशाल रैली में हिस्सा लेंगे। राजनारायण ने समझा-बुझाकर जयप्रकाश को इस बात पर राज़ी कर लिया था कि कोई कार्रवाई शुरू करने से पहले सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले का इन्तज़ार करना ज़रूरी नहीं है।

विपक्ष ने संसद का मानसून (मध्य जुलाई) अधिवेशन बुलाये जाने पर भी ज़ोर दिया और अपनी यह माँग स्पीकर के सामने रखी। लेकिन कांग्रेस पार्टी के नेता पहले ही इसके खिलाफ़ फ़ैसला कर चुके थे क्योंकि संसद की बैठक से उनके लिए परेशानियाँ पैदा हो सकती थीं। उनकी दलील यह थी कि संविधान में इससे ज़्यादा और कुछ नहीं कहा गया है कि दो अधिवेशनों के बीच छ: महीने से ज़्यादा का वक़्त नहीं होना चाहिये। स्पीकर को मालूम था कि श्रीमती गांधी क्या चाहती हैं और इसलिए वह संसद का अधिवेशन बुलाने पर राज़ी नहीं हुए।

अगर संजय और उसकी टोली का बस चलता तो संसद की बैठक कभी होती ही नहीं क्योंकि उनके लिए यह वक़्त की बर्बादी थी; मिसाल के लिए, पिछली ही बैठक के दौरान सिर्फ़ तुलमोहन राम के मामले पर बहस होती रही थी। और अगर साल का ज़्यादातर हिस्सा संसद के सवालों का जवाब तैयार करने में ही निकल जाये तो सरकार काम कब करे? उन्होंने इस 'बेकार' काम की रोक-थाम करने के बारे में सोचा।

कुछ इसी तरह के विचार एक बार भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की तरफ़ झुकाव रखने वाले कांग्रेसी मंत्री चन्द्रजीत यादव ने भी ज़ाहिर किये थे। नई दिल्ली से कांग्रेसी संसद-सदस्य शशिभूषण ने भी, जो भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के समर्थक थे, कुछ इसी तरह की बात कही थी। उन्होंने कहा था कि वह 'लिमिटेड डिक्टेटरशिप' (सीमित डिक्टेटरशिप) के पक्ष में थे। बाद में जब उन्हें अपनी इस बात की याद दिलायी गयी तो उन्होंने कहा, ''लेकिन मैंने 'लिमिटेड' की बात कही थी, 'प्राइवेट लिमिटेड' की नहीं।''

अब तक श्रीमती गांधी का रवैया बदल चुका था। इलाहाबाद वाले फ़ैसले के बाद उनके अन्दर जो एक हिचकिचाहट आ गयी थी वह अब दूर हो गयी थी। सच तो यह है कि अब उन्हें पूरा यक़ीन हो गया था कि वह फ़ैसला उन्हें हटाने के लिए दूर तक फैलाये गये जाल का ही एक हिस्सा था। किसी ने उनको बताया था कि जस्टिस सिनहा का झुकाव जनसंघ की तरफ़ था।

संजय और उसकी टोली को अपनी कामयाबी का पूरा भरोसा था। छोटी-से-छोटी ब्यौरे की बात में भी श्रीमती गांधी न सिर्फ़ उनके साथ थीं, बल्कि उनकी कार्रवाई के लिए हर चीज़ लगभग बिल्कुल तैयार थी। हर राज्य में विपक्ष के उन नेताओं की सूचियाँ तैयार की जा रही थी जिन्हें गिरफ़्तार किया जाना था, और फ़िलीपाइंस जैसी सेंसरशिप लागू करने की रत्ती-रत्ती बात तय कर ली गयी थी।

'कार्रवाई' का वक़्त भी तय हो चुका था—सुप्रीम कोर्ट का फ़ैसला आने के अगले दिन। तैयारियों की रफ़्तार और तेज़ कर दी गयी; आदेशों को पूरा करने का बन्दोबस्त कील-काँटे से दुरुस्त कर लिया गया। ज़रूरत के वक़्त जिन अफ़सरों पर पूरी तरह भरोसा किया जा सकता था, उन्हें ज़्यादा-से-ज़्यादा तादाद में बुनियादी महत्त्व की जगहों पर तैनात किया जा रहा था।

गृह मंत्रालय के सेक्रेटरी निर्मल कुमार मुखर्जी को हटा देने का फ़ैसला किया गया क्योंकि वह 'ज़रूरत से ज़्यादा क़ानूनी' आदमी थे। राजस्थान के चीफ़ सेक्रेटरी सुन्दरलाल खुराना को उनकी जगह लाया गया। उनके बारे में यह समझा जाता था कि उन्हें आसानी से मनचाही दिशा में मोड़ा जा सकता है। इसके बाद से किसको कहाँ तैनात करना है इसका फ़ैसला अकेले एक आदमी धवन के हाथ में छोड़ दिया गया था। बहुत दिन से उनकी यह शिकायत थी कि सरकार में मद्रासी छाये हुए हैं; वह चाहते थे कि उत्तर भारत के लोगों का, खासतौर पर पंजाबियों का पलड़ा भारी रहे।

खुफ़िया विभाग के कर्त्ता-धर्त्ता ए० जयराम को हटाकर कहीं और भेज दिया गया। उनकी जगह भरने के लिए पंजाब पुलिस के इंस्पेक्टर-जनरल शिवनाथ माथुर को चुना गया—पहले उन्हें एडीशनल डायरेक्टर बनाया गया और फिर डायरेक्टर। जयराम बहरहाल इस मामले में तो निकम्मे साबित हुए ही थे कि इलाहाबाद हाईकोर्ट का फ़ैसला सुनाये जाने से पहले वह इसकी भनक भी नहीं पा सके थे कि फ़ैसला क्या होगा।

बंसीलाल ने ज़्यादातर मुख्यमंत्रियों से बात कर ली थी और वे विपक्ष के लोगों के खिलाफ़ और अखबारों के खिलाफ़ कार्रवाई करने के लिए हर तरह से तैयार थे। सिद्धार्थशंकर रे और नन्दिनी सत्पथी से खुद श्रीमती गांधी ने बात की थी। सिद्धार्थ-शंकर रे कामयाब वकील रह चुके थे; वह सिर्फ़ यह जानना चाहते थे कि ये दोनों क़दम किस क़ानून के तहत उठाये जायेंगे। वह पूरी तरह ये क़दम उठाये जाने के पक्ष में थे, लेकिन वह यह नहीं चाहते थे कि श्रीमती गांधी क़ानून के रास्ते से भटक जायें। श्रीमती गांधी का झुकाव खुद संविधान की हदों के अन्दर रहकर काम करने की तरफ़ था और इसलिए उन्होंने सिद्धार्थशंकर रे से कहा कि वह इसका तरीक़ा सोच लें और कलकत्ता से उन्हें टेलीफोन कर दें।

खुफ़िया विभाग ने खबर दी कि विपक्ष आन्दोलन छेड़ने के लिए तैयार हो रहा है, जिसमें हज़ारों लोग जुलूस बनाकर उनकी कोठी तक जायेंगे और उसे घेर लेने की कोशिश करेंगे। वे रेल की पटरियों पर बैठ जायेंगे और ट्रेनों को नहीं चलने देंगे। अदालतों को काम नहीं करने दिया जायेगा। सरकारी दफ़्तरों में कोई काम नहीं होने दिया जायेगा। कोशिश यह थी कि सारा काम-काज ठप्प कर दिया जाये।

यह इस बात का सबूत था, वैसे सबूत की कोई ज़रूरत नहीं थी, कि संजय ठीक ही कहता था कि विपक्ष का एक ही मक़सद था—श्रीमती गांधी को हटवा देना। अब उनका पूरा दारोमदार अपने बेटे और उसकी योजनाओं पर था। उन्हें पूरा भरोसा था कि वह उन्हें इस संकट से उबारने के लिए कोई-न-कोई तरक़ीब ढूंढ निकालेगा। वह देखती थीं कि वह दिन में अठारह-अठारह घंटे काम करता था।

नई दिल्ली में 20 जून को श्रीमती गांधी के समर्थन में सरकारी बन्दोबस्त से जुटायी गयी रैली में श्रीमती गांधी ने कहा कि वह अपनी आखिरी साँस तक जिस हैसियत से हो सका जनता की सेवा करती रहेंगी। उन्होंने यह भी कहा कि सेवा उनके परिवार की परम्परा रही है।

खुली मीटिंग में पहली बार उन्होंने अपने परिवार की चर्चा की थी। उनके

परिवार के लोग मंच पर ही मौजूद थे—संजय, राजीव और उसकी इटैलियन बीवी सोनिया।

श्रीमती गांधी ने कहा कि बड़ी-बड़ी ताक़तें न सिर्फ़ उन्हें प्रधानमंत्री की कुर्सी से हटा देने के लिए, बल्कि उन्हें जान से मरवा देने तक के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा रही थीं और अपने इस मंसूबे को पूरा करने के लिए उन्होंने बड़ी दूर-दूर तक जाल फैलाया था।

बरुआ इन्दिरा गांधी की हवा बाँधने का अपना पुराना काम कर रहे थे। उन्होंने वहीं जोड़-जाड़कर तैयार किया एक उर्दू का शेर पढ़ा :

इन्दिरा, तेरे सुबह की जय, तेरी शाम की जय;
तेरे काम की जय, तेरे नाम की जय।

रैली बहुत कामयाब रही। जैसा कि श्रीमती गांधी ने कहा, "इतनी बड़ी रैली दुनिया में कभी नहीं हुई थी।" लेकिन वह टेलीविज़न पर नहीं दिखायी गयी थी क्योंकि वह पार्टी की रैली थी, सरकारी रैली नहीं थी। और इसकी वजह से गुजराल को अपने मंत्रालय से हाथ धोना पड़ा। संजय की गुजराल से झड़प हो गयी और गुजराल ने झुँझलाकर उससे कह दिया, मैं तुम्हारी माँ का मंत्री हूँ, तुम्हारा नहीं।

पब्लिक मीटिंग से उठकर तेरह मुख्यमंत्री सीधे राष्ट्रपति भवन पहुँचे, जहाँ उन्होंने एक बार फिर श्रीमती गांधी पर उनको पूरा भरोसा होने की बात दोहरायी और एक पेज का मेमोरैंडम राष्ट्रपति को दिया जिसमें कहा गया था कि श्रीमती गांधी के इस्तीफ़ा देने से न सिर्फ़ राष्ट्रीय स्तर पर 'बल्कि अलग-अलग राज्यों में भी' हालत डाँवाँडोल हो जायेगी।

अगले दिन 23 जून को सोमवार के दिन उनमें से कुछ सुप्रीम कोर्ट में भी मौजूद थे जब जस्टिस कृष्ण अय्यर ने श्रीमती गांधी की अपील की सुनवाई की। उनकी अर्ज़ी में "श्रीमती गांधी जिस पद पर थीं उसे देखते हुए" "बिना किसी शर्त के बिलकुल दो-टूक" स्टे-ऑर्डर की माँग की गयी थी। दलील यह दी गयी थी कि "जब तक अपील का फ़ैसला न हो जाये तब तक राष्ट्र के हित में यही मुनासिब है कि वर्तमान स्थिति में कोई हेर-फेर न किया जाये।"

जस्टिस अय्यर ने दोनों पक्षों की दलीलें दो दिन तक सुनीं और वह इस नतीजे पर पहुँचे कि श्रीमती गांधी को 'चुनाव में किसी संगीन गड़बड़ी' का अपराधी नहीं ठहराया गया है। उन्होंने कहा कि वह प्रधानमंत्री बनी रह सकती हैं लेकिन उन्हें लोक-सभा में तब तक वोट देने का अधिकार नहीं होगा जब तक कि सुप्रीम कोर्ट इलाहाबाद हाईकोर्ट के फ़ैसले के ख़िलाफ़ उनकी अपील को निबटा न दे।

स्टे-ऑर्डर कुछ शर्तों के साथ दिया गया था। लेकिन उन पर संसद की बहसों में हिस्सा न लेने की कोई पाबन्दी नहीं लगायी गयी थी। फिर भी जस्टिस अय्यर ने संसद का ध्यान इस बात की ओर दिलाया था कि "क़ानून क्रूर होने पर भी अदालतों की नज़र में क़ानून ही रहता है, लेकिन उससे क़ानून बनानेवाले चौकस और मुस्तैद लोगों की आँखें खुल जानी चाहिये।"

सरकार ने समाचार एजेंसियों से यह बन्दोबस्त कर लिया, रेडियो और टेली-विज़न तो उनके कब्ज़े में थे ही, कि फ़ैसले का वही पहलू उभारा जाये जिसमें 'उनके मतलब की' बात कही गयी थी। इसका मतलब यह था कि श्रीमती गांधी के प्रधानमंत्री बने रहने पर कोई पाबन्दी नहीं थी।

तब तक जयप्रकाश भी दिल्ली पहुँच चुके थे। विपक्ष के नेता सुप्रीम कोर्ट से टक्कर लेना नहीं चाहते थे। उन्होंने फ़ैसले का स्वागत तो किया लेकिन एक बयान में

यह भी कहा कि "श्रीमती गांधी की साख बिलकुल उठ चुकी है, उनकी सदस्यता सीमित हो गयी है और वोट देने का अधिकार उनसे छिन चुका है। ऐसी हालत में वह किस तरह प्रधानमंत्री रह सकती हैं?" उन लोगों ने श्रीमती गांधी को इस्तीफ़ा देने पर मजबूर करने के लिए सारे देश में आन्दोलन छेड़ने के अपने पक्के इरादे को एक बार फिर दोहराया।

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी इस वक़्त ग़ैर-कम्युनिस्ट विपक्ष के साथ शामिल तो नहीं हुई लेकिन उसका रवैया भी बहुत-कुछ ऐसा ही था—चूंकि इलाहाबाद हाई-कोर्ट ने श्रीमती गांधी को 'झूठा' साबित कर दिया है इसलिए उन्हें इस्तीफ़ा दे देना चाहिए।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी उनका समर्थन करती रही। पार्टी के केन्द्रीय सचिव-मण्डल ने कहा कि उन्हें 'दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादियों की धौंस' के आगे हथियार नहीं डालना चाहिए और प्रधानमंत्री के पद पर बने रहना चाहिए।

जस्टिस अय्यर के फ़ैसले से जगजीवनराम के मंसूबों पर पानी फिर गया। उन्हें उम्मीद थी कि स्टे-ऑर्डर कुछ शर्तों के साथ दिया जायेगा, और अदालत के फ़ैसले में यह बात साफ़-साफ़ नहीं कही जायेगी कि वह प्रधानमंत्री बनी रह सकती हैं। बहरहाल उन्होंने अपनी चाल चलने में देर कर दी थी और जिस तरह बरुआ और दूसरे लोगों ने एक नैतिक सवाल को राजनीतिक सवाल बना दिया था, उसके बाद तो स्टे-ऑर्डर की कोई हैसियत ही नहीं रह गयी थी।

अब जगजीवनराम भी केन्द्रीय मंत्रियों, मुख्यमंत्रियों और दूसरे लोगों से सुर में सुर मिलाने लगे। एक बयान में और एक प्रस्ताव में इन लोगों ने कहा था कि श्रीमती गांधी के प्रधानमंत्री की हैसियत से काम करते रहने में कोई रुकावट नहीं थी। जगजीवनराम इससे भी एक क़दम आगे बढ़ गये—उन्होंने कहा, यह सिर्फ़ एक क़ानूनी मसला है, इसमें किसी नैतिक या राजनीतिक सवाल का दखल नहीं है। नैतिकता श्रीमती गांधी के पक्ष में थी।

कांग्रेस पार्टी के संसदीय बोर्ड की भी मीटिंग हुई और उसने पूरे राष्ट्र को चेतावनी दी कि "हो सकता है कि कुछ गिरोह और कुछ लोग अपने स्वार्थ के लिए जनता को गुमराह करने और हालात का फ़ायदा उठाने की कोशिश करते रहें।"

जिन लोगों में पार्टी के बाक़ी लोगों की तरह इस मामले में उतना जोश नहीं था उनमें युवा तुर्क भी थे—चन्द्रशेखर, मोहन धारिया, रामधन, कृष्णकांत और श्रीमती लक्ष्मीकांतम्मा—और इनके अलावा कुछ और लोग भी। उन्होंने अपनी ताक़त का अंदाजा लगाने के लिए अलग एक मीटिंग की। ताक़त तो बहुत नहीं थी; उनका साथ देनेवालों के नाम उँगलियों पर गिने जा सकते थे।

चन्द्रशेखर और कृष्णकांत दोनों ही ने मुझे बताया, "ऐसे लोग तीस से ज़्यादा नहीं रहे होंगे। लेकिन बहुत-से लोग ऐसे थे जिन्होंने जरूरत पड़ने पर उनके साथ आ जाने का वादा किया था।"

इलाहाबाद वाले फ़ैसले के बाद इन्दिरा के पक्ष में एक मुहिम चलाने के लिए कांग्रेस के नेताओं ने जिस तरह जनवादी आदर्शों का सम्मान करने का दिखावा करना भी छोड़ दिया था उससे युवा तुर्क बहुत दुःखी थे। उन्हें सबसे ज़्यादा निराशा जगजीवनराम से हुई थी, जो यह वायदा करने के बाद कि वह उनके साथ हैं, मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए थे।

श्रीमती गांधी के रवैये की उन्हें परवाह नहीं थी क्योंकि वे पार्टी की तरफ़ से उनके खिलाफ़ अनुशासन की कार्रवाई किये जाने के लिए तैयार थे। उन्होंने इस बात

को कभी छिपाने की कोशिश नहीं की थी कि वे जयप्रकाश को बहुत सराहते थे। चन्द्रशेखर श्रीमती गांधी से कितनी ही बार कह चुके थे कि वह जयप्रकाश से मिल लें और राजनीति की गन्दगी दूर करने के लिए उनका सहयोग लें। 24 जून को चन्द्रशेखर ने जयप्रकाश को रात के खाने पर बुलाया। ख़ुफ़िया विभाग वालों ने ख़बर दी थी कि अस्सी संसद-सदस्य युवा तुर्कों के ढँग से सोचते थे। लेकिन उस दिन दावत में सिर्फ़ बीस लोग आये थे।

संजय को और उसकी टोली को इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं थी कि युवा तुर्कों के बीच क्या हो रहा है; परवाह तो उन्हें, सच पूछा जाये तो, इसकी भी नहीं थी कि कांग्रेस पार्टी के अन्दर क्या हो रहा है। वे अब अपनी योजना को पूरा करने के लिए सारे कलपुर्जों को ठीक कर रहे थे। सिद्धार्थशंकर रे ने उनके लिए पूरा ब्यौरा तैयार कर दिया था कि क्या-क्या करना है।

दो ही दिन पहले उन्होंने श्रीमती गांधी को कलकत्ता से टेलीफोन करके बताया था कि अगर 'कुछ करना' है तो उसका एक ही तरीक़ा है कि 'भीतरी' इमर्जेंसी का ऐलान कर दिया जाये। ('बाहरी' इमर्जेंसी तो बंगलादेश की लड़ाई शुरू होने के वक़्त दिसम्बर 1971 से ही लागू थी।) उन्होंने बताया था कि संविधान की धारा 352 में राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया था कि अगर देश के अन्दर उपद्रव हो रहा हो तो वह इमर्जेंसी लागू कर सकते हैं। इस तरह सरकार को मनचाहे अधिकार मिल जायेंगे।

श्रीमती गांधी ने उनसे फ़ौरन दिल्ली आ जाने को कहा। उनके लिए कलकत्ता से अचानक चले आने में कोई कठिनाई नहीं थी। एक मजाक़ मशहूर था कि उनका सामान हमेशा बँधा तैयार रहता था और दिल्ली का हवाई जहाज का टिकट हमेशा उनकी जेब में रहता था। जब से वह केन्द्रीय मंत्रिमण्डल छोड़कर मुख्यमंत्री बने थे, तब से हर हफ़्ते औसतन दो बार वह प्रधान मंत्री से सलाह-मशविरा करने दिल्ली जाते रहे थे।

नई दिल्ली में 24 जून को अपनी बातचीत के दौरान सिद्धार्थशंकर रे अपने इस विचार पर ही ज़ोर देते रहे। प्रधानमंत्री की कोठी से जल्दी-जल्दी संसद की लाइब्रेरी से संविधान की एक कापी मँगवायी गयी। अख़बारों और श्रीमती गांधी के विरोधियों का मुँह बन्द करने के लिए 'कुछ करने' की जो एक धुँधली-सी योजना थी उसको अब न सिर्फ़ एक ठोस शक्ल उभर आयी थी बल्कि उसको संविधान का सहारा भी मिल गया था—जिस कार्रवाई की योजना तानाशाही क़ायम करने के लिए बनायी गयी थी उस पर परदा डालने के लिए एक वकील ने 'भीतरी इमर्जेंसी' की आड़ ढूंढ़ निकाली थी।

प्रधानमंत्री के सेक्रेटेरियट ने इमर्जेंसी लागू करने के लिए एक नोट पहले से ही तैयार कर रखा था। यह अचानक संकट आ पड़ने पर काम आनेवाली उन योजनाओं में से एक थी जो हमेशा तैयार रखी जाती थीं। इमर्जेंसी के अधिकारों के तहत केन्द्रीय सरकार राज्यों को कोई भी हिदायत दे सकती थी, संविधान की 19वीं धारा[1]

1. संविधान की 19वीं धारा के अनुसार सब नागरिकों को वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य का; शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का; संस्था या संघ बनाने का; भारत राज्य-क्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का; भारत राज्य-क्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का; सम्पत्ति के अर्जन, धारण और चयन का; तथा कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने का; अधिकार होगा।

को स्थगित कर सकती थी या सभी मूल अधिकारों को स्थगित कर सकती थी, अदालतों को हुक्म दिया जा सकता था कि वे इन अधिकारों को लागू करवाने के उद्देश्य से दायर किये गये मुक़द्दमे की सुनवाई न करें, इत्यादि। इमर्जेंसी में केन्द्रीय सरकार के अधिकारों की कोई सीमा नहीं थी।

अकसर ऐसा लगता था कि श्रीमती गांधी को इस बात की ज़्यादा चिन्ता रहती थी कि कोई चीज़ बाहर से देखने में कैसी लगती है, इस बात की उतनी नहीं कि उसका असली सार क्या है। उन्होंने सन्तोष की साँस ली, इमर्जेंसी की घोषणा करना कोई ऐसा काम नहीं होगा जो संविधान के खिलाफ़ हो।

उनका रवैया नेहरू के रवैये से कितना अलग था। 1962 में जब चीनियों के खिलाफ़ हमारे पैर उखड़ जाने की वजह से सारा देश उनके खिलाफ़ होता जा रहा था, तो उस समय के रक्षामंत्री कृष्ण मेनन ने भीतरी इमर्जेंसी लागू कर देने का सुझाव रखा था। नेहरू ने इसे मानने से इस बुनियाद पर इंकार कर दिया था कि इससे जनवादी परम्पराओं को धक्का पहुँचेगा।

अब चूँकि इमर्जेंसी लागू करने का फ़ैसला कर लिया गया था इसलिए गोखले को उसे क़ानूनी जामा पहनाने के लिए बुलाया गया। लेकिन यह बात उनको भी नहीं मालूम थी कि वह किस तारीख़ से लागू की जायेगी।

इस कार्रवाई के लिए 25 जून की आधी रात का वक़्त तय किया गया था। यह सोचा गया था कि तब तक सुप्रीम कोर्ट का फ़ैसला आ जायेगा।

बुनियादी बात यह थी कि किसी को कानों-कान खबर न हो। श्रीमती गांधी, संजय, धवन, बंसीलाल, ओम मेहता, किशनचन्द और अब सिद्धार्थशंकर रे को छोड़कर किसी को भी पता नहीं था कि जल्द ही यह कार्रवाई होने वाली है, हालाँकि सैकड़ों लोगों के पास आदेश भेजे जाने लगे थे कि उन्हें क्या काम करना है। ज़्यादातर ये आदेश गिरफ़्तारियों के बारे में थे।

बरुआ ताड़ गये थे कि कोई खिचड़ी पक रही है। उन्हें 24 जून को इमर्जेंसी के बारे में बताया गया। वह चाहते थे कि इस बार के असर को नरम करने के लिए कुछ 'प्रगतिशील कदम' उठाये जायें, और इसके लिए उन्होंने चीनी की और कपड़े की मिलों के राष्ट्रीयकरण का सुझाव रखा। उन्होंने दलील यह दी कि 1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण से किस तरह राष्ट्रपति के चुनाव में उन्हें कांग्रेस के सरकारी उम्मीदवार को हराने में मदद मिली थी। लेकिन संजय ने, जो निजी कारोबार में पक्का विश्वास रखता था, इस सुझाव को ठुकरा दिया।

बरुआ ने एक और सुझाव रखा—बेरोज़गार लोगों को गुज़ारा देने का सुझाव। संजय ने यह कहकर कि इसमें पैसा बहुत लगेगा, इस सुझाव को भी ठुकरा दिया। कहा जाता था कि दो करोड़ से ज़्यादा लोग बेरोज़गार थे।

ब्रह्मानन्द रेड्डी को 25 जून को यह भेद की बात बतायी गयी। लेकिन उन्हें यह फिर भी नहीं बताया गया कि किन-किन लोगों को गिरफ़्तार किया जाने वाला है; और उन्होंने जानने की कोशिश भी नहीं की। कुछ अरसे से उन्होंने, अपनी जान बचाये रखने के लिए, अपने ही गृह मंत्रालय में हाँ-में-हाँ मिलाकर समय काटते रहना सीख लिया था।

विपक्ष को इस बात की कोई जानकारी नहीं थी कि क्या होने वाला है। शायद मालदार मार्क्सवादी ज्योतिर्मय बसु का तीर निशाने के सबसे पास जाकर लगा था जब उन्होंने खुलेआम यह कहा था कि श्रीमती गांधी संविधान को ही रद्द कर देने की बात सोच रही हैं—प्रधानमंत्री के यहाँ से किसी से उन्हें यह भनक मिली थी

कि कोई सख़्त क़दम उठाया जाने वाला है। ज्योतिर्मय बसु ने अपने मकान की खिड़कियों में लोहे के सींखचे लगवा लिये थे। बीजू पटनायक को भी, जो उड़ीसा के मुख्यमंत्री रह चुके थे और भारतीय लोकदल के एक नेता थे, मन-ही-मन ऐसा लग रहा था कि इस तरह की कोई योजना बनायी जा रही है, और उन्होंने अपना यह अंदेशा ज़ाहिर भी किया था। लेकिन विपक्ष में किसी ने इन लोगों की बातों का यक़ीन नहीं किया था। इन सुझावों की बात सोची भी नहीं जा सकती थी, इसलिए उन पर यक़ीन करना भी मुश्किल था।

बहरहाल, विपक्ष के नेता 25 जून की रैली की तैयारियों में लगे हुए थे। जयप्रकाश के दिल्ली देर से पहुँचने की वजह से, जिन्हें अब प्यार से 'लोकनायक' कहा जाने लगा था, यह रैली एक दिन के लिए टल गयी थी।

यह दिल्ली की एक सबसे बड़ी रैली थी, लेकिन उतनी बड़ी नहीं जितनी श्रीमती गांधी की थी, और श्रीमती गांधी के समर्थक इस बात के लिए अपनी पीठ ठोंक रहे थे। लेकिन जो लोग जयप्रकाश की रैली में आये थे वे खुद वहाँ पहुँचे थे; उन्हें लाने के लिए सरकार की तरफ़ से किराये की लारियों का इन्तज़ाम नहीं किया गया था; वह भाड़े की भीड़ नहीं थी। एक के बाद एक विपक्ष के नेताओं ने प्रधानमंत्री को गद्दी से चिपके रहने पर बहुत खरी-खरी बातें सुनायीं; कुछ ने तो यहाँ तक कहा कि वह डिक्टेटर की तरह काम कर रही हैं। उन्होंने यह बात साफ़ कर दी कि वे उनकी एक नहीं चलने देंगे।

जयप्रकाश ने पाँच आदमियों की एक लोक-संघर्ष समिति बनाने का ऐलान किया, जिसके चेयरमैन मोरारजी देसाई थे और जनसंघ के चोटी के नेता नानाजी देशमुख सेक्रेटरी थे, जिसे श्रीमती गांधी को इस्तीफ़ा देने पर मजबूर करने के लिए 29 जून से सारे देश में आंदोलन छेड़ने का काम सौंपा गया। अहिंसा का रास्ता अपनाकर हड़तालें, सत्याग्रह और प्रदर्शन करने का कार्यक्रम बनाया गया था।

जयप्रकाश ने वहाँ पर मौजूद भीड़ से हाथ उठाकर यह बताने को कहा कि देश में नैतिक आदर्शों के फिर से क़ायम करने के लिए वे ज़रूरत पड़ने पर जेल जाने को तैयार हैं। सबने अपने-अपने हाथ उठा दिये। ताज्जुब की बात है कि चौबीस ही घंटे बाद, जेल जाना तो दूर रहा, इनमें से ज़्यादातर लोगों ने कोई आवाज़ भी नहीं उठायी जब आवाज़ उठाना ज़रूरी था। जयप्रकाश ने पुलिस और फ़ौज के लोगों से भी अपील की कि, जैसा कि उनकी क़ायदे-क़ानून की किताब में लिखा है, वे किसी भी 'ग़ैर-क़ानूनी' हुक्म को मानने से इंकार कर दें।

अनोखा व्यंग्य था कि 1930 के आसपास के दिनों में खुद कांग्रेस यही बात कहा करती थी। श्रीमती गांधी के दादा मोतीलाल नेहरू ने ही कांग्रेस पार्टी को यह प्रस्ताव रखने के लिए तैयार किया था जिसमें पुलिस से कहा गया था कि वह ग़ैर-क़ानूनी हुक्म मानने से इंकार कर दे। जिन लोगों को इस प्रस्ताव के पर्चे छपवाकर बाँटने के लिए सज़ा दी गयी थी, उनकी अपील उस वक़्त इलाहाबाद के हाईकोर्ट ने मंज़ूर कर ली थी। ब्रिटिश राज्य के जजों ने फ़ैसला दिया था कि पुलिस से ग़ैर-क़ानूनी हुक्म न मानने के लिए कहना कोई ग़लत बात नहीं है।

लेकिन श्रीमती गांधी, संजय और उनके समर्थकों के लिए पुलिस और फ़ौज से जयप्रकाश की यह अपील प्रचार का सबसे अच्छा हथियार था। अब वे कह सकते थे कि वह फ़ौज में गड़बड़ी फैलाने की कोशिश कर रहे थे; यह एक ऐसी बात थी जिस पर बग़ावत फैलाने की सजा दी जा सकती थी।

लेकिन यह तो बस एक बहाना था। इस रैली से बहुत पहले ही से संजय

गांधी और उनके भरोसे के लोग घातक वार करने की तैयारी कर रहे थे। जैसे-जैसे आधी रात का वक़्त क़रीब आता गया, वैसे-वैसे प्रधानमंत्री की कोठी में हलचल भी बढ़ती गयी। सभी राज्यों को आदेश भेज दिये गये थे, और बहुत से लोग यह जानना चाहते थे कि उन्हें अख़बारों पर सेंसर लागू कर देने और श्रीमती गांधी के विरोधियों को पकड़ लेने के अलावा क्या और भी कुछ करना है। दिल्ली में और दूसरी जगहों पर जो नेता गिरफ़्तार किये जाने वाले थे उनकी फ़ेहरिस्तें तैयार थीं और वे श्रीमती गांधी को दिखा भी दी गयी थीं। ये फ़ेहरिस्तें तैयार करने में एक ख़ुफ़िया विभाग, जिसने बहुत मदद की थी वह था रिसर्च ऐंड एनालिसिस विंग (शोध तथा विश्लेषण विभाग), जिसे संक्षेप में 'रा' कहा जाता था।

रा की स्थापना विदेशों में भारत की जासूसी में सुधार करने के लिए 1962 में उस वक़्त की गयी थी जब चीनियों के ख़िलाफ़ हमारी लड़ाई ख़त्म होने वाली थी, क्योंकि चीनियों के ख़िलाफ़ लड़ाई के दौरान हमारी जासूसी बहुत निकम्मी साबित हुई थी। शुरू-शुरू में बीजू पटनायक ने भी इस काम में हाथ बँटाया था, क्योंकि उनके बारे में यह मशहूर था कि वह "दुश्मन की पाँतों के पीछे घुसकर काम कर चुके हैं।" कई साल पहले जब इण्डोनेशिया पर डच लोगों का शासन था, उस वक़्त वह वहाँ के राष्ट्रीय आन्दोलन के नेता सुकार्नो को छुड़ाकर लाने के लिए ख़ुद उड़ाकर हवाई जहाज़ जकार्ता ले गये थे।

रा सीधे प्रधानमंत्री के सेक्रेटेरियट की निगरानी में काम करता था। श्रीमती गांधी पहली प्रधानमंत्री थीं जिन्होंने इसे देश के अन्दर राजनीतिक जासूसी के लिए इस्तेमाल किया था। इसका गठापन और इसमें काम करने वाले लोग उसकी सबसे बड़ी ख़ूबी थे, उन्हें इस बुनियाद पर चुना जाता था कि वे या तो अपनी पढ़ाई में बहुत अच्छे रह चुके थे, या भरोसे के किसी ऊँचे सरकारी अफ़सर या पुलिस के अफ़सर से उनकी रिश्तेदारी थी। रा ने सरकार का विरोध करने वालों, कांग्रेस पार्टी के अन्दर आलोचना करने वालों, व्यापारियों, सरकारी अफ़सरों और पत्रकारों के बारे में पूरा ब्यौरा अपने यहाँ जमा कर रखा था। विरोधियों की फ़ेहरिस्त तैयार करना कोई मुश्किल काम नहीं था; रा के पास सबकी फ़ाइलें तैयार थीं।

इस सवाल पर भी विचार कर लेना ज़रूरी था कि गिरफ़्तारी किस क़ानून के तहत की जाये। आन्तरिक सुरक्षा क़ानून (मीसा) में अभी साल ही भर पहले कुछ हेर-फेर करके सरकार को इस बात का अधिकार दे दिया गया था कि वह अदालत के सामने जुर्म लगाये बिना किसी भी आदमी को गिरफ़्तार या नज़रबन्द कर सकती है। लेकिन, जब यह क़ानून पास किया गया था उस वक़्त सरकार ने संसद में विपक्ष को यह विश्वास दिलाया था कि मीसा को राजनीतिक विरोधियों को नज़रबन्द करने के लिए इस्तेमाल नहीं किया जायेगा।

बंसीलाल चाहते थे कि दिल्ली में जिन नेताओं को गिरफ़्तार किया जाये उन्हें हरियाणा में नज़रबन्द किया जाये। उन्होंने श्रीमती गांधी को बताया, "मैंने रोहतक में एक बहुत बड़ा आधुनिक जेल बनवाया है।"

श्रीमती गांधी ने थल-सेना के प्रधान सेनापति जनरल रैना को दौरे पर से वापस बुला लिया। यह सिर्फ़ इसलिए किया गया था कि कहीं कोई ऐसी-वैसी बात न हो जाये।

इस वक़्त तक दिल्ली पुलिस के चोटी के अफ़सरों को यह पता लग चुका था कि जयप्रकाश नारायण, मोरारजी, संगठन कांग्रेस के प्रेसीडेंट अशोक मेहता और जनसंघ के नेता अटल बिहारी वाजपेयी और लालकृष्ण अडवाणी जैसे लोग भी गिरफ़्तार

किये जाने वाले हैं।

किस क़ानून के तहत ? चूँकि उन्हें इमर्जेंसी के बारे में कुछ पता नहीं था इसलिए उन्होंने यह मालूम करने की कोशिश की कि उन्हें किस तरह गिरफ़्तार किया जाये। उनसे कहा गया कि भारतीय दण्ड-संहिता (आई० पी० सी०) की दफ़ा 107 में। लेकिन इस दफ़ा में तो आवारा लोग पकड़े जाते थे। जयप्रकाश और मोरारजी को इस दफ़ा में कैसे गिरफ़्तार किया जा सकता था ?

दिल्ली के नामों की फ़ेहरिस्त अभी किशनचन्द की मदद से तैयार की जा रही थी। जब पुलिस ने गिरफ़्तारी के वारण्ट माँगे तो दिल्ली के डिप्टी कमिश्नर सुशील कुमार इस बात पर अड़ गये कि पहले उन्हें नाम बताये जायें। जब धवन को यह बात बतायी गयी तो वह आपे से बाहर हो गये और उन्होंने सुशील कुमार को चुपचाप बात मान लेने पर मजबूर कर दिया। उन्होंने सादे वारण्टों पर दस्तखत कर दिये। पी० एस० भिंडर, जो 'भरोसे के' पुलिस अफ़सर थे और हरियाणा से स्पेशल (ख़ुफ़िया) ब्रांच में लाये गये थे, ज़रूरत के हिसाब से हर वारण्ट में नाम भरते जाते थे।

राज्यों में मुख्यमंत्रियों को मालूम था कि क्या होने वाला है। वे अपने-अपने पुलिस के इंस्पेक्टर-जनरलों और चीफ़ सेक्रेटरियों के साथ बैठे गिरफ़्तार किये जानेवालों के नाम पक्के कर रहे थे। हालाँकि बुनियादी तैयारियों की शुरुआत उसी वक़्त से हो गयी थी जब 20 जून के लगभग मुख्यमत्री दिल्ली से लौटे थे, लेकिन तब तक नक़्शा कुछ धुंधला था; उस वक़्त यह सोचा गया था कि कुछ ही लोगों को पकड़कर उनका मुँह बन्द करने के लिए कुछ दिन तक जेल में रखना होगा।

जब भी मुख्यमंत्रियों को कोई दुविधा होती थी तो वे प्रधानमंत्री की कोठी पर टेलीफोन करते थे, जिसे 'घराना' या 'महल' कहा जाता था। उधर से उनके सवालों का जवाब धवन देते थे। कुछ मुख्यमंत्री अभी तक यह बात ठीक से नहीं समझ पाये थे कि जब पहले से ही इमर्जेंसी लागू है तो फिर इस नई इमर्जेंसी की क्या ज़रूरत है। धवन ने उनको दोनों का फ़र्क समझाया।

उत्तर प्रदेश में, लखनऊ में पुलिस के हैडक्वार्टर में एफ० आई० आर० (पहली सूचना की रिपोर्ट) का एक नमूना तैयार करके थाने-थाने भिजवा दिया गया ताकि फ़ाइलों का पेट भरने के लिए हाथ में कुछ रहे। ऐसा केवल सावधानी बरतने के लिए किया गया था, हालाँकि यह सभी जानते थे कि मीसा के क़ैदियों को कोई वजह बताये बिना ही गिरफ़्तार किया जा सकता है।

सिद्धार्थशंकर रे अकेले मुख्यमंत्री थे जो दिल्ली में डेरा डाले हुए थे और यहीं से टेलीफोन पर कलकत्ता में अपने अफ़सरों को आदेश भेजते रहते थे। वह रुक इसलिए गये थे कि श्रीमती गांधी चाहती थीं कि जब वह राष्ट्रपति के पास इमर्जेंसी की घोषणा पर दस्तखत कराने जायें तो वह उनके साथ रहें।

ऐन वक़्त से लगभग चार घंटे पहले सिद्धार्थशंकर रे और श्रीमती गांधी राष्ट्रपति-भवन गये। सिद्धार्थ बाबू को यह समझाने में कि भीतर इमर्जेंसी में क्या-क्या होगा लगभग पैंतालीस मिनट लग गये। राष्ट्रपति बहुत जल्दी ही उसका मतलब समझ गये। वह भी वकालत कर चुके थे। इसके अलावा उन्हें अपने यहाँ काम करनेवाले एक असिस्टेंट के० एल० धवन से, जो प्रधानमंत्री के यहाँ काम करनेवाले धवन के भाई थे, कुछ-कुछ भनक मिल गयी थी कि क्या करने की कोशिश की जा रही है।

आनाकानी करने की बात उन्होंने सोची तक नहीं। उनके ऊपर श्रीमती गांधी के इतने बड़े एहसान का बोझ था कि उन्हें देश के इस सबसे ऊँचे पद पर पहुँचा दिया गया। राष्ट्रपति श्रीमती गांधी के बहुत निकट रह चुके थे, ख़ास तौर पर 1969 के बाद

से जब उन्होंने और जगजीवनराम ने मिलकर उस वक़्त के कांग्रेस के अध्यक्ष एस० निजलिंगप्पा को पत्र लिखकर इस बात पर एतराज़ किया था कि वह राष्ट्रपति पद के लिए कांग्रेस के सरकारी उम्मीदवार संजीव रेड्डी के पक्ष में समर्थन जुटाने के लिए जनसंघ और दक्षिणपंथी स्वतन्त्र पार्टी के पास जा रहे थे। राष्ट्रपति अहमद को याद था कि किस तरह उन लोगों ने, श्रीमती गांधी के नेतृत्व में, रेड्डी को हटाकर[1] कांग्रेस के चोटी के नेताओं के गुट को, जिसे सिंडीकेट कहा जाता था, नीचा दिखाया था।

इमर्जेंसी की घोषणा पर राष्ट्रपति ने उसके लागू होने से पन्द्रह मिनट पहले 25 जून को रात के 11 बजकर 45 मिनट पर दस्तख़त किये। प्रधानमंत्री की कोठी वाले धवन साहब उसका मसविदा लेकर आये थे। उस दिन राष्ट्रपति भवन में काम करनेवाला कोई भी अफ़सर सुबह सात बजे से पहले सोने नहीं गया। इस घोषणा में कहा गया था, "आन्तरिक उपद्रवों के कारण भारत की सुरक्षा के लिए संकट उत्पन्न हो गया है जिसके कारण गम्भीर आपात-स्थिति मौजूद है।" उसमें सरकार को अख़बारों पर सेंसरशिप लागू कर देने, नागरिक अधिकार लागू करवाने के बारे में अदालतों में मुक़दमे रुकवा देने, आदि के अधिकार दे दिये गये थे।

बहुत-कुछ वैसा ही हो रहा था जैसा कि कई साल पहले जर्मनी में हुआ था। हिटलर ने प्रेसीडेंट हिंडेनबर्ग पर दबाव डालकर 'जनता और राज्यसत्ता की रक्षा के लिए' एक अध्यादेश पर दस्तख़त करा लिये थे, जिसके अनुसार संविधान की वे धाराएँ कुछ समय के लिए रद्द कर दी गयीं जिनमें व्यक्ति और नागरिक स्वतन्त्रताओं की गारंटी दी गयी थी।

अब श्रीमती गांधी के हाथ में विपक्ष से और अख़बारों से निबटने के लिए, जो उनकी क़ानूनी हैसियत को मानने से इंकार करते थे, सारी ताक़त आ गयी थी। अब उनके पास क़ानूनों में मनमानी कतरब्योंत करने की सारी ताक़त थी; नियमों और परम्पराओं को बदलने की सारी ताक़त थी। वह देश, जो अगस्त 1947 में अपनी स्वतन्त्रता हासिल करने के बाद से जनवाद के रास्ते पर धीरे-धीरे लड़खड़ाता हुआ आगे बढ़ता आया था—पश्चिमी देशों की उस तमाम नुकताचीनी के बावजूद कि यह प्रणाली भारत के लिए ठीक है भी कि नहीं—वहीं अब डिक्टेटरशिप जैसी व्यवस्था क़ायम हो गयी थी।

श्रीमती गांधी ने एक बार कहा था कि वह चाहती हैं कि इतिहास में उनका नाम एक ताक़तवर हस्ती की हैसियत से लिया जाये, "कुछ नेपोलियन या हिटलर की तरह क्योंकि उन्हें हमेशा याद रखा जायेगा।"

उनके पिता ने लगभग चालीस साल पहले जो कुछ अपने बारे में लिखा था[2] वह आज बेटी के बारे में भी सच साबित होने लगा था : "एक ज़रा-से मोड़ से जवाहरलाल चींटी की चाल से चलनेवाले जनवाद का सारा ताम-झाम दूर फेंककर डिक्टेटर बन सकते हैं। वह जनवाद और समाजवाद की भाषा और उसके नारे भले ही इस्तेमाल करते रहें, लेकिन हम सभी जानते हैं कि इसी भाषा के सहारे फ़ासिज़्म किस तरह पनपा और बाद में उसने उसे बेकार काठ-कबाड़ की तरह फेंक दिया।... उनकी काम करवाने की, जो भी चीज़ उन्हें नापसन्द हो उसका सफ़ाया कर देने की

1. पूरी जानकारी के लिए मेरी किताब 'इंडिया : द क्रिटिकल इयर्स' पढ़िये। विकास, दिल्ली 1971।

2. नेहरू ने कलकत्ते की पत्रिका 'माडर्न रिव्यू' के 5 अक्तूबर 1937 के अंक में 'राष्ट्रपति जवाहरलाल की जय' के शीर्षक से एक गुमनाम लेख प्रकाशित करवाया था।

और नये सिरे से चीज़ों को बनाने की जो धुन उनमें है, वह जनवाद की धीमी चाल को...शायद ही बर्दाश्त कर सके। वह भले ही भूसी अपने पास रख लें, लेकिन उसे भी वह अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ मोड़कर ही दम लेंगे। आम हालात के ज़माने में वह बस एक मुस्तैद और क़ामयाब अफ़सर से ज़्यादा कुछ नहीं होंगे, लेकिन इन्क़लाबी दौर में सीज़र बनने का लालच हमेशा सामने रहेगा, और क्या यह मुमकिन नहीं है कि जवाहरलाल अपने आपको सीज़र समझने लगें ?"

जो भी नेहरू को जानता है वह यह भी जानता होगा कि वह ऐसा नहीं कर सकते थे। और जो भी उनकी बेटी को जानता है वह यह भी जानता होगा कि वह अपने को सिर्फ़ सीज़र समझकर ही सन्तोष कर लेनेवाली नहीं थीं। उस रात इस नाटक में उनका बेटा परदे के पीछे खड़ा उन्हें बता रहा था कि उन्हें कब क्या कहना है और कब क्या बोलना है।

उस रात प्रधानमंत्री के घर पर कोई सोया नहीं। राष्ट्रपति-भवन से लौटकर श्रीमती गांधी ने सुबह छः बजे कैबिनेट की मीटिंग बुलाने का फ़ैसला किया। उस वक़्त तक उन्हें मालूम हो चुका था कि जयप्रकाश, मोरारजी और सैकड़ों दूसरे लोगों की गिरफ़्तारियाँ योजना के अनुसार चल रही हैं।

यह कार्रवाई अचानक, बड़ी तेज़ी से और बड़ी बेरहमी के साथ की गयी थी और उसमें वे सारी बातें मौजूद थीं जो सत्ता पर ज़बर्दस्ती कब्ज़ा कर लेने में होती हैं।

दिल्ली में विपक्ष के नेताओं को रात के ढाई और तीन बजे के बीच जगाकर गिरफ़्तारी के वारंट दिखाये गये और उन्हें पकड़कर एक थाने में ले जाया गया। कैसा व्यंग्य है कि यह थाना संसद भवन से बहुत दूर नहीं था। उन्हें मीसा में नज़रबन्द कर दिया गया, उसी क़ानून के तहत जिसमें स्मगलरों को नज़रबन्द किया गया था।

जो लोग गिरफ़्तार किये गये थे उनमें दक्षिणपंथ के जनसंघ से लेकर वामपंथ की मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी तक सभी पार्टियों के लोग थे। विपक्ष की एक ही पार्टी जिसे हाथ नहीं लगाया गया था वह थी मास्को-समर्थक कम्युनिस्ट पार्टी जो कांग्रेस का साथ देती रही थी।

जिस वक़्त जयप्रकाश को गिरफ़्तार किया गया तो उन्होंने संस्कृत का यह श्लोक पढ़ा : विनाशकाले विपरीत बुद्धि। दो ही दिन पहले मोरारजी देसाई ने इटली के एक पत्रकार के इस सुझाव को मानने से इंकार कर दिया था कि वह गिरफ़्तार किये जा सकते हैं। उन्होंने कहा था, "वह ऐसा कभी नहीं करेंगी। ऐसा करने से पहले वह आत्महत्या कर लेंगी।" मोरारजी और जयप्रकाश को दिल्ली के पास ही सोना के डाक बँगले में ले जाया गया। लेकिन दोनों को अलग-अलग कमरों में रखा गया, जिनके बीच कोई आने-जाने का रास्ता भी नहीं था।

दिल्ली के ज़्यादातर अख़बार नहीं निकले क्योंकि आधी रात से पहले ही उनके प्रेसों की बिजली काट दी गयी थी; सरकारी तौर पर सफ़ाई यह दी गयी कि बिजलीघर में कुछ 'गड़बड़ी' पैदा हो गयी है। नई दिल्ली में स्टेट्समैन और हिन्दुस्तान टाइम्स निकले क्योंकि उनको बिजली दिल्ली म्युनिसिपल कार्पोरेशन से नहीं बल्कि नई दिल्ली की म्युनिसिपल कमेटी से मिलती थी और अख़बारों की बिजली काट देने का हुक्म सिर्फ़ दिल्ली म्युनिसिपल कार्पोरेशन को भेजा गया था। पंजाब और मध्य प्रदेश में भी छापेख़ानों की बिजली काट दी गयी, लेकिन दूसरी जगहों के शहरों में अख़बार निकले। 26 जून को सुबह देश के अन्दर की हालत के बारे में अख़बारों में कुछ भी लिखने पर सेंसरशिप लागू कर दी गयी। सारी ख़बरें जाँच-पड़ताल के लिए

सरकार के पास भेजनी पड़ती थीं।

जिस वक़्त तक मंत्री लोग कैबिनेट की मीटिंग के लिए 1 सफ़दरजंग रोड पर पहुँचे, उस वक़्त तक जितने लोगों के नाम गिरफ़्तारी की फ़ेहरिस्तों में थे वे लगभग सभी पकड़े जा चुके थे। सरकार ने अख़बारों को इन लोगों की संख्या 676 बतायी; कैबिनेट के मंत्रियों को यह भी नहीं बताया गया। इमर्जेंसी की घोषणा उनके सामने घटना हो जाने के बाद मंज़ूरी के लिए रख दी गयी। सभी लोग चुप रहे। जगजीवन-राम और चह्वाण बस अपने सामनेवाली दीवार को तकते रहे। चारों तरफ़ एक तनाव था।

कुछ देर बाद स्वर्णसिंह बोले। उन्होंने पूछा कि क्या इमर्जेंसी सचमुच ज़रूरी थी? उन्होंने इसके बारे में ज़्यादा कुछ नहीं कहा, और न ही श्रीमती गांधी ने कुछ कहा। इसके बाद सिर्फ़ इस पर थोड़ी देर चर्चा हुई कि संविधान की दृष्टि से इमर्जेंसी का क्या मतलब है।

लेकिन कैबिनेट की मीटिंग तो महज़ खानापूरी थी। यह रस्म पूरी हो जाने के बाद श्रीमती गांधी ने रेडियो पर अपने भाषण की तैयारी शुरू कर दी, जिसका मसविदा सुबह चार बजे ही तैयार हो गया था। कुछ अंग्रेज़ी शब्दों के हिन्दी शब्द न मिलने की वजह से उसे अन्तिम रूप देने में कुछ देर हुई थी।

हिन्दुस्तान टाइम्स और स्टेट्समैन ने अगले दिन सुबह भी अख़बार छापने की योजना बनायी थी। 11 बजे सुबह हिन्दुस्तान टाइम्स तो निकलकर सड़कों पर बिकने लगा लेकिन स्टेट्समैन में रोटरी मशीन चलने ही वाली थी कि टेलिप्रिंटर पर एक ज़रूरी ख़बर आयी जिसमें गिरफ़्तारियों और देश के अन्दर की हालत के बारे में सारी ख़बरों और टीका-टिप्पणियों को पहले सेंसर से मंज़ूर करा लेने का ऐलान किया गया था। सारी ख़बरें जाँच-पड़ताल के लिए सरकार के पास भेजना ज़रूरी था। जल्दी-जल्दी रोटरी रुकवायी गयी। स्टेट्समन ने अपने अख़बार के पेज-प्रूफ़ मंज़ूरी के लिए शास्त्री भवन में प्रेस इनफ़ार्मेशन ब्यूरो (पी० आई० बी०) के दफ़्तर भिजवा दिये। लेकिन जब तक गिरफ़्तार किये गये नेताओं के नाम काटकर और उनकी तस्वीरों पर काटने का निशान लगाकर ये प्रूफ़ वापस आये तब तक दफ़्तर की बिजली कट चुकी थी। सप्लीमेंट नहीं छप सका; बस पेज-प्रूफ़ ऐतिहासिक दस्तावेज़ बनकर रह गये।

और जब यह ख़बर फैली कि हिन्दुस्तान टाइम्स तो बिक रहा है, तो हाकरों से जल्दी-जल्दी सारी बची हुई कापियाँ वापस करने को कहा गया ताकि उनके ख़िलाफ़ कोई क़ानूनी कार्रवाई न हो।

जनसंघ का अख़बार मदरलैंड अकेला अख़बार था जिसने सप्लीमेंट निकाला बाद में उसके प्रेस पर ताला डाल दिया गया।

उस दिन सुबह रेडियो पर राष्ट्र के नाम अपने संदेश में श्रीमती गांधी ने कहा कि सरकार को मजबूर होकर कुछ क़दम उठाने पड़े हैं, क्योंकि "जब से मैंने जनतंत्र की ख़ातिर भारत के आम नर-नारियों के हित में कुछ प्रगतिशील क़दम उठाने शुरू किये हैं तभी से एक बहुत गहरी और व्यापक साज़िश की जा रही है।" उन्होंने कहा कि इस साज़िश का मक़सद "जनतंत्र को काम ही न करने देना है। जनता की बाक़ायदा चुनी हुई सरकारों को काम नहीं करने दिया गया है, और कहीं-कहीं तो विधायकों को इस्तीफ़ा देने पर मजबूर करने के लिए ज़ोर-ज़बर्दस्ती भी की गयी है ताकि क़ानूनी तौर पर चुनी गयी विधानसभाओं को भंग किया जा सके।" उन्होंने ललितनारायण मिश्र की हत्या का भी हवाला दिया, और यह इशारा किया कि उसमें विपक्ष का हाथ है।

इतनी बहादुरी की बातें करने के बाद भी उनका डर दूर नहीं हुआ। जैसा कि बाद में उन्होंने किसी से कहा, "मुझे मालूम नहीं था कि जनता पर इसका क्या असर हुआ होगा।"

लोग हक्का-बक्का रह गये; उन्हें कुछ भी पता नहीं था कि इमजसी का—श्रीमती गांधी के नादिरशाही फ़रमान का—मतलब क्या है। धीरे-धीरे उनकी समझ में आने लगा कि जो जनतांत्रिक व्यवस्था पच्चीस साल से काम कर रही थी उसको ग्रहण लग गया है। वे सोचते थे कि क्या अब हमेशा ऐसा ही रहेगा ?

आकाशवाणी और टेलीविज़न पर श्रीमती गांधी के ये शब्द बार-बार दोहराये जाते थे, "अब हमें साधारण काम-काज में बाधा डालने के लिए सारे देश में क़ानून और व्यवस्था को चुनौती देने वाले नये कार्यक्रमों का पता चला है। कोई भी सरकार, जो सरकार कहे जाने का दावा करती है, इस बात को चुपचाप बर्दाश्त करके देश के स्थायित्व को ख़तरे में कैसे पड़ने दे सकती है ?"

इमर्जेंसी का एक फ़ायदा ज़रूर था कि ज़रूरी चीज़ों की कीमतों में ठहराव आ गया था। स्कूलों में, दूकानों पर, ट्रेनों और बसों में अनुशासन का असर दिखायी देने लगा था; नई दिल्ली की सड़कों पर तो गायें और भिखारी भी अब नहीं दिखायी देते थे।

लेकिन श्रीमती गांधी ने यह नहीं बताया कि यह सारी कार्रवाई इलाहाबाद हाईकोर्ट के फ़ैसले के बाद ही क्यों की जा रही थी; कारख़ानों में और स्कूल-कॉलेजों में आम क़ानूनों की मदद से अनुशासन क्यों नहीं लागू किया जा सकता था; और राष्ट्र में जो और भी बहुत-सी बुराइयाँ थीं उन्हें भी इन क़ानूनों की मदद से क्यों नहीं दूर किया जा सकता था।

इसकी वजह बता पाना मुश्किल भी था। शायद श्रीमती गांधी ने सोचा कि इसकी कोशिश करना भी बेकार है। वह जानती थीं कि उनकी साख बहुत गिर चुकी है। ललितनारायण मिश्र की एक शोक-सभा में उन्होंने कहा, "अगर कोई मेरी भी हत्या कर दे तब भी यही कहा जायेगा कि यह काम मैंने खुद करवाया है।"

कारण कुछ भी रहे हों, लेकिन जो कुछ उन्होंने किया वैसा पहले कभी नहीं हुआ था। लगभग मार्शल-लॉ लगा देने जैसा सख्त क़दम था—'पुलिस का राज' तो था ही। सारे देश को अचानक एक धक्का-सा लगा, ऐसा लगा मानो सबकी चेतना अचानक सुन्न हो गयी हो। किसी ने सोचा भी नहीं था कि इतना सख़्त क़दम उठाया जायेगा; किसी की समझ में यह भी नहीं आया कि इसके नतीजे क्या-क्या होंगे। बिलकुल 'जुमेराती क़त्लेआम' था। लोगों में पहली प्रतिक्रिया यह हुई कि श्रीमती गांधी को इसका नतीजा भुगतना पड़ेगा, वह बचकर निकलने नहीं पायेंगी।

खुद उनकी अपनी पार्टी के ज़्यादातर लोग उतने ही हक्का-बक्का थे जितने कि दूसरे लोग। और सबसे पहले वही दुम दबाकर भाग खड़े हुए। 1966 में गद्दी सँभालने के बाद से श्रीमती गांधी ने सत्ता का जो मीनार खड़ा किया था उसे देखकर सब लोग थर-थर काँपने लगे थे। अब तो जो वह कह दें वही क़ानून था, और कोई चूँ भी नहीं कर सकता था। कैबिनेट के मंत्रियों और मुख्यमंत्रियों से लेकर छोटे-से-छोटे एक्ज़ीक्यूटिव कॉंसिलर तक सभी अपने पद पर तभी तक रह सकते थे जब तक वह चाहें। जिस किसी ने भी सर उठाने की कोशिश की उसे उन्होंने हटा दिया। जो बच गये थे उनमें से ज़्यादातर की राजनीतिक ज़िन्दगी उन्हीं के दम से थी। किसी बात के खिलाफ़ आवाज़ उठाना इनके बस का नहीं था।

श्रीमती गांधी को चुनौती दो ही आदमी दे सकते थे—चह्वाण और जगजीवन-

राम। लेकिन दोनों मिलकर कोई काम नहीं कर सकते थे क्योंकि दोनों ही प्रधानमंत्री बनना चाहते थे। और जब तक जान बच जाने की उम्मीद न होती तब तक वे उनसे टक्कर लेकर अपनी मौजूदा स्थिति को भी ख़तरे में डालने के लिए तैयार नहीं थे। और उस वक़्त उन्हें इसकी रत्ती-भर भी उम्मीद नहीं दिखायी दे रही थी।

श्रीमती गांधी जानती थीं कि उन्हें किन-किन लोगों पर नज़र रखनी है। और उन्होंने नज़र रखी भी पूरी तरह।

जब मैं 26 जून को चह्वाण और जगजीवनराम से मिलने उनके घर गया तो मैंने देखा कि खुफ़िया पुलिसवाले उनसे मिलने आनेवालों की मोटरों के नम्बर और उनके नाम लिख रहे हैं। चह्वाण तो डर के मारे मुझसे मिले भी नहीं और जगजीवन-राम मिले भी तो एक मिनट के लिए और वह घबराये हुए दिखायी दे रहे थे। जगजीवनराम ने मुझसे बस इतना कहा कि उन्हें गिरफ़्तार कर लिये जाने का अंदेशा है। यह बात उन्होंने बड़ी सावधानी से टेलीफोन का रिसीवर नीचे उतारकर कही। वह जानते थे कि उनके टेलीफोन पर जो भी बात की जाती है वह बीच में सुनी जाती है और वह समझते थे कि अब उसमें यह बारीकी और पैदा कर दी गयी थी कि जब रिसीवर टेलीफोन पर रखा रहता था तब कमरे में होनेवाली सारी बातचीत दूसरी तरफ़ सुनायी देती थी।

प्रधानमंत्री की कोठी पर 26 जून की रात को विजय का जो वातावरण था उसके बारे में शक की कोई गुंजाइश नहीं थी। सभी को इस बात पर संतोष था कि सारी कार्रवाई बिना किसी तकलीफ़ के पूरी हो गयी। किसी ने कहीं विरोध करने की कोशिश भी नहीं की। अगर छुटपुट कुछ घटनाएँ हुई भी तो उन पर जल्दी ही काबू पा लिया गया। मज़दूर नेता जार्ज फ़र्नांडीज़, जनसंघ के नानाजी देशमुख और सुब्रह्मण्यम स्वामी और इक्का-दुक्का और लोगों को छोड़कर, जो 'अंडरग्राउंड' चले गये थे, सभी ख़ास-ख़ास लोग गिरफ़्तार कर लिये गये थे। (नानाजी को तो किसी ने टेलीफोन कर दिया था कि पुलिस उन्हें गिरफ़्तार करने आ रही है और वह बच निकले थे)।

संजय ने अपनी माँ से कहा, "मैं आपसे कहता था कि कुछ भी नहीं होगा।" बंसीलाल ने कहा कि जैसा कि वह पहले से ही जानते थे, कहीं कुत्ता तक नहीं भौंका। इलाहाबाद में जस्टिस सिनहा को 'ठीक कर देने' के लिए कहला दिया गया था। अब पुलिस उनके पीछे परछाई की तरह लगी रहती थी। उनकी सारी पिछली करतूतों की छानबीन की जा रही थी और उनके रिश्तेदारों को सताया जा रहा था।

गुजराल को 28 जून को योजना मंत्रालय में भेज दिया गया और उनकी जगह विद्याचरण शुक्ला ने सँभाली। उन्होंने ख़बर दी कि सेंसरशिप का बंदोबस्त बड़ी तेज़ी से ठीक होता जा रहा है। धवन को यह खुशी थी कि दिल्ली में सेंसरशिप का कोई मतलब ही नहीं है। एक बार उन्होंने दिल्ली के अख़बारों के दफ़्तरों की बिजली कटवा दी थी तो उनका सारा काम-काज तब तक ठप रहा था जब तक कि उन्होंने दुबारा बिजली चालू कर देने का हुक्म नहीं दिया था।

श्रीमती गांधी घबरायी हुई थीं। वह सोचती थीं कि अभी इतनी जल्दी यह नहीं कहा जा सकता कि सब ठीक-ठाक है, लेकिन हर मुख्यमंत्री ने यही रिपोर्ट भेजी थी कि 'स्थिति पूरी तरह क़ाबू में है।'

दिल्ली की सड़कों पर डर छाया हुआ था। जनसंघ के स्वयंसेवक छोटी-छोटी टोलियों में गिरफ़्तार हो रहे थे, और कुछ दूसरी छोटी-मोटी घटनाएँ भी हुई। लेकिन बाहर से देखने में ज़िन्दगी पहले की तरह ही चल रही थी। स्टेट्समैन ने कमाल के

फोटोग्राफर रघुराय की खींची हुई एक फोटो छापी थी, जिसमें सब-कुछ कह दिया गया था। उसमें दिखाया गया था कि एक आदमी दो बच्चों को साइकिल पर बिठाये ले जा रहा है, पीछे-पीछे एक औरत पैदल चल रही है और चारों ओर बीसियों पुलिस-वाले हैं। तस्वीर के नीचे लिखा था : चाँदनी चौक में ज़िन्दगी पहले की तरह ठीक से चल रही है ! (सेंसर के दफ़्तर में जो आदमी था उसने तस्वीर को 'पास' कर दिया—अगले दिन उसे बदलकर किसी दूसरी जगह भेज दिया गया।)

मीसा के आॅर्डर के साइक्लोस्टाइल किये हुए फ़ार्मों से उत्तर प्रदेश में कई मजिस्ट्रेटों को बड़ी आसानी हो गयी। उन्होंने ख़ाली फ़ार्मों पर दस्तख़त कर दिये और बाक़ी कार्रवाई पुलिस पर छोड़ दी। ख़ुफ़िया पुलिस की पुरानी रिपोर्टों की मदद से तैयार की गयी फ़ेहरिस्तों के हिसाब से गिरफ़्तारियाँ होती रहीं। फिर इसमें ताज्जुब ही क्या है कि आगरा में पुलिस ने एक घर पर ऐसे आदमी को गिरफ़्तार करने के लिए छापा मारा जो 1968 में मर चुका था।

अख़बारों का गला घोंटा जा रहा था। जनसंघ के हिन्दी के अख़बार साप्ताहिक पाञ्चजन्य दैनिक तरुण भारत और मासिक राष्ट्रधर्म बन्द करवा दिये गये। पुलिस की एक टुकड़ी तलाशी के वारंट या उचित अधिकारी की आज्ञा के बिना ही इन अख़बारों के दफ़्तर में घुस आयी, उसने ज़बर्दस्ती प्रेस में काम करनेवालों को धक्का देकर बाहर निकाल दिया और प्रेस पर ताला डाल दिया ताकि इनमें से कोई अख़बार छप न सके। इन अख़बारों के प्रकाशक राष्ट्रधर्म प्रकाशन को लखनऊ में कोई वकील तक नहीं मिल सका। वकील डरते थे; जो भी उनकी पैरवी के लिए तैयार होता उसे भारत सुरक्षा क़ानून में पकड़कर बन्द कर दिया जाता।

शुरू में पंजाब में अकालियों के खिलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की गयी। उम्मीद थी कि वे जनसंघ के खिलाफ़ सरकार का 'साथ देंगे,' क्योंकि सिक्ख-हिन्दू सवाल पर दोनों में अनबन हो गयी थी। लेकिन सरकार यह भूल गयी थी कि दोनों में जो भी मतभेद रहे हों, वे पिछले कुछ वर्षों के दौरान दूर हो गये थे। जयप्रकाश के लुधियाना जाने पर, जहाँ अकालियों ने उनके लिए पाँच लाख आदमियों की मीटिंग जुटायी थी, ये लोग विपक्ष के ज़्यादा क़रीब आ गये थे। बहरहाल, सरकार की नादिरशाही का खतरा जनसंघ की छेड़छाड़ से ज़्यादा संगीन था।

पंजाब के अख़बारों पर, जो सारे-के-सारे जालंधर से निकलते थे, पुलिस का हमला बहुत बेरहम था। ट्रेनों के वक़्त के हिसाब से उर्दू और पंजाबी के ज़्यादातर अख़बार आधी रात तक छप जाते थे। पुलिस ने रात को देर से निकलनेवाले एडीशन समेत सभी एडीशनों की सारी कापियाँ नष्ट करवा दीं। पंजाब की पुलिस चंडीगढ़ में ट्रिब्यून के दफ़्तर भेजी गयी। ज़ाहिर है इसके लिए नई दिल्ली से हुक्म आया होगा क्योंकि संघ क्षेत्र होने के कारण चंडीगढ़ में घुसने के लिए पुलिस को केन्द्रीय सरकार से इजाज़त लेनी पड़ती है। चीफ़ कमिश्नर ने इस पर एतराज़ किया। बाद में धवन ने इस मामले को अपने ढंग से निबटा दिया।

हरियाणा में तो किसी को भी मीसा या डी० आई० आर० में गिरफ़्तार कर लेना वहाँ के शासकों के लिए मन बहलाने का आम तरीक़ा था। किसी को भी पकड़ लेने के लिए, वह बड़ा हो या छोटा, दोस्त हो या दुश्मन, किसी बहाने की ज़रूरत नहीं होती थी। इमर्जेंसी लागू होते ही विपक्ष के नेताओं और कार्यकर्त्ताओं की आम धर-पकड़ के अलावा एक हज़ार से ज़्यादा आदमी किसी-न-किसी बहाने पकड़ लिए गये थे। जेल में राजनीतिक क़ैदियों के साथ चोर-डाकुओं जैसा बरताव किया जाता था।

देश-भर में सबसे पहले महाराष्ट्र हाईकोर्ट के बार एसोसिएशन ने श्रीमती

गांधी के नादिरशाही शासन की निन्दा की। ऑल इंडिया बार एसोसिएशन के प्रेसीडेंट राम जेठमलानी ने उनकी तुलना मुसोलिनी और हिटलर से की; हालांकि वह यह भी दलील देते रहे थे कि चूंकि सुप्रीम कोर्ट ने उनके पक्ष में स्टे-ऑर्डर दे दिया है इसलिए उसका सम्मान किया जाना चाहिए।

कई दूसरे राज्यों के बार एसोसिएशनों ने भी ऐसा ही किया लेकिन न जाने क्यों पश्चिम बंगाल बार एसोसिएशन ने चुप्पी साध रखी थी।

गुजरात में संयुक्त मोर्चे की सरकार होने की वजह से वह राज्य इमर्जेंसी के प्रकोप से बच गया। मुख्यमंत्री बाबूभाई पटेल रेडियो पर बोलना चाहते थे। केन्द्रीय सरकार ने उनको इसका मौक़ा देने से इंकार कर दिया। यह इमर्जेंसी के साथ उनकी पहली झड़प थी। केन्द्रीय सरकार ने राज्यों को आदेश भेजा था कि जनसंघ के और दूसरे राजनीतिक नेताओं को गिरफ़्तार कर लिया जाये। बाबूभाई ने पहले तो इस आदेश को मानने से इंकार कर दिया और बाद में जब उन्होंने उनको गिरफ़्तार किया भी तो डी० आई० आर० का सहारा लेकर, जिसमें गिरफ़्तार किया गया आदमी ज़मानत पर छूट सकता है, जबकि मीसा में गिरफ़्तार किये जानेवालों को क़ानून इस बात की इजाज़त नहीं देता।

बाबूभाई ने एक इंटरव्यू में कहा कि वह इस बात का पक्का बन्दोबस्त रखेंगे कि नागरिक स्वतन्त्रताओं में किसी तरह की बाधा न पड़ने पाये और यह भी कि वह मीटिंगों और जुलूसों पर पाबन्दी नहीं लगायेंगे।

सारे राज्य में विरोध-प्रदर्शन हो रहे थे, बड़े शहरों में ज़्यादा हो रहे थे। नागरिकों को काले बिल्ले लगाने, अपने घरों पर काले झण्डे फहराने और अपने दरवाजों पर भारतीय संविधान की प्रस्तावना चिपकाने के लिए बढ़ावा दिया गया, जिसमें मानव-अधिकारों पर जोर दिया गया है।

जन-प्रदर्शनों में चुप जुलूस, छात्रों के जुलूस, भूख हड़तालें और सार्वजनिक स्थानों में धरने शामिल थे। धीरे-धीरे सारे देश से श्रीमती गांधी के सैंकड़ों आलोचकों ने इस राज्य में आकर शरण ली।

अगर विपक्ष की सरकार उनकी रक्षा करने के लिए न होती तो नवनिर्माण समिति के छात्र-नेताओं को शायद बड़ी मुसीबतों का सामना करना पड़ता। 1974 में जब उस समय के मुख्यमंत्री चिमनभाई पटेल ने अध्यापकों के उम्मीदवारों को, जो उस समय गुजरात में नवनिर्माण आन्दोलनों की जान थे, हरवाकर अपने उम्मीदवार ईश्वरभाई पटेल को गुजरात यूनिवर्सिटी का वाइस-चांसलर बनवा दिया था तो इन्हीं छात्र-नेताओं ने उनके मंत्रिमण्डल का तख्ता उलट दिया था।

गुजरात सरकार सेंसरशिप के पक्ष में नहीं थी और उसने राज्य के सूचना विभाग के डायरेक्टर को चीफ़ सेंसर नियुक्त नहीं होने दिया, जैसा कि दूसरे राज्यों में हुआ था। अहमदाबाद के कॉलेज अध्यापकों ने आन्दोलन छेड़ दिया और विधानसभा में पूरे दिन इस सवाल पर बहस हुई। यह बात ठीक-ठीक मालूम नहीं हो सकी है कि क्या सूचना विभाग के डायरेक्टर ने सरकार की सलाह से ऐसा किया, लेकिन उन्होंने अख़बारवालों से कहा कि उस दिन की विधानसभा की कार्रवाई न छापें।

कुछ दिन बाद केन्द्रीय सरकार ने स्थानीय प्रेस इनफ़ार्मेशन ब्यूरो (पी० आई० बी०) के प्रधान अधिकारी को चीफ़ सेंसर बना दिया। वह अख़बारों को वे ख़बरें छापने से तो नहीं रोकते थे जिनसे राज्य-सरकार को परेशानी होती लेकिन इमर्जेंसी या केन्द्रीय सरकार के बारे में सारी ख़बरों को बड़ी मुस्तैदी से दबा देते थे।

तमिलनाडु ने भी अख़बारों पर सेंसरशिप लागू करने का विरोध किया।

द्रविड़ मुन्नेत्र कज़गम (डी० एम० के०) की सरकार ने, जिसके मुख्यमंत्री करुणानिधि थे, खुली बग़ावत की नीति नहीं अपनायी और यह ऐलान किया कि वह केन्द्रीय सरकार के उन्हीं आदेशों को पूरा करेगी जो 'हमें मंजूर हों'। ग़ैर-सरकारी तौर पर, डी० एम० के० इमर्जेंसी के बिलकुल ख़िलाफ़ थी।

पश्चिम बंगाल में, मंत्रियों से लेकर मामूली कांस्टेबिल तक सभी ने इमर्जेंसी में मिले हुए अधिकारों की आड़ लेकर अपने सारे, निजी और राजनीतिक, पुराने हिसाब निकाल लिये। अमृत बाज़ार पत्रिका के दो पत्रकार गौरकिशोर घोष और बरुन सेनगुप्ता, जिन्होंने मुख्यमंत्री की आलोचना की थी, गिरफ़्तार कर लिए गये। घोष ने बंगला की एक छोटी-सी किताब कालिकत्ता में राजनीतिक आधार पर मुख्यमंत्री की आलोचना की थी लेकिन सेनगुप्ता का हमला निजी बातों के बारे में था। उन दोनों को मीसा में गिरफ़्तार कर लेने का हुक्म दिया गया था। घोष को तो आसानी से गिरफ़्तार कर लिया गया लेकिन सेनगुप्ता कलकत्ता छोड़कर भाग गया और दिल्ली में काफ़ी अरसे तक संजय के संरक्षण में रहा, जिससे पता चलता है कि श्रीमती गांधी के बेटे और मुख्यमंत्री के सम्बन्ध कितने ख़राब थे। लेकिन आख़िरकार पुलिस ने सेनगुप्ता को भी गिरफ़्तार कर लिया और जेल में उनके साथ बहुत बुरा बरताव किया गया, ख़ासतौर पर इसलिए कि मुख्यमंत्री इस बात पर बहुत नाराज़ थे कि उसने उन पर कुछ निजी बातों को लेकर हमला किया था।

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के नेता अशोक दासगुप्ता को अपनी बीमार माँ को देखने के लिए हथकड़ी पहनाकर चार घंटे की पैरोल पर ले जाया गया। उन्होंने बहुत कहा कि मैं राजनीतिक क़ैदी हूँ और मेरी माँ को मुझे हथकड़ी पहने देखकर बड़ी तकलीफ़ होगी, लेकिन पुलिस ने उनकी एक न सुनी। ऐसा लगता है ऊपर से यह सख्त हिदायत दे दी गयी थी कि इमर्जेंसी में पकड़े गये क़ैदियों को जब भी बाहर ले जाया जाये तो उनके हथकड़ी ज़रूर डाली जाये। काफ़ी आन्दोलन के बाद राजनीतिक क़ैदियों को जो रिआयतें मिली थीं, वे इमर्जेंसी के दौरान वापस ले ली गयी थीं।

ज़िला अधिकारियों की ओर से प्राइवेट बसों के मालिकों को भाड़ा बढ़ा देने की जो इजाज़त दी गयी थी उसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने के अपराध में संगठन कांग्रेस के नेता राजकृष्ण को गिरफ़्तार कर लिया गया था। बिजली तथा सिंचाई मंत्री ए० बी० ए० ग़नी ख़ान चौधरी ख़ुद अपने मालदा ज़िले में मीसा मंत्री के नाम से मशहूर थे। जिस किसी से भी वह नाराज़ हो जाते थे उसे मीसा में पकड़वा देने की धमकी देते थे।

अख़बारों पर सेंसरशिप को पार्टी के और निजी कामों के लिए भी इस्तेमाल किया गया। ऐसी कितनी ही मिसालें हैं जब कांग्रेस के नेताओं के बयान भी सिर्फ़ इसलिए नहीं छपने दिये गये कि सूचना मंत्री सुब्रत मुखर्जी उन्हें नहीं छपने देना चाहते थे। सेंसर करनेवालों को साफ़-साफ़ बता दिया गया था कि मंत्री के ग्रुप के ख़िलाफ़ कोई ख़बर न छपने दी जाये।

बिहार में, इमर्जेंसी के दौर में कितने ही तानाशाह उभर आये। वह जो कह देते थे वही क़ानून हो जाता था। कुछ तानाशाह बिलकुल ठगों की तरह रहते थे, उनमें से कुछ ने अपनी रंगरेलियों के लिए सर्किट हाउसों और डाक बंगलों में कमरे रिज़र्व करा रखे थे। ज़िलों में ज़िला-मजिस्ट्रेटों से भी ज़्यादा उनका सिक्का चलता था। उनका हुक्म बिलकुल मुख्यमंत्री के हुक्म जैसा समझा जाता था और सरकारी अफ़सरों के लिए क़ायदे-क़ानून के हिसाब से काम करने की कोई गुंजाइश ही नहीं रह गयी थी।

हर क़ायदे-क़ानून को शासक-गुट का काम बनाने के लिए या तानाशाहों के निजी हितों को पूरा करने के लिए मनचाहे ढंग से तोड़-मरोड़ लिया जाता था। भूमि-सुधारों का गहरा असर उन्हीं ज़मींदारों पर पड़ता था जिनके बारे में यह शक होता था कि उनका झुकाव विपक्ष की ओर या कांग्रेस के दूसरे गुट की ओर है।

सरकार का प्रचारतन्त्र मुख्यमंत्री की हवा बाँधने के लिए पूरा ज़ोर लगाकर काम कर रहा था। सेंसरवाले ऐसी कोई बात छपने ही नहीं देते थे जिसमें उनकी आलोचना की गयी हो। सेंसरशिप का मतलब था कि ऐसी कोई ख़बर न छपने दी जाये जिससे सरकार को या कांग्रेस के शासक-गुट को किसी परेशानी का सामना करना पड़े। पूर्णिया और मुंगेर ज़िलों के दंगों की ख़बर न बिहार में छपी और न कहीं और ही। भागलपुर जेल में नज़रबन्द क़ैदियों पर गोली चलाये जाने की ख़बर भी नहीं छपी; ये लोग उन बुनियादी सुविधाओं की माँग कर रहे थे जो जेल के क़ायदों की किताब में दर्ज हैं। बन्दूक के धनी पुलिसवालों और वॉर्डरों ने एक दर्जन से ज़्यादा लोगों को मौत के घाट उतार दिया।

सारे देश के भ्रष्ट और ग़ैर-जनतान्त्रिक शासन के ख़िलाफ़ जड़ से एक आन्दोलन खड़ा करने के लिए जयप्रकाश ने इस राज्य को चुना था। जिस 'सम्पूर्ण क्रान्ति' को फैलाने का जयप्रकाश ने बीड़ा उठाया था उसकी बुनियाद छात्र संघर्ष समितियों और जन-संघर्ष समितियों के माध्यम से काम करने वाली युवा-शक्ति और जन-शक्ति पर, और गाँवों से शुरू करके प्रशासन के हर स्तर पर क़ायम की गयी जनता सरकारों पर थी। इन इकाइयों के पीछे राष्ट्रीय प्रशासन की कोई समानान्तर व्यवस्था क़ायम करने का कोई इरादा नहीं था बल्कि उनका काम सिर्फ़ सरकार की व्यवस्था पर निगरानी रखना था।

बिहार हो या गुजरात या दिल्ली, सारे भारत में एक ही जैसा नक़्शा था; बर्बर शक्ति का प्रदर्शन और जहाँ कोई रत्ती-भर भी सर उठाने की कोशिश करे उसे बेरहमी से कुचल देना। हर जगह पुलिस ने विरोधियों को मीसा या डी० आई० आर० में वारंट जारी करके या वारंट के बिना ही पकड़ा। (अडवाणी को गिरफ़्तारी के नौ घंटे बाद गिरफ़्तारी का आदेश दिखाया गया था।)

विरोधियों की बड़े पैमाने पर गिरफ़्तारी और अख़बारों का गला घोट देने की जो योजना बनायी गयी थी, उसे बड़ी मुस्तैदी से और बड़ी तेज़ी के साथ पूरा कर लिया गया। एक बूँद भी ख़ून बहाये बिना सत्ता पर कब्ज़ा कर लिया गया था।

सारे देश में लोग अन्धाधुंध पकड़े जा रहे थे। गिरफ़्तारी के वारंट पर इसके अलावा और कुछ नहीं लिखा होता था कि अमुक आदमी को 'जनहित में' गिरफ़्तार किया जा रहा है। उन पर न तो क़ानूनी कोई अपराध करने का आरोप लगाया जाता था और न ही उन पर कोई मुक़दमा चलाया जाता था। ज़्यादातर राज्यों में एफ़० आई० आर० (प्रथम सूचना रिपोर्ट) का, जिसकी बुनियाद पर गिरफ़्तारी की कार्रवाई शुरू की जाती है, एक बँधा-टँका नमूना तैयार करके साइक्लोस्टाइल करा लिया गया था और उसकी कापियाँ हर ज़िले के थानों को भिजवा दी गयी थीं कि जहाँ ज़रूरत पड़े उन्हें भर लिया जाये।

इसी तरह विदेशी पत्रकारों के देश से बाहर निकालने के आदेश भी सब पहले से टाइप करके तैयार रखे गये थे। लन्दन टाइम्स के पीटर हेज़ेलहर्स्ट, जिन्होंने बंगला-देश के संकट के दिनों में पाकिस्तानी सरकार के अत्याचारों के बारे में सारी दुनिया को बताने के सिलसिले में बहुत काम किया था, न्यूज़वीक के लोरेन जेंकिंस और लन्दन के अख़बार डेली टेलीग्राफ़ के पीटर गिल उन पत्रकारों में से थे जिन्हें विदेश मंत्रालय

के ज्वाइंट सेक्रेटरी एस० एस० सिधू के दस्तख़त से यह आदेश मिला, जिसमें 'राष्ट्रपति के नाम में' यह लिखा गया था कि वे अब भारत में नहीं रह सकते, उन्हें चौबीस घंटे के अन्दर देश के बाहर निकाल दिया जायेगा और उसके बाद वे भारत में क़दम न रखें। जेंकिस ने लिखा था, "फ्रैंको के स्पेन से लेकर माओ के चीन तक सारी दुनिया में दस साल तक ख़बरें जमा करने के दौरान मैंने कभी इतनी कड़ी और इतनी दूर-दूर तक फैली हुई सेंसरशिप नहीं देखी।"

इन सभी लोगों को देश से बाहर निकालने के लिए एक ही ढंग अपनाया गया—पुलिस दरवाजे पर खटखटाती थी, आदेश उन्हें देती थी, उनके कागज़ों की तलाशी लेती थी और घंटे-भर में वे बाहर निकाल दिये जाते थे।

विदेशों में लोग पत्रकारों के इस तरह निकाले जाने पर दंग रह गये, हालाँकि उनमें से बहुतों ने यह कहकर अपने को समझा लिया कि भारत में जनतन्त्र तो कभी रहा नहीं और ब्रिटिश संसदीय प्रणाली भारतीय स्वभाव से मेल नहीं खाती। उनका रवैया बहुत ऊँचाई से बात करने का था, लेकिन बिना मुक़दमा चलाये इतने बड़े पैमाने पर लोगों की गिरफ़्तारियों और अख़बारों का इस तरह गला घोंट दिये जाने पर उन्हें सचमुच चिन्ता थी।

अगर देश के अन्दर सब-कुछ उसी ढंग से हुआ था जैसा सोचा गया था, तो विदेशों की प्रतिक्रिया का भी पहले से अन्दाज़ा था। जैसा कि पहले ही सोचा गया था, श्रीमती गांधी ने जो कुछ किया था उस पर पश्चिमी देश हक्का-बक्का रह गये। बाप ने जो कुछ बनाया था उसे बेटी ने मिटा दिया था।

लेकिन बाहर के किसी देश की सरकार ने सरकारी तौर पर कुछ भी नहीं कहा। उनका कहना था कि यह 'एक घरेलू मामला' था। भारत सरकार ने उनके इस रवैये को बहुत पसन्द किया, हालाँकि पश्चिमी देशों के अख़बार, कुछ लोग और संस्थाएँ, जो कड़ी आलोचना कर रही थीं, उस पर उसे काफ़ी गुस्सा था।

ज़ाहिर है कि उनके अपने देश के अन्दर जो दबाव डाला गया उसी की वजह से अमरीका के प्रेसीडेंट फ़ोर्ड ने भारत जाने का विचार अनिश्चित काल के लिए छोड़ दिया। अमरीका में भारत के राजदूत त्रिलोकीनाथ कौल ने इसकी वजह यह बतायी कि फ़ोर्ड पर काम का इतना बोझ है कि वह समय नहीं निकाल पा रहे हैं। लेकिन अमरीकी अधिकारियों ने यह मानते हुए कि वह बहुत काम में फँसे हुए हैं, साथ ही यह भी कहा कि भारत की डाँवाँडोल राजनीतिक स्थिति को देखते हुए इस यात्रा का विचार छोड़ देने का फ़ैसला किया गया था।

बाद में फ़ोर्ड ने खुद कहा, "मैं समझता हूँ कि यह सचमुच बड़े दुःख की बात है कि 60 करोड़ लोगों से वह चीज़ छिन गयी है जो लगभग पिछले तीस साल से उनके पास थी। मैं समझता हूँ कि कुछ समय बाद वे जनतान्त्रिक तरीक़े फिर लौट आयेंगे, जिस रूप में कि हम उन्हें अमरीका में जानते हैं।" इस बात से कि उन्होंने यह बात चीन जाने से फ़ौरन पहले कही थी, सरकार को एक मौक़ा हाथ लग गया। अक्खड़ और नादिरशाही मिज़ाज के मुहम्मद यूनुस ने, जिन्हें प्रधानमंत्री का विशेष दूत बना दिया गया था, विदेशी पत्रकारों से कहा कि इस बात पर बड़ी हँसी आती है कि फ़ोर्ड ने यह राय एक कम्युनिस्ट देश की यात्रा पर जाने से पहले ज़ाहिर की।

वाशिंगटन में इंडियंस फ़ार डेमोक्रेसी के नाम से एक संगठन बनाया गया और 30 जून को भारतीय दूतावास के सामने एक प्रदर्शन किया गया। कार्यकारी राजदूत गोनसाल्वेज़ ने 1,200 हिन्दुस्तानियों के दस्तख़त के साथ दी गयी एक अर्ज़ी लेने से इंकार कर दिया, और उल्टे इन लोगों को पाकिस्तानी और चीनी एजेन्ट कहा।

अमरीकी ट्रेड यूनियन ए० एफ० एल०-सी० आई० ओ० ने कहा, "भारत एक पुलिस राज्य बन गया है जिसमें जनतन्त्र को कुचल दिया गया है।" उसने अमरीका की सरकार से अनुरोध किया कि जब तक वहाँ की जनता के लिए फिर से जनतन्त्र की स्थापना न हो जाये तब तक के लिए वह भारत सरकार को कोई भी मदद न दे।

इंग्लैंड को, जिसके भारत के साथ भावुकता के सम्बन्ध बने हुए हैं, बहुत धक्का लगा। आखिरकार भारत ने जो रास्ता अपनाया था वह ब्रिटिश संसदीय प्रणाली का रास्ता था। अखबारों की स्वतन्त्रता की हत्या को वहाँ और भी गहराई से महसूस किया गया। ब्रिटिश सरकार का विरोध प्रकट करने के लिए प्रिंस चार्ल्स की भारत की यात्रा रद्द कर दी गयी। बी० बी० सी०, जिसका नई दिल्ली का दफ़्तर पहले भी एक बार बन्द करवा दिया गया था, अब पहले से ज़्यादा ख़बरें देने लगा और भारत में ज़्यादातर लोगों को, जेलों के अन्दर भी, इमर्जेंसी के पूरे दौर में अपने देश की ख़बरें बी० बी० सी० के ज़रिये ही मिलती थीं। बाद में उसके मिलनसार सम्वाददाता मार्क टल्ली को एक बार फिर यह देश छोड़ना पड़ा, क्योंकि भारत सरकार इस पर अड़ी हुई थी कि बी० बी० सी० भारत से जो ख़बरें भेजे उन पर पहले सेंसर की मंज़ूरी ले।

लेकिन सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप के देशों में राय इन्दिरा गांधी के पक्ष में थी। प्रावदा को इमर्जेंसी के अच्छे नतीजे भी दिखायी देने लगे। इस अख़बार ने लिखा, "अधिकारियों ने दक्षिणपंथी पार्टियों के नेताओं की जो गिरफ़्तारियाँ की हैं उनको जनतान्त्रिक शक्तियाँ सही समझती हैं, और सेंसरशिप लागू हो जाने से अब इजारेदारों के अख़बारों को सरकार के ख़िलाफ़ मुहिम चलाने और लोगों को भड़काने का मौक़ा नहीं मिलेगा।"

चीन ने भी आलोचना की, जैसा कि वह हमेशा से करता आया था, लेकिन इमर्जेंसी के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने के लिए नहीं बल्कि भारत-सरकार को बदनाम करने के लिए।

चुनाव में बेजा तरीक़े अपनाने पर श्रीमती गांधी के अदालत में दोषी ठहराये जाने पर जुल्फ़िक़ार अली भुट्टो ने सन्तोष प्रकट किया। बाद में उन्होंने एक अख़बार को बताया, "उपमहाद्वीप के दूसरे हिस्सों की इधर हाल की घटनाओं ने साबित कर दिया है कि इस डाँवाँडोल इलाक़े में पाकिस्तान ही के पाँव मज़बूती से जमे हुए हैं।"

श्रीमती गांधी ने पश्चिमी देशों के ख़िलाफ़ उनका नाम लेकर तो कुछ नहीं कहा, लेकिन उनका गुस्सा साफ़ ज़ाहिर था। उन्होंने कहा कि इन देशों ने पहले ही से भारत के ख़िलाफ़ एक ख़राब राय बना रखी है। किसी देश का नाम लिये बिना उन्होंने पश्चिमी ताक़तों और पश्चिमी देशों के अख़बारों को बहुत लताड़ा कि एक तरफ़ तो वे ग़ैर-जनतान्त्रिक सरकारों को सहारा देते हैं और दूसरी तरफ़ "जनतन्त्र की शिक्षा देने की कोशिश करते हैं।" उन्होंने घुमा-फिराकर अमरीका पर मक्कारी का इल्ज़ाम लगाया कि वह बातें तो जनतन्त्र की करता है लेकिन लैटिन अमरीका में और दूसरी जगहों में वह तरह-तरह की डिक्टेटरी हुकूमतों को लगातार सहारा देता रहता है। श्रीमती गांधी ने पश्चिमी देशों की सरकारों और उनके अख़बारों की चर्चा इस तरह एक साथ की मानो वे एक ही चीज़ हों और यह आरोप लगाया कि विदेशी ताक़तें भारत के 'अंडरग्राउंड' आन्दोलनों को बढ़ावा दे रही हैं।

उन्होंने कितनी ही बार कहा कि जो देश भारत की आलोचना कर रहे थे वे वही देश थे जिन्होंने पाकिस्तान में याह्या ख़ाँ की फ़ौजी हुकूमत का और बंगला देश के दमन का समर्थन किया था। आज यही देश चीन के क़रीब आने के लिए एक-दूसरे से होड़ कर रहे थे। "इन लोगों को चाहिए कि हमें उपदेश देने के बजाय अपने गिरेबान

में मुंह डालकर देखें।"

उन विदेशी अख़बारों को, जिनमें आलोचना करनेवाली ख़बरें छपती थीं, आने ही नहीं दिया जाता था। जब से शुक्ला सूचना मंत्री बने थे तब से सेंसरशिप और कड़ी हो गयी थी।

अख़बारों के लिए हिदायतें[1] जारी कर दी गयी थीं और किसी भी भारतीय या विदेशी अख़बार में अफ़वाहें छापने, आपत्तिजनक सामग्री प्रकाशित करने और कोई भी ऐसा लेख छापने पर, जिससे सरकार के ख़िलाफ़ विरोध की भावना उभरने का ख़तरा हो, बिलकुल पाबन्दी लगा दी गयी थी। ऐसे सभी कार्टून, फोटो और विज्ञापन, जिन पर सेंसर के क़ानून लागू हो सकते हों, सेंसर के लिए भेजना ज़रूरी ठहराया गया।

समाचार एजेंसियों के दफ़्तरों में अफ़सर तैनात कर दिये गये थे ताकि वे 'आपत्तिजनक' चीज़ों को वहीं जड़ पर काट दें। विदेशी समाचार एजेंसियाँ जो भेजती थीं उनकी भी छानबीन की जाती थी और अगर उनमें सोवियत संघ जैसे 'मित्र देशों' के 'ख़िलाफ़' भी कोई बात होती थी तो उसे वहीं दबा दिया जाता था। जयप्रकाश के एवरीमैन, जार्ज फ़र्नांडीज़ के प्रतिपक्ष, और पीलू मोदी के मार्च ऑफ़ द नेशन को अपना प्रकाशन बन्द कर देना पड़ा। जनसंघ के मदरलैंड और आर्गनाइज़र पर पाबन्दी लगा दी गयी और उनके दफ़्तरों पर ताला लगा दिया गया।

शुक्ला ने संजय को पूरा यक़ीन दिलाया था कि वह पत्रकारों को ठीक कर देंगे, जबकि गुजराल यह काम नहीं कर पाये थे। उन्होंने दिल्ली के सम्पादकों की एक मीटिंग करके उनसे साफ़-साफ़ कह दिया कि सरकार 'कोई बेहूदगी' बर्दाश्त नहीं करेगी; वह जमकर शासन करेगी।

उन्होंने मुझे बताया कि किसी सम्पादकीय में, किसी लेख में या किसी भी जगह ख़ाली जगह छोड़ना भी (जो अँग्रेज़ों के ज़माने में सेंसरशिप के ख़िलाफ़ विरोध प्रकट करने का भारतीय अख़बारों का एक आम तरीक़ा था) बग़ावत समझा जायेगा; उन्होंने सम्पादकों को गिरफ़्तार करा देने की भी धमकी दी। सब लोग यह सुनकर दंग रह गये लेकिन किसी ने इसके ख़िलाफ़ कुछ कहा नहीं। इससे भी ज़्यादा भयानक बात यह थी कि उनमें से कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने सेंसरशिप को उचित बताया और सरकार की तारीफ़ के ऐसे पुल बाँधे कि अगर शुक्ला की जगह कोई दूसरा होता तो ख़ुद शरमा जाता।

अख़बारवालों के लिए सिर्फ़ डंडा था, कोई लालच भी नहीं दिया जाता था। और इस डंडे को अच्छी तरह इस्तेमाल करने का पक्का बन्दोबस्त करने के लिए शुक्ला इण्डियन पुलिस सर्विस के के० एन० प्रसाद को अपने मंत्रालय में ले आये; यही उनका दाहिना हाथ या डंडा चलानेवाला हाथ था। उन्होंने एक अनोखा तरीक़ा यह निकाला था कि वह टेलीफोन पर सेंसर को आदेश देते थे और सेंसरवाले अख़बारों को टेलीफोन कर देते थे।

लेकिन 29 जून को सेंसरशिप लागू किये जाने के ख़िलाफ़ अपनी आवाज़ उठाने के लिए प्रेस क्लब में लगभग सौ पत्रकार जमा हुए जिनमें कुछ सम्पादक भी थे और उन्होंने सरकार से अपील की कि सेंसरशिप उठा ली जाये। उन्होंने जालंधर के हिन्द समाचार के जगतनारायण और दिल्ली के मदरलैण्ड के एम० आर० मलकानी की रिहाई की माँग की। मैंने इस प्रस्ताव की नक़लें राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और सूचना

1. देखिये परिशिष्ट 2

मंत्री के पास भेज दीं।[1]

विदेशी पत्रकारों को उनकी भेजी हुई ख़बरों के लिए गिरफ़्तार नहीं किया जा सकता लेकिन उन्हें देश से निकाल बाहर किया जा सकता था। सबसे पहले जो निकाले गये वह थे **वाशिंगटन पोस्ट** के लीविस एम० साइमंस, जिन्होंने एक लेख लिखा था 'संजय गांधी और उसकी माँ'। उसमें और बातों के अलावा यह भी लिखा था, "भारत के लिए गम्भीर संकट की इस घड़ी में प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी, जिन्हें अपने मंत्रिमण्डल के निकटतम सहयोगियों पर भी भरोसा नहीं रह गया है, बड़े-बड़े राजनीतिक फ़ैसले करने के लिए अपने छोटे बेटे की मदद का सहारा लेने लगी हैं।... परिवार के एक मित्र जो कई महीने पहले संजय और श्रीमती गांधी के साथ खाने की दावत में शरीक हुए थे, उन्होंने बताया कि उन्होंने खुद देखा कि बेटे ने 'छः बार' माँ के मुँह पर तमाचे मारे। वह कुछ भी न कर सकीं। इस मित्र ने कहा, 'वह चुपचाप खड़ी तमाचे खाती रहीं। उसके डर के मारे उनका दम निकलता है।'"

संजय ही उनकी तरफ़ से हर बात का फ़ैसला करता था। पार्टी में या सरकार में उसकी कोई हैसियत नहीं थी, लेकिन दोनों जगह वही 'चौधरी' था। देश में सारा प्रशासन-तन्त्र उसके इशारे पर नाचता था। प्रधानमंत्री की कोठी से वह कैबिनेट के मंत्रियों, मुख्यमंत्रियों और ऊँचे-से-ऊंचे सरकारी अफ़सरों को हुक्म देता था और वे चुपचाप उसका हुक्म बजा लाते थे। अक्सर तो ऐसा भी होता था कि जब वे श्रीमती गांधी के पास किसी सवाल पर बात करने जाते थे तो वह खुद कह देती थीं, 'संजय से बात कर लीजिये।' और तब वह खुद अपनी तरफ़ से उन्हें आदेश देता था।

लेकिन संजय लगभग हमेशा ही उन्हें बता देता था कि वह क्या कर रहा है और उसने क्या आदेश दिये हैं। इमर्जेंसी के शुरू-शुरू के दिनों में संजय और उसके कारिन्दे—बंसीलाल, ओम मेहता, शुक्ला और धवन—प्रधानमंत्री की कोठी पर दिन-भर का लेखा-जोखा करने के लिए जमा होते थे। तब तक एक और आदमी इस टोली में शामिल हो गया था—यूनुस[2]। वह कोठी में मँडराते तो पहले ही दिन से रहे थे लेकिन कुछ अरसे तक उन्हें इस दीवाने-ख़ास में घुसने की इजाज़त नहीं थी। नेहरू परिवार के साथ उनका बहुत पुराना सम्बन्ध रहा था और नेहरू ने ही उन्हें राजदूत चुना था। उनकी राय में श्रीमती गांधी की सारी मुसीबतों की जड़ हकसर थे।

इस 'इमर्जेंसी कौंसिल' की मीटिंगों में, जिनमें श्रीमती गांधी भी हिस्सा लेती थीं, खुफ़िया विभाग की रिपोर्टों, 'रा' के अनुमानों फोन पर मुख्यमंत्रियों से धवन की जमा की हुई खबरों पर चर्चा होती थी। विदेश संचार सेवा के ज़रिये विदेशी संवाद-दाता जो खबरें भेजते थे उनकी नक़लें भी उनके सामने रहती थीं।

यहीं यह तय किया जाता था किस मंत्रालय या किस राज्य को, और किस अफ़सर के पास, क्या आदेश भेजे जायेंगे। बिलकुल वही नक़्शा होता था जैसे लड़ाई के दौरान अलग-अलग मोर्चों पर फ़ौजी कार्रवाई का फ़ैसला किया जा रहा हो और हालाँकि श्रीमती गांधी वहाँ मौजूद रहती थीं लेकिन सारी कार्रवाई की बागडोर संजय के हाथ में रहती थी।

धवन और ओम मेहता में अक्सर तनातनी रहती थी, क्योंकि प्रधानमंत्री के पर्सनल असिस्टेंट ओम मेहता की जागीर में जाकर शिकार मार लाते थे। धवन अक्सर

1. इसकी और अधिक जानकारी के लिए मेरी अगली पुस्तक 'जेल में' की प्रतीक्षा करें।
2. संजय की शादी उन्हीं के घर पर हुई थी और श्रीमती गांधी का पूरा परिवार उन्हें 'बुद्धू चाचा' कहता था।

दिल्ली के लेफ़्टिनेंट-गवर्नर किशनचन्द और दिल्ली पुलिस के डी० आई० जी० भिंडर के ज़रिये खुद अपनी मर्ज़ी से भी कई काम करवा लेते थे। भिंडर को अपनी बारी से पहले ही तरक़्क़ी देकर इस ओहदे पर पहुँचा दिया गया था, जिस पर ओम मेहता और गृह मंत्रालय के सेक्रेटरी खुराना बहुत खीझे हुए थे। दोनों गुटों में हमेशा ठनी रहती थी, ख़ासतौर पर दिल्ली में होनेवाली कार्रवाइयों के सवाल पर। उनके झगड़े भी संजय ही निबटाता था और उन्हें उनके काम सौंपता था।

श्रीमती गांधी को अपने बेटे और उसके कारिन्दों पर पूरा भरोसा था। उसे वह काम का धनी समझती थीं, जिसने उन्हें उस वक़्त बचा लिया था जब उनके पाँव लड़खड़ा गये थे। संजय का काम अपने नाना की तरह सिर्फ़ दूसरों को बचाना नहीं था। वह अच्छी तरह जानता था कि उसे क्या बनना है; वह जानता था भविष्य उसी का है। श्रीमती गांधी इस बात के लिए पूरी तरह राज़ी थीं कि वह फ़ैसले करे—और बड़े-बड़े सवालों के बारे में ही नहीं; अफ़सरों की नियुक्ति और बदली, जो लोग वफ़ादार थे उनको तरक़्क़ी और जो नहीं थे उनको सज़ा—इन सब बातों का फ़ैसला संजय के ही हाथ में था। कभी-कभी किसी बुनियादी महत्त्व की जगह पर किसी अफ़सर की नियुक्ति से पहले संजय उसकी इण्टरव्यू लेता था। ऐसा लगता है कि वह कई ऐसे लोगों को, जो बहुत लम्बे अरसे तक उसकी माँ की सेवा कर चुके थे, शुबहे की नज़र से देखता था, ख़ासतौर पर कश्मीरियों, दक्षिण भारत के लोगों और पूरब के लोगों को।

संजय उत्तर के लोगों को, ख़ासतौर पर पंजाबियों को, ज़्यादा पसन्द करता था। वह जानता था कि ये लोग उसके लिए जान तक दे देने को—या कम-से-कम दूसरों की जान ले लेने को—हमेशा तैयार रहेंगे। जैसे-जैसे दिन बीतते गये, कश्मीरी गिरोह, जो उसकी माँ के ज़माने में छाया हुआ था, धीरे-धीरे पंजाबी गिरोह में बदलता गया। लेकिन अब वह सिर्फ़ गिरोह नहीं था, ठगों का गिरोह था।

उसकी योजना उन लोगों की मदद से पूरी की गयी थी जिन पर वह इस बात के लिए पूरा भरोसा कर सकता था कि वे 'इमर्जेंसी की कार्रवाई' की मशीन के सारे कलपुर्ज़े अपनी-अपनी जगह पर ठीक से फ़िट कर देंगे; राष्ट्रपति के दस्तख़त से फ़रमान जारी कराके सारे पेंच कस दिये गये। अपने मूल अधिकारों की रक्षा कराने के भारतीय नागरिकों और विदेशियों के सारे अधिकार छीन लिये गये। एक और फ़रमान की मदद से मीसा का क़ानून और सख़्त बना दिया गया; जो लोग नज़रबन्द किये जाते थे उन्हें या अदालतों को उनकी नज़रबन्दी की वजह बताये बिना ही जेल में बन्द रखा जा सकता था। इसकी अपील भी किसी अदालत में नहीं की जा सकती थी।

श्रीमती गांधी का दावा था कि वह हर काम संविधान की सीमाओं में रहकर कर रही हैं और वह अपनी हर कार्रवाई को उचित ठहराने के लिए जनतन्त्र को बचाने की दुहाई देती थीं। शासन कितना ही नादिरशाही क्यों न हो, जनन्त्रत का दिखावा तो बाक़ी रखना ही था। जैसा कि जार्ज आर्वेल ने कहा था, "लगभग सभी लोग यह महसूस करते हैं कि जब हम किसी देश को जनतान्त्रिक कहते हैं, तो हम उसकी प्रशंसा करते हैं : नतीजा यह होता है कि हर तरह के शासन में डिक्टेटर दावा यही करता है कि उसका शासन जनतन्त्र है।'

अख़बारों पर सेंसरशिप लागू कर देने, मूल अधिकारों को ताक़ पर रख देने और सैकड़ों लोगों को मुक़दमा चलाये बिना जेल में ठूँस देने के बाद केवल आर्वेल की उस निराली भाषा 'न्यूस्पीक' (नयी बोली) में ही, जिसमें युद्ध मंत्रालय को शान्ति मंत्रालय कहा जाता था, श्रीमती गांधी यह कह सकती थीं कि भारत अब भी एक जनतन्त्र है।

इण्टरनेशनल प्रेस इन्स्टीच्यूट ने श्रीमती गांधी से सेंसरशिप हटा लेने का अनुरोध किया, क्योंकि वह "दुनिया की नज़रों में भारत के नाम पर एक कलंक ही साबित हो सकती है।"

सोशलिस्ट इण्टरनेशनल ने 15 जुलाई को जयप्रकाश से जहाँ वह नज़रबन्द थे वहीं मिलने के लिए एक प्रतिनिधिमण्डल भेजने का फ़ैसला किया, जिसमें विली ब्रांट, जो पश्चिम जर्मनी के चांसलर रह चुके थे, और आयरलैंड के डाक-तार मंत्री कोनोर क्रूज़ ओ' ब्रायन भी शामिल थे। लेकिन भारत सरकार ने यह कहकर उन्हें इजाज़त देने से इंकार कर दिया कि यह 'भारत के अन्दरूनी मामलात में सरासर हस्तक्षेप' होगा। सोशलिस्ट इण्टरनेशनल ने इसके जवाब में कहा, 'अब सभी सोशलिस्ट यह महसूस करते होंगे कि भारत में जो कुछ हो रहा है वह उनके लिए निजी तौर पर एक दुःखद बात है।"

पश्चिमी देशों में सरकारी राय यह थी कि भारत में जनतन्त्र हमेशा के लिए खत्म हो गया है, और यह बात कितनी ही तकलीफ़देह क्यों न हो, श्रीमती गांधी को नाराज़ करने से तो अच्छा यही है कि इस सच्चाई को मान लिया जाये। अमरीका के विदेशमंत्री हेनरी किसिंजर ने विदेश विभाग में इस सवाल पर बहस की और वह इस नतीजे पर पहुँचे कि अब भारत सरकार से निबटना ज़्यादा आसान होगा। इस मीटिंग में उनके एक सहयोगी ने कहा कि श्रीमती गांधी की नीति अब ज़्यादा 'व्यावहारिक' होगी। किसिंजर ने कहा, 'तुम्हारा मतलब है, बिकाऊ।' किसी ने 'डिक्टेटर' का भी ज़िक्र किया।

शायद उस वक़्त भी वह यह मानने को तैयार नहीं थीं कि वह डिक्टेटर हैं, और अगर कोई उन्हें डिक्टेटर कहता था तो वह इसे अपना अपमान समझती थीं। और देश में बहुत-से लोग ऐसे थे जो यह यक़ीन ही नहीं कर सकते थे कि नेहरू की बेटी डिक्टेटर बन सकती है; उन्हें पूरा यक़ीन था कि एक असाधारण स्थिति से निबटने के लिए उन्होंने असाधारण अधिकार अपने हाथ में ले लिये हैं। यह दौर कुछ दिन में बीत जायेगा।

लेकिन कम-से-कम एक आदमी ऐसा था जिसने साफ़ शब्दों में कहा था कि वह किधर जा रही हैं। वह जानता था कि श्रीमती गांधी जनवादी नहीं हैं और उसने यह बात कह भी दी थी। और इसी अपराध में वह जेल में बन्द था।

घोर अंधकार

"मेरा हमेशा से यह विश्वास रहा है कि श्रीमती गांधी की जनतन्त्र में कोई आस्था नहीं है, कि वह अपने स्वभाव और अपने विश्वास से डिक्टेटर हैं।" ये शब्द जयप्रकाश नारायण ने जेल में अपनी डायरी में 22 जुलाई को लिखे थे।

इससे एक ही दिन पहले उन्होंने इसी आशय का एक लम्बा पत्र श्रीमती गांधी को लिखा था। इसमें उन्होंने कहा था :

"राष्ट्र के निर्माताओं ने, जिसमें तुम्हारे उदात्त पिता भी शामिल थे, जो नींवें डाली थीं उन्हें मेहरबानी करके नष्ट न करो। तुमने जो रास्ता अपनाया है उस पर झगड़े और मुसीबत के अलावा और कुछ नहीं है। तुम्हें उत्तराधिकार में एक महान् परम्परा, उदात्त आदर्श और एक काम करता हुआ जनतन्त्र मिला है। अपने पीछे इन सबके टूटे हुए खण्डहर न छोड़ जाना। इन सब चीज़ों को फिर से जुटाकर बनाने में बहुत समय लग जायेगा। इसे फिर से जुटाकर खड़ा कर दिया जायेगा, इसमें तो मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है। जिस जनता ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद से टक्कर ली है और उसे नीचा दिखाया है, वह निरंकुशता के कलंक और अपमान को हमेशा के लिए स्वीकार नहीं कर सकती। मनुष्य की आत्मा कभी परास्त नहीं हो सकती, उसे चाहे जितनी बुरी तरह क्यों न कुचला जाये। अपनी निजी डिक्टेटरशिप क़ायम करके तुमने उसे बहुत गहरा दफ़न कर दिया है। लेकिन वह अपनी क़ब्र से फिर उठेगी। रूस तक में वह धीरे-धीरे उभर रही है।

"तुमने सामाजिक जनतन्त्र की बात की है। इन शब्दों से मन में कितनी सुन्दर कल्पना उभरती है। लेकिन तुमने खुद पूर्वी और मध्यवर्ती यूरोप में देखा है कि वास्तविकता कितनी कुरूप है। नंगी तानाशाही, और अन्त में चलकर रूस का प्रभुत्व। मेहरबानी करके, दया करके भारत को उस भयानक दुर्भाग्य की ओर मत ढकेलो।"

गिरफ़्तारी के बाद जयप्रकाश को पहले सोना ले जाया गया और फिर दिल्ली की ऑल इण्डिया मेडिकल इन्स्टीच्यूट में लाया गया, क्योंकि वह बीमार थे। जल्द ही यह बात साफ़ तौर पर समझ में आ गयी कि उन्हें लम्बे अरसे तक अस्पताल में रखने की ज़रूरत पड़ेगी। लेकिन दिल्ली इसके लिए मुनासिब जगह नहीं थी; वह हमेशा से अफ़वाहों का शहर रहा है और अब भी था। यह भेद कौन नहीं जानता था कि जयप्रकाश ऑल इण्डिया मेडिकल इन्स्टीच्यूट में हैं; बाहर मैदान में उत्सुक लोगों की टोलियाँ जमा होने लगी थीं।

उन्हें कहीं और ले जाना ज़रूरी था। उन्हें नज़रबन्द रखने के लिए चंडीगढ़ की पोस्ट-ग्रेजुएट इन्स्टीच्यूट को चुना गया। बंसीलाल ने पहरेदारी के लिए कुछ चुने हुए पुलिसवालों का बन्दोबस्त कर दिया। जयप्रकाश को भाग निकलने का मौक़ा नहीं दिया जा सकता था, जिस तरह वह 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान जेल से भाग निकले थे।

जयप्रकाश के चंडीगढ़ ले जाये जाने से पहले श्रीमती गांधी ने सोचा कि उन्हें खुद अपनी आँखों से यह देखने का मौक़ा दिया जाना चाहिए कि दिल्ली में कितनी शान्ति है, हालाँकि वह आदमी जिसकी मीटिंगों में इसी शहर में लाखों लोग खिंचकर आते थे, और जिसने 'भूल से' यह समझ लिया था कि जो वह कहता है वही जनता चाहती है, आज हिरासत में था। श्रीमती गांधी ने पुलिस से कहा कि वह उन्हें शहर में घुमाये ताकि वह खुद अपनी आँखों से देख सकें कि जिन लोगों ने अत्याचार का मुक़ाबला करने की सौगन्ध खायी थी उनमें से किसी एक ने भी विरोध में उँगली तक नहीं उठायी थी। उन्हें मोटर पर सड़कों-सड़कों घुमाया गया। सचमुच यह ऐसा शहर लगता था जिसे इस बात की चिन्ता ही नहीं थी कि जनता से क्या चीज़ छिन गयी है।

वह सोच रहे थे कि वे सज्जन और महिलाएँ अपने ड्राइंग-रूमों में आराम के साथ हर चिन्ता से दूर बैठे क्या कह रहे होंगे, वही लोग जो उनसे कहा करते थे कि आप ही देश के लिए 'उम्मीद की आख़िरी किरन' हैं। क्या अब ये लोग मुझे 'यह भयानक तबाही' लाने के लिए कोस रहे होंगे? शायद वे कह रहे हों कि जब श्रीमती गांधी चारों ओर से इतनी बुरी तरह घिर गयी थीं तो वह उसके अलावा और कर ही क्या सकती थीं जो उन्होंने किया। अब तो वह बस यह आस लगाये थे कि कम-से-कम कुछ लोग, ख़ासतौर पर नौजवान तो ऐसे होंगे जो निजी तौर पर मेरे प्रति न सही पर उस ध्येय के प्रति तो अब भी वफ़ादार होंगे जिसका मैं प्रतिनिधि हूँ। भारत एक बार फिर अपनी क़ब्र से उभरेगा, इसमें चाहे जितना समय लग जाये।

बहुत-से लोग अन्दर-ही-अन्दर जयप्रकाश को यह दोष दे रहे थे कि उन्होंने ठीक से तैयारी किये बिना आन्दोलन छेड़ देने का नारा क्यों दे दिया। कुछ लोग उनकी इस हरकत को नेहरू की उस हरकत जैसा समझते थे जब उन्होंने अक्तूबर 1962 में खुले-आम यह कहा था कि उसने फ़ौज को भारत की भूमि पर से चीनियों को खदेड़ देने का हुक्म दे दिया है। इन लोगों की दलील यह थी कि इन दोनों ही मामलों में नतीजा वही हुआ था कि तबाही आ गयी थी।

इधर जयप्रकाश के अरमानों की दुनिया तहस-नहस पड़ी थी, उधर 1 जुलाई को श्रीमती गांधी ने अपनी सुनहरे सपनों की दुनिया की रूपरेखा का ऐलान किया। उनके मंत्रियों ने उन्हें जो 150 सुझाव भेजे थे उनमें से उन्होंने 20 सूत्र (शुरू में 21) चुन लिये थे। ये 'सूत्र' बहुत सोच-विचारकर चुने गये हों ऐसा नहीं था—उन्होंने बस उन सुझावों को चुन लिया था जिनके बारे में वह समझती थीं कि जनता उन्हें आसानी से समझ लेगी; बस बात करने के लिए वे बहुत अच्छे थे। लेकिन इनमें से कई सूत्र सचमुच तारीफ़ के क़ाबिल थे और उन पर किसी को एतराज नहीं हो सकता था।

ये बीस सूत्र थे :

1) जरूरत की चीज़ों के दामों में कमी और उनके उत्पादन और वितरण का अच्छा बन्दोबस्त।

2) सरकारी ख़र्च में कमी।

3) खेती की जमीन की हदबन्दी का काम पूरा करना और फ़ालतू जमीन बाँटने की रफ़्तार तेज़ करना और जमीनों का पूरा ब्यौरा जमा करना।

4) जिन लोगों के पास ज़मीन नहीं है या समाज के कमज़ोर हिस्सों के लोगों को घर बनाने के लिए ज़मीनें दिलाने का काम तेज़ करना।

5) बन्धक मज़दूरी को ग़ैर-क़ानूनी ठहराने का ऐलान।

6) गाँववालों के कर्ज़े खत्म कराने और बे-ज़मीन लोगों, मज़दूरों, छोटे किसानों और दस्तकारों से कर्ज़ों की वसूली रुकवा देने की योजना बनाना।

7) खेती के काम की कम-से-कम मज़दूरी की दर पर फिर से विचार।

8) पचास लाख हेक्टेयर नयी ज़मीन पर सिंचाई का बन्दोबस्त और ज़मीन के नीचे के पानी को इस्तेमाल करने का राष्ट्रीय कार्यक्रम तैयार करना।

9) बिजली की पैदावार बढ़ाना।

10) हथकरघा क्षेत्र का विकास और जनता के इस्तेमाल के सस्ते कपड़े की क्वालिटी और उसकी सप्लाई में सुधार।

11) शहरी ज़मीन और आगे चलकर शहरी बन सकने वाली ज़मीन के 'समाजीकरण' को लागू करना और खाली ज़मीन की मिल्कियत और कब्ज़े पर हदबन्दी लगाना।

12) अनाप-शनाप खर्च करनेवालों के माल-जायदाद की क़ीमत आंकने के लिए खास टुकड़ियों का इन्तज़ाम और टैक्स-चोरी की रोकथाम और आर्थिक अपराध करने-वालों पर झटपट मुक़दमा चलाकर उन्हें ऐसी कड़ी सजाएँ देना कि दूसरे लोग वैसे अपराध करने से डरें।

13) स्मगलरों की जायदादें ज़ब्त करने के लिए खास क़ानून।

14) पूंजी लगाने के क़ायदे-क़ानून में नरमी और इंपोर्ट लाइसेंसों का बेजा इस्तेमाल करनेवालों के खिलाफ़ कार्रवाई।

15) उद्योगों की व्यवस्था में मज़दूरों के भाग लेने के लिए नयी योजनाएँ।

16) ट्रकों, बसों आदि के लिए राष्ट्रीय परमिट योजनाएँ।

17) मध्यम वर्ग के लोगों के लिए इनकम-टैक्स में छूट—8,000 रुपये तक की आमदनी पर कोई टैक्स नहीं।

18) होस्टलों में विद्यार्थियों के लिए कन्ट्रोल के दामों पर उनकी ज़रूरत की चीज़ें।

19) कन्ट्रोल के दामों पर किताबें और लिखने-पढ़ने का सामान।

20) रोज़गार और ट्रेनिंग की सुविधाएँ बढ़ाने के लिए, खासतौर पर समाज के कमज़ोर हिस्सों के लिए, नयी अप्रेंटिसशिप योजना।

इससे कुछ ही महीने पहले दिल्ली से थोड़ी ही दूर पर नरौरा में उन्होंने बहुत-कुछ ऐसा ही तमाशा किया था, जब उन्होंने ग़रीबों को 'राहत दिलाने के उपाय करके' जयप्रकाश की लहर को रोकने के लिए सभी मुख्यमंत्रियों, कैबिनेट मंत्रियों, प्रदेश कांग्रेस कमेटियों के अध्यक्षों को जुटाया था। उस वक़्त उन्होंने कहा था कि जयप्रकाश के साथ उनके मतभेद असल में "सामाजिक न्याय और आर्थिक स्वतन्त्रता की ओर हमारे समाज को और ज्यादा आगे बढ़ने से रोकने पर तुले हुए पैसेवाले स्वार्थी वर्गों का और सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में जो कुछ हासिल किया गया है उसे पक्का करने और अपने चुने हुए रास्तों पर आगे बढ़ते जाने के लिए कमर बाँधे हुए मेहनतकश जनता का" टकराव है।

श्रीमती गांधी अपने राजनीतिक दाँव-पेंच के लिए एक आर्थिक आड़ ज़रूर रखती थीं। 1969 में जब कांग्रेस में फूट पड़ी थी तब भी उन्होंने यही किया था, और 1971 में समय से पहले लोकसभा के चुनाव के वक़्त भी उन्होंने यही किया था, और दोनों ही बार वह अपनी इस चाल में कामयाब रही थीं। जनता हमेशा यही समझती रही कि उनकी लड़ाई अपनी गद्दी को बचाये रखने के लिए नहीं बल्कि देश की आर्थिक भलाई के लिए है। इस बार भी उनको यक़ीन था कि सरकार पर अपना कब्ज़ा बनाये रखने की उनकी चाल बीस-सूत्री कार्यक्रम की आड़ में छिप जायेगी। और उस समय तो उन्हें कामयाबी मिलती दिखायी दे रही थी।

प्रचार-प्रसार के सभी माध्यमों में और हर सरकारी ग़ैर-सरकारी बहस में जहाँ देखो बीस-सूत्री कार्यक्रम की ही चर्चा थी। हर जगह बड़े-बड़े बोर्ड लगाये गये थे और पोस्टर चिपकाये गये थे, जिन पर कार्यक्रम के बीस सूत्र लिखे होते थे और साथ में श्रीमती गांधी की एक बड़ी-सी तसवीर होती थी। बोर्ड जितना ही बड़ा होता था, लोगों पर उसका उतना ही अच्छा असर पड़ता था। आखिरकार उन्होंने खुद ही इन बोर्डों को हटवा देने का हुक्म दिया क्योंकि उनके क़रीबी दोस्तों ने उन्हें बताया कि इन बोर्डों की तसवीरों में आप 'भयानक' लगती हैं।

हर आदमी का कर्तव्य था कि वह बीस-सूत्री कार्यक्रम के अनुसार काम करे, या कम-से-कम जताये तो जरूर कि वह ऐसा कर रहा है। दिल्ली प्रशासन ने सभी व्यापारियों और दूकानदारों को आदेश दे दिये कि वे अपना स्टाक और क़ीमतें तख्ती पर लिखकर दूकान में लगायें। उन्हें लगभग हर चीज़ पर दाम की पर्ची लगानी पड़ती थी। इस आदेश का सहारा लेकर अधिकारी बड़ी आसानी से उन दूकानदारों को सज़ा दे सकते थे जो कांग्रेस की, और बाद में युवक कांग्रेस की, तिजोरियाँ भरने के लिए पैसा नहीं देते थे या जो सरकार के बताये हुए ढंग से सोचने से इंकार करते थे।

संजय ने हकसर से अपना हिसाब चुकाने के लिए दाम की पर्चियाँ लगाने के हुक्म का सहारा लिया। हकसर के 80 बरस बूढ़े चाचा, जो नई दिल्ली में कनाटप्लेस के डिपार्टमेन्टल स्टोर पंडित ब्रदर्स के मालिक थे, गिरफ़्तार कर लिये गये क्योंकि उनकी दूकान में किसी छोटी-सी चीज़ पर दाम की पर्ची नहीं लगी हुई थी और उन्हें तीन दिन तक जेल में रखा गया। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थानीय नेता अरुणा आसफ़अली को जाकर श्रीमती गांधी को समझाना-बुझाना पड़ा कि वह बीच में पड़कर हकसर के चाचा को छुड़वा दें।

हकसर की ईमानदारी की दाद देनी पड़ती है कि श्रीमती गांधी की सरकार की तरफ़ उनकी वफ़ादारी में कभी फ़र्क नहीं आने पाया। लेकिन यह तो संजय का, और यों तो सरकार का भी, काम करने का तरीक़ा ही था—लोगों के दिल में दहशत बिठा देना। इतने कुकर्म हो रहे थे कि श्रीमती गांधी ने भी अपना अलग ही एक काम करने का ढंग निकाल लिया था; वह इस तरह की सारी बातों के बारे में अनजान बन जाती थीं, हालाँकि उन्हें अपने बेटे और उसके गुर्गों की ज़्यादातर हरक़तों का पहले से पता रहता था।

चीनी और कपड़े की मिलों को सरकार के हाथों में ले लेने के बारे में बरुआ ने जो सुझाव रखा था उसकी चर्चा चारों तरफ़ हो गयी थी। श्रीमती गांधी ने एक बयान जारी किया कि कारखानों को अपने हाथ में लेने या कोई नये कड़े कन्ट्रोल लगाने की सरकार की कोई योजना नहीं है।

श्रीमती गांधी ने कहा कि मीसा का इस्तेमाल स्मगलरों को पकड़ने के लिए किया जायेगा। सचमुच उनका कारोबार सारी दुनिया में फैला हुआ था और उनका सबसे बड़ा अड्डा दुबाई में था। बैंकों और बीमा कम्पनियों ने स्मगलिंग के लिए पैसा देने और माल के पकड़े जाने या खो जाने के खतरे का बीमा करने के लिए वहाँ अपने दफ़्तर खोल लिये थे। समुद्र के रास्ते, सड़क के रास्ते और हवाई जहाज़ों से आवाजाही का एक पूरा जाल फैला लिया गया था। गुजरात से लेकर केरल तक समुद्र के किनारे-किनारे कितनी ही ऐसी पहचानी हुई जगहें थीं जहाँ स्मगलिंग का माल उतारा जाता था और वहाँ से सारे देश में खपत के केन्द्रों में भेज दिया जाता था। मद्रास में स्मगलरों का बहुत बड़ा अड्डा था और बंगलौर उनके लिए बिना किसी खतरे के जा छिपने के लिए बहुत अच्छी जगह थी, जहाँ वे एक-दूसरे से मिल सकते थे, और एक-दूसरे से

सलाह-मशविरा कर सकते थे। उनके अपने गोदाम थे, अपने बाज़ार थे, वायरलेस से खबरें भेजने का अपना बन्दोबस्त था—और उन लोगों के व्यवहार के कुछ बँधे हुए क़ायदे-क़ानून थे। स्मगलरों और काले पैसे का धन्धा करनेवालों के बीच सीधा सम्पर्क था।

स्मगलरों के खिलाफ़ जो मुहिम चलायी जा रही थी उसकी सभी तारीफ़ करते थे। लेकिन श्रीमती गांधी ने खुद ही सितम्बर 1974 में अपने एक मंत्री के० आर० गणेश को, जो बहुत अच्छा काम कर रहे थे, हटा दिया था। गणेश का कहना यह है कि ज़्यादातर चोटी के स्मगलरों की राजनीति में बड़े-बड़े लोगों तक पहुँच है, और उनमें से कुछ ने तो श्रीमती गांधी और उनके मुख्यमंत्रियों के साथ किसी तरह अपनी तसवीरें भी खिंचवा ली थीं। गणेश को याद है कि "पूरक अनुदान की मंजूरी पर बहस के दौरान, सोशलिस्ट संसद-सदस्य मधुलिमये इस बात पर अड़ गये कि उन्हें चोटी के स्मगलरों के नाम बताये जायें। शाम का वक़्त था; काफ़ी देर हो चुकी थी। मुश्किल से गिनती के कुछ सदस्य सदन में मौजूद थे। मैं बोल रहा था। इतने में अचानक प्रधानमंत्री सदन में आयीं। मैंने अपना जवाब वहीं रोक दिया।

"कुछ समय बाद वही सवाल सदन में फिर उठाया गया और एक बार फिर स्मगलरों के नाम बताने की लगातार माँग की गयी। मैंने तीन नाम झटपट बता दिये—बखिया, यूसुफ़ पटेल और हाजी मस्तान।

"बाद में प्रधानमंत्री के एक खास आदमी ने मुझे बताया कि मुझे इस तरह लोगों के नाम नहीं बताने चाहिए थे। अन्दाज़ा लगाइये कि स्मगलर कितने ताक़तवर हो गये थे! कुछ दिन बाद, जब स्मगलरों के खिलाफ़ मुहिम पूरे ज़ोरों पर थी, मेरे पास प्रधानमंत्री का एक चार लाइन का खत आया, जिसमें मेरा ध्यान अहमदाबाद के किसी आदमी की इस 'शिकायत' की तरफ़ दिलाया गया था कि मंत्री विदेशी सिगरेट लाइटर इस्तेमाल करते हैं।

"जिस मुस्तैदी के साथ प्रधानमंत्री ने 'अहमदाबाद के किसी आदमी' की यह शिकायत मेरे पास तक पहुँचा दी थी उसके बारे में कम-से-कम इतना तो कहना ही पड़ेगा कि ऐसा आमतौर पर नहीं होता था। इशारा मैं समझ गया।

"इस बात से इन्दिरा गांधी की एक और फटकार मुझे याद आ गयी जब उन्होंने कहा था, 'हर आदमी यही साबित करना चाहता है कि दूध का धोया और बेक़सूर है; बेईमान अकेली मैं हूँ। इस तरह पार्टी कैसे चल सकती है?'"

उस वक़्त श्रीमती गांधी की मजबूरियाँ कुछ भी रही हों, लेकिन स्मगलरों के खिलाफ़ कार्रवाई अब बड़ी बेरहमी से की जा रही थी। ढेरों काला पैसा भी निकलवाया गया था और 'आर्थिक अपराधों' के लिए कई व्यापारी भी मीसा में पकड़े गये थे। लेकिन काले पैसे का धन्धा करनेवाले सभी लोग नहीं पकड़े गये थे, खास तौर पर चोटी के लोग। और यह बात किससे छिपी थी कि किस तरह कई कांग्रेसियों ने 'आर्थिक अपराधियों' को पैरोल पर छुड़ाने की कोशिश करके और अफ़सरों की बदली कराके या उनको तरक़्क़ी दिलाकर या व्यापारियों को ठेके दिलाकर ढेरों दौलत बटोरी थी।

बीस-सूत्री कार्यक्रम की बुनियाद पर शासक-वर्ग के बड़े-बड़े नेता खुलकर राजनीतिक लफ़्फ़ाज़ी भी कर सकते थे। वायदों का तो कोई अन्त ही नहीं था—अपनी जरूरत की हर चीज़ हम खुद पैदा करेंगे, ग़रीबों की हालत सुधरेगी, ज़मीन का नये सिरे से बँटवारा होगा, और न जाने क्या-क्या। इन बातों की क़समें हर राजनीतिक पार्टी खाती थी लेकिन उनको पूरा करना दूसरी बात थी। मिसाल के लिए, ज़मीन के बँटवारे के बारे में क़ानून तो न जाने कब का बन चुका था, लेकिन केरल को छोड़कर,

जहाँ पहले मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की और फिर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की मिली-जुली सरकार के ज़माने में कुछ किया गया, किसी ने इस क़ानून को लागू करने की कोशिश भी नहीं की। दस साल के अन्दर, 1964 से 1974 के बीच, दरिद्रता की सीमा से भी नीचे ज़िन्दगी बसर करनेवाले लोगों की संख्या 48 प्रतिशत से बढ़कर 66 प्रतिशत हो गयी थी। देहातों में अब भी ऊँच-नीच की वही सीढ़ी बनी हुई थी—ज़मींदार और कमिया (काम करनेवाले); धनवानों और कंगालों के बीच की खाई और चौड़ी हो गयी थी और दिन-ब-दिन चौड़ी होती जा रही थी।

इस 'नये' कार्यक्रम में कोई बात नयी नहीं थी। एक राज्य ने कहा, "हमें पैसा दीजिये, सब-कुछ ठीक हो जायेगा; खाली बातें करने से क्या फ़ायदा।" और तमिलनाडु का जवाब उनके हमेशा के ढंग का ही था—यह राज्य बीस सूत्रों में से उन्नीस पहले ही पूरे कर चुका था। दूसरे राज्य भी इसी तरह के दावे करने में पीछे नहीं थे, लेकिन तमिलनाडु के लिए, जहाँ डी० एम० के० की सरकार थी, यह बात कहना श्रीमती गांधी की सरकार की नज़रों में न सिर्फ़ ढिठाई की बल्कि उससे भी बदतर बात थी।

यह कार्यक्रम तो लोगों को लालच देने के लिए था; श्रीमती गांधी के हाथ में डंडा भी था। भारत सरकार ने 4 जुलाई को 26 राजनीतिक संगठनों को ग़ैर-क़ानूनी ठहरा दिया, जिनमें से सिर्फ़ चार ही ऐसे थे जिनका कुछ असर था। ये चार संगठन थे हिन्दू धर्म का फिर से बोलबाला चाहनेवाली लड़ाकू संस्था राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आर० एस० एस०), मुस्लिम धार्मिक संगठन जमाअते-इस्लामिए-हिन्द, हिन्दू कट्टरपंथियों का एक सम्प्रदाय आनन्द मार्ग, और नक्सलवादी (चरम वामपंथी)। उन पर यह आरोप लगाया गया था कि "उनकी हरकतें भीतरी सुरक्षा, सार्वजनिक रक्षा और सार्वजनिक शान्ति बनाये रखने के रास्ते में बाधा हैं।" बाद में 6 अगस्त को अलग राज्य की माँग करनेवाले मीज़ो नेशनल फ्रंट को भी इन ग़ैर-क़ानूनी संगठनों की फ़ेहरिस्त में जोड़ दिया गया।

गृहमंत्री ने कहा कि जिन पार्टियों को ग़ैर-क़ानूनी ठहराया गया है उनमें से कुछ साम्प्रदायिक पार्टियाँ हैं। लेकिन कुछ ही साल पहले क़ानून मंत्रालय ने कहा था कि इस तरह की साम्प्रदायिकता की कोई क़ानूनी परिभाषा नहीं दी जा सकती। उस वक़्त यह सोचा गया था कि साम्प्रदायिकता के खिलाफ़ राजनीतिक लड़ाई लड़ना बेहतर होगा, लेकिन ऐसा लगता था कि यह नीति बदल गयी थी। ऐसे लोगों के लिए जो आसानी से साम्प्रदायिकता के आरोप पर यक़ीन न करते, यह कहा गया कि इन पार्टियों का 'विदेशी ताक़तों' से सम्बन्ध है।

इन पार्टियों पर पाबन्दी लगा देने से सरकार को मनमानी गिरफ़्तारियाँ करने का मौक़ा मिल गया। जिन लोगों को आर० एस० एस० या जमाअत से कुछ लेना-देना नहीं था, या जो कई साल से कोई काम नहीं कर रहे थे, उन्हें भी पकड़ लिया गया।

शेख अब्दुल्ला, जिन्होंने भारत सरकार से एक समझौते के बाद जम्मू-कश्मीर में अपनी सरकार बनायी थी, इमर्जेंसी लागू किये जाने के खिलाफ़ थे। मुख्यमंत्री की हैसियत से वह या तो यह कह देते थे कि जम्मू-कश्मीर में इसे इसलिए लागू करना पड़ा कि यह राज्य भी भारत का हिस्सा है, या फिर वह यह सफ़ाई देते थे कि संविधान में इमर्जेंसी लागू करने की गुंजाइश रखी गयी है।

मेरे साथ 30 सितम्बर को एक इंटरव्यू के दौरान उन्होंने कहा था कि 'जम्हूरियत को फिर सही रास्ते पर लाने के लिए' दोनों पक्षों को आपस में बातचीत करनी चाहिए। लेकिन अकेले में वह दिल्ली की 'एक आदमी की सरकार' को बहुत बुरा-

भला कहते थे। वह विपक्ष की भी आलोचना करते थे कि 'विना किसी तैयारी के वह हद से आगे निकल गया।'

शेख साहब ने ग़ैर-क़ानूनी संगठनों के नेताओं को गिरफ़्तार तो करवाया लेकिन कुछ दिन वाद उन्हें पैरोल पर रिहा करवा दिया। ये ग़ैर-क़ानूनी संगठन जो स्कूल वग़ैरह चलाते थे उन्हें भी बन्द कर दिया गया।

शाम को निकलनेवाले दैनिक अख़बार वादिए-कश्मीर पर भी इमर्जेंसी के दौरान पावन्दी लगा दी गयी। सेंसरशिप के मामले में दूसरी जगहों के मुक़ावले कुछ नरमी बरती जाती थी, यहाँ तक कि कभी-कभी केन्द्रीय सरकार के सेंसर को कुछ अख़बारों की 'गलतियाँ' राज्य के अधिकारियों को वतानी पड़ती थीं।

श्रीमती गांधी के कुछ क़रीवी लोगों ने शेख़ साहव पर दबाव डाला कि वह जयप्रकाश की निन्दा करें, लेकिन उन्होंने ऐसा करने से साफ़ इंकार कर दिया। एक वार तो उन्होंने एक पब्लिक मीटिंग में इस बात का ज़िक्र भी किया लेकिन उनकी तक़रीर की रिपोर्ट केन्द्रीय सरकार के सेंसर ने छपने ही नहीं दी।

श्रीमती गांधी आर० एस० एस० के मेम्बरों पर शिकंजा कसना चाहती थीं, लेकिन उस वक़्त तक जो लोग पकड़े गये थे वे तो उनका एक बहुत ही छोटा हिस्सा थे। इस पावन्दी से कोई ख़ास फ़ायदा नहीं हुआ; ज़्यादातर कार्यकर्त्ता अण्डरग्राउण्ड चले गये और उन्होंने जनता की इस उम्मीद को सहारा दिये रहने के लिए कि एक न एक दिन तो इस सरकार का तख़्ता उलटेगा ही, थोड़ा-बहुत जितना भी बन पड़ा विरोध आन्दोलन संगठित करने में मदद दी।

अण्डरग्राउण्ड संगठन बनाने में कुछ समय लगा। दो टोलियाँ थीं, एक सोशलिस्ट नेता जार्ज फ़र्नांडीज़ की अगुवाई में और दूसरी जनसंघ के नानाजी देशमुख की अगुवाई में। दोनों के बीच थोड़ा-बहुत तालमेल भी था, लेकिन ज़्यादा ज़ोर 'थोड़ा-बहुत' पर था। अपनी तरफ़ से इन दोनों ही ने उस ताक़त के ख़िलाफ़, जिसे 'भारतीय फ़ासिस्टों और रूसियों का गठजोड़' कहा गया था, सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ने के लिए हिदायतें जारी कीं। आठ पेज का एक साइक्लोस्टाइल अख़बार निकाला गया जिस पर यह हिदायत लिखी रहती थी कि 'पढ़िये और दूसरों को पढ़ाइये।' इसमें सभी राजनीतिक विचारों के नेताओं से अपील की गयी थी कि वे अपने मतभेदों को भुलाकर 'भारत में फिर से जनतन्त्र की स्थापना' के संघर्ष के लिए एक हो जायें। इसमें विपक्ष को भी आगे चलकर चेतावनी दी गयी थी कि "विचारधाराओं पर बहस या नेताओं के झगड़ों का यह समय नहीं है। हमारी एक ही मंज़िल है और वह है फ़ासिज़्म को हराना और उस जनतन्त्र को फिर से क़ायम करना जिसमें सभी को बुनियादी स्वतन्त्रताएँ हासिल रहें और कई राजनीतिक संस्थाएँ एक साथ काम कर सकें।" इस अण्डरग्राउण्ड अख़बार में रूस के साथ भारत के गहरे सम्वन्धों की कड़ी आलोचना की गयी थी : "रूसियों को, जिन्होंने सबसे पहले भारत में फ़ासिस्ट व्यवस्था का स्वागत किया था, इस वात में भी गहरी दिलचस्पी है कि भारत एक कंगाल देश बना रहे, जिस काम को श्रीमती गांधी बड़ी बेरहमी और मुस्तैदी के साथ पूरा कर रही हैं।"

अण्डरग्राउण्ड संगठन ने एक ख़ुफ़िया रेडियो स्टेशन भी क़ायम करने का ववादा किया था और यह भी इशारा दिया गया था कि उसका ट्रांसमीटर 'यूरोप के किसी देश में' पड़ा हुआ है। लेकिन यह रेडियो स्टेशन कभी क़ायम नहीं हो सका।

जार्ज फ़र्नांडीज़ ने ख़ुफ़िया तौर पर बाँटे गये एक पर्चे में यह सुझाव दिया कि ख़ुफ़िया साहित्य तैयार करके बाँटा जाये, 'कानाफूसी की मुहिम' चलायी जाये, हड़तालें और 'बन्द' संगठित किये जायें, सरकार के काम-काज को ठप्प कर दिया जाये और

पुलिस और फ़ौज के लोगों के साथ मेल-जोल बढ़ाया जाये। जार्ज फ़र्नांडीज़ ने कहा कि वह "संविधान को अपवित्र करने, फ़ासिस्ट डिक्टेटरशिप क़ायम करने, देश में क़ानून का शासन ख़त्म करने में हाथ बटाना" नहीं चाहते।

नानाजी देशमुख ने अन्दर-ही-अन्दर विरोध करते रहने की भावना को बढ़ावा देने के लिए पर्चे बाँटने के लिए छोटी-छोटी टोलियाँ बनाने और नारे लगाने की मुहिम शुरू करने की पैरवी की।

अण्डरग्राउण्ड संगठनों की कार्रवाइयाँ बहुत सीमित थीं फिर भी पुलिस को लगातार चौकस रहना पड़ता था और श्रीमती गांधी को चिन्ता लगी रहती थी। इन हलचलों में तालमेल बिठाने में जयप्रकाश के सेक्रेटरी राधाकृष्णन् ने हाथ बटाया। जो अलग-अलग संगठन सत्याग्रह शुरू करना चाहते थे उन्हें एक लड़ी में पिरोने के लिए उन्होंने कई राज्यों का दौरा किया। लेकिन इससे पहले कि बाहर कोई संगठन क़ायम हो पाता वह गिरफ़्तार कर लिये गये। सबसे बड़ा धक्का दक्षिणी दिल्ली की एक बस्ती पर अचानक छापे के दौरान नानाजी की गिरफ़्तारी से पहुँचा। उनकी मुहिम का नाम 'ऑपरेशन टेक-ओवर' (सत्ता पर अधिकार) था, लेकिन उनके बाद जब संगठन कांग्रेस के नेता रवीन्द्र वर्मा ने मोर्चा सँभाला तो उन्होंने उसका नाम 'आफ़ताब' (सूरज) रखा।

इस वक़्त तक 60,000 लोग गिरफ़्तार किये जा चुके थे। गिरफ़्तार किये जाने वालों में जयपुर की राजमाता गायत्री देवी और ग्वालियर की राजमाता भी थीं। दोनों को दिल्ली के तिहाड़ जेल में, जिस वार्ड में मैं था उसी से मिले हुए वार्ड में, क़ैद कर दिया गया। गायत्री देवी के खिलाफ़ जो इल्ज़ाम था[1] वह विदेशी मुद्रा का झूठा हिसाब देने के बारे में था। दोनों राजमाताएँ ज़नाने वार्ड में रंडियों और चोर-उचक्की औरतों के साथ रखी गयी थीं, जिनके बारे में गायत्री देवी ने बाद में कहा कि "हर तरफ़ वही दिखायी देती थीं; बिलकुल ऐसा लगता था कि बीच बाज़ार में लड़ाका औरतों के बीच रह रहे हैं।" गायत्री देवी ने कहा, "फ्रांस से मेरे एक दोस्त ने लिखकर पूछा कि मैं तोहफ़े में क्या चीज़ लेना चाहूँगी। जिसके जवाब में मैंने कहा कि कान में ठूँसने का जो मोम वहाँ मिलता है, वह थोड़ा-सा भेज दो।"

अकालियों ने पंजाब में 9 जुलाई से एक मोर्चा लगाया था, जिसकी शुरुआत अमृतसर में पाँच अकालियों की गिरफ़्तारी से हुई थी। इमर्जेंसी के ऐलान और जनतन्त्र का गला घोंटे जाने के खिलाफ़ यह मोर्चा इमर्जेंसी के आखिर तक चलता रहा। लगभग 45,000 सिक्ख खुशी-खुशी जेल चले गये। अकालियों के चोटी के नेता, जिनमें प्रकाशसिंह बादल और गुरचरनसिंह तोहरा भी थे, मीसा में नज़रबन्द कर दिये गये। श्रीमती गांधी ने, जैसा कि उनका हमेशा का दस्तूर था, इस बार भी यही सोचा कि यह सारा आन्दोलन सिर्फ़ 'बदइन्तज़ामी' की वजह से ज़ोर पकड़ रहा है। इसकी वजह से वह पंजाब के मुख्यमंत्री जैलसिंह से बहुत नाराज़ थीं।

दूसरी जगहों पर भी लोगों को शुरू-शुरू में धक्का लगा था और जो कुछ हो रहा था उस पर उन्हें किसी तरह यक़ीन नहीं आ रहा था, लेकिन अब लोग धीरे-धीरे खुलने लगे थे। ज़्यादातर अख़बार 'सही रास्ते पर' आते जा रहे थे। लेकिन साथ ही विरोध की हलचल भी दिखायी देती थी। मुझे 26 जुलाई को गिरफ़्तार किया गया।

1. गायत्री देवी ने श्रीमती गांधी को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने कहा कि अब मुझे राजनीति से कोई दिलचस्पी नहीं है और मैं बीस-सूत्री कार्यक्रम को मानती हूँ, जिसके बाद उन्हें पैरोल पर रिहा कर दिया गया।

अख़बारों पर से सेंसरशिप हटाने की माँग करने और 'हर इंसान की आज़ादी और इज़्ज़त के हक़ में आवाज़ उठाने' के जुर्म में आठ गांधीवादी गिरफ़्तार कर लिये गये, जिनमें भीमसेन सच्चर भी थे, जो गवर्नर और पंजाब के मुख्यमंत्री रह चुके थे। उन्होंने 7 अगस्त को सत्याग्रह करने की भी धमकी दी थी, जिसमें उन्होंने कहा था कि "इसका नतीजा हमारे लिए कुछ भी हो लेकिन हम खुलेआम भाषण करने और खुले-आम एक जगह जमा होने के अधिकार और अखबारों की आज़ादी की खुली पैरवी करेंगे ताकि इस बात पर बहस हो सके कि सरकार ने अपने हाथ में जो इतने ग़ैर-मामूली अधिकार ले लिये हैं उसमें क्या अच्छाई है और क्या बुराई।"

लेकिन ऐसी मिसालें इक्का-दुक्का ही थीं। डटकर टक्कर लेने की भावना कमज़ोर पड़ती जा रही थी। कम-से-कम कुछ लोगों में भले ही अन्दर-ही-अन्दर गुस्सा सुलग रहा हो, लेकिन किसी में खुलकर सरकार के खिलाफ़ आवाज़ उठाने की हिम्मत नहीं थी। लोगों के दिल में डर बैठ गया था।

सबसे ज़्यादा निराशा पढ़े-लिखे खाते-पीते लोगों के रवैये से होती थी। इनमें हमारे सबसे अच्छे बुद्धिजीवी थे—स्कूलों-कॉलेजों में पढ़ानेवाले, क़ानून के जानकार, सरकारी नौकर, डॉक्टर, वकील वग़ैरह—लेकिन इनमें से ज़्यादातर ने चुप्पी साधे रहने में ही खैरियत समझी। कुछ लोगों ने तो इमर्जेंसी की खूबियाँ भी गिनायीं क्योंकि "इमर्जेंसी लागू होने से पहले ज़िन्दगी में हर वक़्त कोई-न-कोई खतरा लगा रहता था; हड़तालें, बन्द और धरने आये-दिन की बात हो गये थे।" अब उन्हें चारों तरफ़ 'अमन-चैन' नज़र आता था।

कुछ लोग यह दलील भी देते थे, "हमें हमेशा किसी मालिक की ज़रूरत रही है जो हमसे काम करवाये। पहले मुग़ल थे, फिर अँग्रेज़ आये। अब श्रीमती गांधी हैं। इसमें ऐसी बुरी क्या बात है?

धवन को लोगों के इस रवैये पर कोई ताज्जुब नहीं हुआ। उन्होंने एक दिन बहुत रात गये अपनी टोली की मीटिंग में कहा, "अगर उनके ऐश-आराम पर और उनकी नौकरियों पर कोई आँच न आये, तो ये लोग बदतर-से-बदतर पाबन्दियों को सही साबित करने का कोई रास्ता निकाल लेंगे।"

कॉलेजों-यूनिवर्सिटियों के प्रोफ़ेसर, बुद्धिजीवी लोग डॉक्टर और वकील भी अपनी ख़ास सुविधाओं और अधिकारों की बुनियाद पर समाज को सिर्फ़ खाने-पीने और मौज उड़ाने की ज़िन्दगी के साँचे में ढाल लेने में नौकरशाहों, व्यापारियों और सेठ-साहूकारों से किसी तरह पीछे नहीं थे।

जबकि सारे देश में भय छाया हुआ था, संसद की बैठक कराने के लिए इससे अच्छा वक़्त क्या हो सकता था। श्रीमती गांधी ने सोचा इस तरह मेरे हाथ और मज़बूत हो जायेंगे। संसद तो इमर्जेंसी पर अपनी मुहर लगा ही देगी और इससे भारत में और विदेशों में उसे एक क़ानूनी हैसियत मिल जायेगी। उन्होंने 21 जुलाई 1975 को संसद की बैठक कराने का फ़ैसला किया।

लेकिन वह नहीं चाहती थीं कि बहुत ज़्यादा अटपटे सवाल पूछे जायें। सवाल-जवाब का घंटा खत्म कर देना ही ठीक रहेगा। वह पहले भी कई बार अपने मंत्रि-मण्डल के साथियों से कह चुकी थीं कि संसद की बैठक इतनी लम्बी नहीं होनी चाहिए और उसके काम करने के क़ायदे-क़ानूनों को भी इस तरह बदल दिया जाना चाहिए कि मंत्री और सरकारी विभाग बहसों और सवालों के सिलसिले में इतना वक़्त खराब करने के बजाय कुछ ठोस काम कर सकें। सरकार की ओर से एक प्रस्ताव रखा गया कि संसद की बैठक में सिर्फ़ 'ज़रूरी और महत्वपूर्ण सरकारी काम-काज' निबटाया जाये;

ग़ैर-सरकारी सदस्यों के सवालों, ध्यानाकर्षण प्रस्तावों या उनकी तरफ़ से सुझाये गये किसी और काम के लिए वक़्त न दिया जाये।

विपक्ष के सदस्यों ने—उनमें से ज़्यादातर तो नज़रबन्द थे—इस प्रस्ताव की धज्जियाँ उड़ा दीं। मार्क्सवादी सदस्य सोमनाथ चटर्जी ने कहा कि इस तरह सारे-के-सारे नियमों को एक साथ उठाकर ताक़ पर नहीं रखा जा सकता। डी० एम० के० के सदस्य एरा सेज़ियान ने कहा कि सदन को इस बात का अधिकार तो है कि वह अपने काम-काज की व्यवस्था जिस तरह की चाहे बना ले लेकिन फिर भी उसे कुछ क़ायदे-क़ानूनों को तो मानना ही पड़ेगा। मोहन धारिया ने कहा कि संसद को इस तरह काम करने का मौक़ा दिया जाना चाहिए कि उसके काम से कुछ फ़ायदा हो और क़ायदे-क़ानून भी ऐसे होने चाहिए कि काम में रुकावट पड़ने के बजाय सुविधा हो। एक निर्दलीय सदस्य राओमो पी० सिक्वेरा ने कहा कि यह बात समझ में नहीं आयी कि ग़ैर-सरकारी सदस्यों की तरफ़ से पेश किये गये विधेयकों पर विचार करने से क्यों इंकार कर दिया गया है क्योंकि इन लोगों ने तो संसद के ज़रूरी काम में कभी कोई बाधा नहीं डाली। उन्होंने कहा कि संसद की बैठक कानून बनाने के लिए नहीं बल्कि देश में जो हालात हैं उन पर बहस करने के लिए हो रही है; इमर्जेंसी लागू होने के बाद विपक्ष की हर पार्टी के नेता गिरफ़्तार किये गये हैं। संसद के कितने ही सदस्य न सिर्फ़ गिरफ़्तार कर लिये गये थे बल्कि उन्हें बार-बार एक जेल से दूसरे जेल भेजा जा रहा था। सरकार का साथ देने वाली भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के संसद सदस्य इन्द्रजीत गुप्ता ने भी कहा कि सरकार का प्रस्ताव तो बस एक खानापूरी है क्योंकि आदेश तो पहले ही जारी किये जा चुके हैं।

संसदीय मामलात के मंत्री के० रघुरमैया ने इसके जवाब में यह दलील दी कि सवाल-जवाब का घंटा खत्म कर देने का मतलब किसी भी तरह संसद का अपमान करना नहीं है। यह तो एक तरह की ऐसी पाबन्दी है जो सदन खुद अपने ऊपर लगा रहा है।

विपक्ष के विरोध के बावजूद यह प्रस्ताव लोकसभा में 301 के खिलाफ़ 76 वोटों से और राज्यसभा में 147 के खिलाफ़ 32 वोटों से पास हो गया। इसके बाद दोनों सदनों में इमर्जेंसी की घोषणा पर संसद की मंजूरी लेने के लिए एक प्रस्ताव पेश किया गया।

श्रीमती गांधी ने जगजीवनराम से यह प्रस्ताव पेश करने को कहा। उनके मन में जो भी खींचातानी चल रही हो पर उनके भाषण में उसकी कोई झलक दिखायी नहीं दी। उन्होंने कहा कि 1967 के बाद से कुछ राजनीतिक पार्टियाँ सरकार की साख को गिराने के लिए और असन्तोष की हालत पैदा करने के लिए लगातार हमले कर रही थीं, जो जनतन्त्र के लिए एक खतरा बनते जा रहे थे। 1969 का साल हमारे देश के इतिहास में एक यादगार का साल था। उस साल कांग्रेस ने ही नहीं बल्कि पूरे देश ने तोड़-फोड़ मचाने वाली शक्तियों के खिलाफ़ संघर्ष करने के बारे में अन्दरूनी दुविधा को खत्म कर देने का फ़ैसला कर लिया। 1971 के आम चुनाव के बाद विपक्ष ने चार पार्टियों का संयुक्त मोर्चा बनाने की कोशिश की और उसके बाद कई राज्यों में, खास तौर पर गुजरात और बिहार से लूट-मार और आग लगाने की बहुत-सी खबरें आयीं। विधानसभाओं के लिए बाक़ायदा चुने गये सदस्यों को उनका राजनीतिक काम-काज करने से रोकने के लिए संघर्ष समितियाँ बनायी गयीं। सरकार काम-काज ठप्प करके उसे इस्तीफ़ा देने पर मजबूर करने के लिए एक और कोशिश रेलवे हड़ताल के ज़रिये की गयी। देश की ऐसी शोचनीय और असाधारण स्थिति को देखते हुए इमर्जेंसी का

ऐलान करना ज़रूरी हो गया।

कांग्रेसी संसद-सदस्यों ने अपने भाषणों में लगभग यही सारी बातें कहीं। विपक्ष के नेताओं ने भी कुछ भाषण किये। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के ए० के० गोपालन ने कहा :

> अचानक यह घोषणा इसलिए नहीं की गयी कि भीतरी सुरक्षा के लिए सचमुच कोई ख़तरा पैदा हो गया था, बल्कि इलाहाबाद हाईकोर्ट के फ़ैसले की वजह से और गुजरात के चुनावों में कांग्रेस की हार की वजह से की गयी। मेरी पार्टी ने जो यह चेतावनी दी थी कि पिछले तीन साल से देश एक पार्टी की नादिरशाही डिक्टेटरशिप की तरफ़ बढ़ रहा है, वह अचानक इस नयी इमर्जेंसी के ऐलान से सही साबित हो गयी है। इससे संसदीय जनतन्त्र को हटाकर एक पार्टी की डिक्टेटरशिप क़ायम कर दी गयी है जिसमें सारी ताक़त एक ही नेता के हाथ में आ गयी है। स्थिति में अचानक मोड़ और जनतन्त्र से डिक्टेटरशिप में यह अचानक परिवर्तन सत्ता शासक पार्टी के ही हाथ में रखने के मक़सद से संकट से बाहर निकलने का रास्ता खोजने के लिए लाया गया है।...
>
> राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और आनन्द मार्ग की तरफ़, जिन्हें अब ग़ैर-क़ानूनी ठहरा दिया गया था, सरकार का रवैया उसकी सुविधा के हिसाब से समय-समय पर बदलता रहा है। 1965 में भारत-पाक लड़ाई के दौरान उस समय के प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री ने शहर की पहरेदारी के लिए सारी दिल्ली राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को सौंप दी थी।
>
> इमर्जेंसी लागू होने के बाद से सरकार ने जो क़दम उठाये हैं उनसे पता चलता है कि हमले का रुख जनता के खिलाफ़ है। जनता को जो जनतान्त्रिक अधिकार मिले हुए थे उनका नामोनिशान मिटा दिया गया है। कानून की नज़र में भी अब सभी लोग बराबर नहीं रह गये हैं।
>
> मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के हज़ारों कार्यकर्त्ताओं की अंधाधुंध गिरफ़्तारी से अब यह धोखे की टट्टी भी बिलकुल हट गयी है कि इमर्जेंसी को सिर्फ़ दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादी पार्टियों के खिलाफ़ इस्तेमाल किया जा रहा है। जनता के पीछे पुलिस छोड़ दी गयी है। केरल में जेलों के अन्दर भी और बाहर भी कितने ही राजनीतिक नेताओं और कार्यकर्त्ताओं को बुरी तरह पीटा गया है। जनता में दहशत फैलाने की कोशिशों की पूरी तरह निन्दा करना ज़रूरी है।
>
> जो कोई भी धनवान स्वार्थी वर्गों के खिलाफ़ या जनतन्त्र की रक्षा के लिए संघर्ष करने की हिम्मत करता है उसके सर पर गिरफ़्तारी का ख़तरा मँडराता रहता है। ये गिरफ़्तारियाँ सिर्फ़ ट्रेड यूनियनों और जनवादी आन्दोलनों को कुचलने के लिए की जा रही हैं।
>
> जयप्रकाश नारायण की अगुवाई में जो आन्दोलन चल रहा है उसने चुनावों में ताक़त आज़माने की प्रधानमंत्री की चुनौती स्वीकार कर ली थी। लेकिन गुजरात के चुनावों का नतीजा देखने के बाद प्रधानमंत्री के ही हाथ-पाँव फूल गये। सभी राज्यों में गुटबाजी की लड़ाइयों का जो बाज़ार गर्म था वह बढ़ते-बढ़ते अब केन्द्र तक भी पहुँच गया है और यह बात किसी से छिपी नहीं है कि इलाहाबाद वाले फ़ैसले और सुप्रीम कोर्ट के आदेश के बाद खुद कांग्रेसी संसदीय दल में इन्दिरा गांधी के नेतृत्व को ज़बरदस्त चुनौती दी गयी। सत्ता पर कांग्रेस की इज़ारेदारी के लिए और पार्टी में तथा सरकार में इन्दिरा

गांधी की स्थिति के लिए जो ख़तरा पैदा हो गया था, वही जनतन्त्र को कुचल देने की फ़ौरी वजह थी।

इन्दिरा-कांग्रेस से निकाल दिये गये मोहन धारिया ने कहा :

26 जून 1975 का दिन, जिस दिन इमर्जेंसी का ऐलान किया गया था, जिस दिन मेरे साथी, कितने ही राजनीतिक कार्यकर्त्ता और नेताओं को बड़ी बर्बरता से जेल के सींखचों के पीछे बन्द कर दिया गया था, जिस दिन अख़बारों की आज़ादी और नागरिक स्वतन्त्रताओं को नौकरशाहों के हवाले कर दिया गया था, भारतीय जनतन्त्र के लिए और हमारे देश के इतिहास का सबसे मनहूस दिन माना जायेगा।

सबसे पहले शुरू में ही मैं इस भयानक कार्रवाई की निन्दा करना चाहता हूँ। मुझे इसमें ज़रा भी शक नहीं है कि इसकी सारी ज़िम्मेदारी प्रधानमंत्री और उनके कुछ साथियो पर है। मैं पूरे मंत्रिमंडल को दोषी इसलिए नहीं ठहरा रहा हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ कि कैबिनेट को भी इसकी खबर कार्रवाई शुरू कर दिये जाने के बाद दी गयी थी।

बाक़ायदा यह प्रचार किया जा रहा है कि विपक्ष की पार्टियों की वजह से, दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादी ताक़तों की वजह से, उग्रपंथियों की वजह से आर्थिक कार्यक्रम पूरा नहीं किया जा सका। क्या यह बात सच है? आर्थिक कार्यक्रम को पूरा किया जा सकता था; 1971 के चुनाव के वक़्त और 1972 में भी हमारे मैनिफ़ेस्टो में जनता से जो वायदे किये गये थे उन्हें पूरा किया जा सकता था।

जनता का इतना भारी समर्थन पाने के बाद हमें किसने इन्हें पूरा करने से रोका था? हमारे ही पाँव लड़खड़ा गये और हमारे देश में आज जो हालत है वह हमारी ही पैदा की हुई है।

जहाँ तक आर्थिक कार्यक्रमों का सवाल है, यह कहा जा रहा है कि वे प्रधानमंत्री के कार्यक्रम हैं। शासन करनेवाली पार्टी के कार्यक्रम, सरकार के कार्यक्रम—यह बात तो मेरी समझ में आती है। लेकिन आख़िर किसी आदमी को इस तरह आसमान पर चढ़ा देने का क्या मतलब है? यह भी हमारे देश में डिक्टेटरशिप क़ायम करने का तरीक़ा है। हमें इस बात को नहीं भूलना चाहिये।

आज हमारे देश की जो हालत है वह बिल्कुल साफ़ है। चूंकि विपक्ष की पार्टियाँ ज़्यादा गठे हुए ढंग से एक-दूसरे के निकट आ गयी हैं, अब वे सिर्फ़ पुराना गठजोड़ नहीं रह गयी हैं, इसलिए शासक पार्टी का भविष्य अचानक ख़तरे में पड़ गया है। गुजरात के चुनावों ने यह बात अच्छी तरह साबित कर दी है कि पैसे, ताक़त और निजी साख सभी का पूरा ज़ोर लगाने के बाद भी श्रीमती गांधी के लिए अब यह मुमकिन नहीं होगा कि वह जनतान्त्रिक चुनावों के ज़रिये सत्ता हासिल कर सकें या उसे अपने कब्ज़े में रख सकें। जनता को यह यक़ीन दिलाने के लिए कि श्रीमती इन्दिरा गांधी का प्रधानमंत्री बना रहना बिलकुल जरूरी है, बड़ी-बड़ी मीटिंगें और रैलियाँ जुटा-कर वफ़ादारी की शानदार नुमाइशें की गयीं सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले की तनिक भी परवाह किये बिना खुले शब्दों में यह ऐलान किया गया : 'भारत इन्दिरा है, और इन्दिरा ही भारत हैं।' (India is Indira, and Indira is India)

डी० एम० के० के एरा सेज़ियान ने कहा :

मैं ग़द्दार नहीं हूँ, मैं इसी देश का वासी हूँ। पिछले तेरह-चौदह साल से मैं आप ही लोगों में से एक रहा हूँ। इस पक्ष के एक मेम्बर के रूप में अपनी तुच्छ हैसियत के मुताबिक़ मैंने भी सदन की मदद करने की कोशिश की है और अपने संसदीय जनतन्त्र के काम में मदद दी है। मुमकिन है कि अकसर ऐसा हुआ हो कि हमारी राय वही न रही हो जो आपकी थी, लेकिन एक बात के बारे में सभी की राय एक थी कि इस देश में और सदन में जनतन्त्र का काम चलता रहना चाहिये। उस वातावरण को अब क्या हो गया है? ऐसा क्या हो गया है कि हम लोग एक-दूसरे के सामने मोर्चा जमाये हुए हैं, एक-दूसरे से टक्कर ले रहे हैं, कि आप हमें ग़द्दार कह रहे हैं, और हमें उन लोगों के पलड़े में रख रहे हैं जो राष्ट्र-विरोधी हैं? अध्यक्ष महोदय, दो वर्ग बन गये हैं। जो लोग इमर्जेंसी के पक्ष में हैं उन्हें तो आर्थिक कार्यक्रमों का समर्थन करनेवालों के पलड़े में रखा जाता है; जो इमर्जेंसी के पक्ष में नहीं हैं उन्हें आर्थिक कार्यक्रमों के विरोधियों के पलड़े में रखा जाता है। मैं कार्यक्रम के बीस सूत्रों का समर्थन करता हूँ, और अगर आप चाहें तो मैं उनमें एक-दो और जोड़ भी सकता हूँ।...

जब बैंकों का कारोबार सरकार ने अपने हाथ में ले लिया था, जब रजवाड़ों का गुज़ारा बन्द कर दिया गया था, तब हमने पूरी तरह उसका साथ दिया था। उस वक़्त आपका बहुमत नहीं था—लगभग 532 मेम्बरों में से आपके कुल 240 थे—फिर भी हमने आपका तख्ता नहीं उलटा। हमने इन्दिरा गांधी को गिरा देने की बात सोची भी नहीं। हमने पूरी तरह उनका साथ दिया क्योंकि हम विश्वास करते थे कि बैंकों का कारोबार सरकार के हाथों में ले लिये जाने का कार्यक्रम ठीक है, रजवाड़ों का गुज़ारा बन्द कर दिये जाने का कार्यक्रम ठीक है। इस तरह, जब भी कोई अच्छा कार्यक्रम रखा गया, हमने उसका साथ दिया। फिर भी मैं बता दूं कि 1971 में जब मीसा का क़ानून सदन में पेश किया गया तो हमने उसका विरोध किया, हालाँकि हमारा दोस्ताना एका था।...

हो सकता है कि जयप्रकाश ने फ़ौज को भड़काया हो, मुमकिन है कि उन्होंने पुलिस को उकसाया हो और हो सकता है कि उन्होंने जो कुछ कहा उससे देश को नुक़सान पहुँचने का ख़तरा हो। इस बात में मैं पूरी तरह आपके साथ हूँ कि इस तरह के उकसावों की कड़ी सज़ा दी जानी चाहिये। आप उन्हें अदालत के कटघरे में खड़ा करके यह क्यों नहीं कहते कि उन्होंने राजद्रोह का सबसे गम्भीर अपराध किया है? सारी दुनिया के सामने उनको बेनक़ाब कीजिये, सबूत पेश कीजिये, यह बात सोलह आने साबित कर दीजिये कि उन्होंने एक भयानक अपराध किया है। वह कितने ही बड़े क्यों न हों अब तक उन्होंने कितने ही शानदार काम क्यों न किये हों और वह कितने ही लोकप्रिय क्यों न हों, अगर उन्होंने देश के ख़िलाफ़, देश की जनता के ख़िलाफ़ कुछ किया है तो उन्हें अदालत के सामने पेश कीजिये, उनका अपराध साबित कीजिये और जो भी सज़ा हो सके उन्हें दीजिये। आज दिन-भर हम सब लोग बस यही बात कहते रहे हैं। अगर कुछ संगठन ऐसे हैं जो इस देश की जनता के हितों के ख़िलाफ़ काम करते रहे हैं, तो उनके ख़िलाफ़ कड़ी कार्रवाई कीजिये, कड़ी-से-कड़ी कार्रवाई कीजिये, लेकिन क़ानूनी ढंग से, जनतान्त्रिक ढंग से।...आज़ादी

हासिल करना बहुत मुश्किल होता है। अगर वह आपसे छिन जाये, तो उसे दुबारा हासिल करना और भी मुश्किल होता है। डंडे के जोर से काम लेना कुछ बातों के लिए तो सहूलियत पैदा कर सकता है; कभी-कभी ऐसा लगता है कि यह मंजिल तक पहुँचने का छोटा रास्ता है। कभी-कभी तो मुझे ऐसा लगता है कि हम लोग यहाँ तक महसूस करते हैं कि पार्लियामेंट की जरूरत ही क्या है। जो फ़ैसला एक आदमी कर सकता है उसके लिए क्या ज़रूरी है कि 500 आदमी यहाँ आयें? यही हिटलर भी सोचता था। यही कोशिश मुसोलिनी ने भी की थी। लेकिन उनके तरीक़े चल नहीं पाये, क्योंकि जनतन्त्र में अगर सरकार कोई ग़लती करे तो उसकी रोकथाम की जा सकती है, लेकिन अगर डिक्टेटरशिप में सरकार कोई ग़लती करे तो उसकी कोई रोकथाम नहीं की जा सकती, क्योंकि जैसा कि कहा जाता है, संसदीय जनतन्त्र अब भी सरकार चलाने का सबसे कम असंतोषजनक तरीक़ा है।

इसलिए, दूसरे पक्ष से मेरी अपील यह है : मुमकिन है मैं ऐसी अपील आपसे दुबारा न कर सकूँ। हो सकता है कि हममें से सभी को ऐसे ही अवसर फिर न मिल सकें—इस समय देश में जो वातावरण है उसमें शायद वह न मिले। पहले तो हम लोग जो कुछ यहाँ कहते थे वह लिख लिया जाता था और बाहर लोग उसे कम-से-कम पढ़ तो सकते थे। लेकिन आज मैं जो कुछ यहाँ कह रहा हूँ वह यहाँ के मेरे मित्रों के लिए ही है। भले के लिए या बुरे के लिए, भलाई के लिए या बुराई के लिए, हम इस सदन के सदस्य रहे हैं। जनता ने हमें देश में संसदीय जनतन्त्र चलाने के लिए चुना है। भले ही हम बहुत थोड़े हैं, आपका बहुमत है। मैं बहुमत के फ़ैसले के आगे सर झुकाता हूँ, लेकिन अगर वह सभी क़ायदे-क़ानूनों को पूरा करने के बाद, अच्छी तरह बहस करने के बाद, दोनों पक्षों को ध्यान में रखकर लिया गया हो। हो सकता है कि सौ बार में से नब्बे बार हम ग़लत रास्ते पर हों, लेकिन कम-से-कम उन दस मौक़ों का तो आप फ़ायदा उठाइये जब हमने देश की भलाई की कोई बात कही हो।...

बीसवीं शताब्दी के एक सबसे अच्छे संविधान का, एक सबसे उदार संविधान का, वाइमार रिपब्लिक (जर्मनी) के संविधान का जो हाल हुआ उसके बाद अब जनतन्त्र सिर्फ़ संविधान का, सिर्फ़ क़ानून का सवाल नहीं रह गया है। हिटलर ने कोई ऐसा काम नहीं किया जो संविधान के ख़िलाफ़ रहा हो। संविधान में जो क़ायदे-क़ानून बताये गये थे उन्हें भी उसने नहीं तोड़ा। लेकिन उसी संविधान का सहारा लेकर वहाँ डिक्टेटरशिप उभर आयी। यह बात कहकर मैं प्रधानमंत्री को और हिटलर को एक ही पलड़े में नहीं रखना चाहता।...

इसलिए मेरी अपील यह है : अगर संसदीय जनतन्त्र से आपका मतलब उसकी बाहरी शक्ल-सूरत से, संविधान में बताये गये क़ायदे-क़ानूनों से है, तो उससे इस देश में जनतन्त्र नहीं चल सकता। सिर्फ़ बाहरी शक्ल-सूरत से काम नहीं चलने का, यह भी देखना होगा उसके अन्दर असलियत क्या है, उसकी भावना क्या है। विपक्ष को सिर्फ़ बर्दाश्त कर लेने की नहीं बल्कि उसके लिए सम्मान की भावना होनी चाहिए, विपक्ष की राय को सचमुच महत्त्व देने की भावना होनी चाहिए। जब तक हमारे देश में इस बात का मौक़ा नहीं दिया जायेगा कि बिना किसी डर के सरकार की आलोचना

की जा सके, बिना हिंसा के सरकार को बदला जा सके—यही जनतन्त्र का असली निचोड़ है—तब तक उसकी बाहरी शक्ल-सूरत भले ही बनी रहे लेकिन उसका असली सार नहीं मिल सकता। अगर आप समझते हैं कि मैंने हिंसा की कोई कार्रवाई की है तो बेशक मुझे अदालत के सामने ले जाकर खड़ा कर दीजिये और मुझे कड़ी-से-कड़ी सज़ा दीजिये।...

हमें इस बात पर गर्व था कि हमारा जनतन्त्र दुनिया में सबसे बड़ा जनतन्त्र है। जिन दिनों आज़ादी की लड़ाई चल रही थी, जब हम लोग कॉलेजों और स्कूलों में पढ़ते थे, तब हम भी गांधीजी की तरफ़ से लड़े थे; अँग्रेज़ों के ज़माने में पुलिस ने जो लाठियाँ चलायी थीं उनके निशान अब भी बाक़ी हैं। मैंने उस ज़माने में जो बहुत-सी बातें दर्ज कर ली थीं उनमें महात्मा गांधी की लिखी हुई भी एक बात थी। उसमें कहा गया था : "सच्चा स्वराज्य इस तरह नहीं आयेगा कि कुछ लोगों के हाथों में सत्ता आ जाये, बल्कि वह तब आयेगा जब सभी लोग इस लायक हो जायें कि अगर उस सत्ता को बेजा तरीक़े से इस्तेमाल किया जाये तो वे उसका डटकर मुक़ाबला कर सकें। मतलब यह कि स्वराज्य तभी हासिल होगा जब आम जनता को शिक्षा देकर उनमें यह भरोसा पैदा किया जाये कि वह सत्ता को सही रास्ते पर चला सकती है, उसे अपने काबू में रख सकती है।..."

हम सभी लोग इसी स्वराज्य के लिए लड़े थे। हम सभी ने मुसीबतें झेलीं। लेकिन उस दिन की याद कीजिये जब मानव इतिहास के सबसे बहुमूल्य जीवन को, उस आदमी को जिसने इस देश में हमें आज़ादी का विचार दिया था, किसी सिरफिरे ने गोली मारकर ख़त्म कर दिया। उस सबसे गम्भीर संकट की घड़ी में भी जवाहरलाल नेहरू ने बोलने की आज़ादी नहीं छीनी थी। जिस आदमी ने पागलों की तरह यह मान लिया था कि उसने महात्मा की बर्बर हत्या की थी, उस पर भी खुली अदालत में मुकदमा चलाया गया था।

इसलिए राष्ट्रपिता के नाम पर, उस आज़ादी के नाम पर जिसके लिए वह लड़े और मुसीबतें झेलीं, वही क़ानून हर मामले में लागू किया जाना चाहिए। मैं एक-एक से अपील करता हूँ कि अगर आप समझते हैं कि आप सही रास्ते पर चल रहे हैं तो खुशी से आगे बढ़ते रहिये। काश, मैं जो समझता हूँ वह ग़लत हो। जब आपके कोई साथी गिरफ़्तार कर लिए जायें और अगर आपके मन में ज़रा भी शक हो, जैसा कि मेरे मन में है, किसी तरह की आशंका हो, जैसी कि मेरे मन में है, तो जाकर उनसे पूछिये कि उन्हें क्यों गिरफ़्तार किया गया है, उन्हें जेल में क्यों डाल दिया गया है और उन्होंने स्मगलरों के अपराध से भी बड़ा कौन-सा अपराध किया है। बहुत-से स्मगलर अभी तक आज़ाद घूम रहे हैं। उनमें से बहुत-से अभी तक समाज-विरोधी हरकतें कर रहे हैं, लेकिन फिर भी आज़ाद घूम रहे हैं। क़ानून का हाथ उन तक नहीं पहुँचा है। लेकिन दोस्तो, मैं आपसे एक बार फिर हाथ जोड़कर यही कहूँगा, बार-बार यही कहूँगा, कि याद रखिये कि अगर किसी आदमी से उसकी आज़ादी छीन ली जाती है, तो वह दिन दूर नहीं है जब हममें से हर आदमी की आज़ादी छिन जायेगी।

अहमदाबाद के संसद-सदस्य पी० जी० मावलंकर ने कहा :

मेरी भावना और मेरा आरोप यह है कि यह इमर्जेंसी झूठी है, कि सुरक्षा के लिए कोई खतरा नहीं है, कि यह सारा खतरा कोरी कल्पना है, और यह संविधान में दिये गये अधिकारों का सरासर बेजा इस्तेमाल है और यह कि यह संविधान से हासिल किये गये अधिकारों के साथ धोखेबाज़ी है और इसलिए इस सम्मानित सदन को उसे मंजूरी नहीं देनी चाहिये।...

संसद का सबसे पहला काम हर आदमी की आज़ादी को बरक़रार रखना है, और वह अपने इस काम को इस तरह पूरा करती है, या उसे पूरा करना चाहिए, कि वह सख़्ती से इस बात की माँग करे कि जिस सरकार या जिस कैबिनेट को वह बनाती है वह काफ़ी वजहें बताकर यह साबित करे कि जब तक उसे और ज्यादा कानूनी अधिकार नहीं दिये जायेंगे तब तक वह अपना कर्त्तव्य पूरे नहीं कर सकती। लेकिन मंत्री महोदय ने कल प्रस्ताव पेश करते समय, और प्रधानमंत्री ने, आज बहस के दौरान बीच में बोलते हुए, हमें इस बात की काफ़ी वजहें नहीं बतायी हैं कि उन्हें इतने बहुत-से ग़ैर-मामूली अधिकारों की ज़रूरत क्यों है, जिनके खिलाफ़ कोई दाद-फ़रियाद भी नहीं है। इसलिए मेरा कहना है कि संविधान की धारा 352 में राष्ट्रपति को जो अधिकार दिया गया है उस अधिकार के साथ कुछ शर्तें भी जुड़ी हुई हैं और उस अधिकार को तभी इस्तेमाल किया जा सकता है जब उस धारा में बतायी गयी परिस्थितियाँ मौजूद हों।...

मैं ख़ास तौर पर यह सीधा सवाल पूछना चाहता हूँ: 24 जून को तीसरे पहर और 25 जून की शाम के बीच ऐसी कौन-सी बात हुई कि हमारी सरकार को संविधान में इमर्जेंसी का ऐलान करने की जो गुंजाइश रखी गयी है उसका सहारा लेने की ज़रूरत पड़ गयी। यह भीतरी इमर्जेंसी है या एक आदमी की इमर्जेंसी है? यह देश की इमर्जेंसी है या शासक पार्टी की इमर्जेंसी है?...यह क़ानून के शासन के खात्मे की शुरुआत है। उसी दिन से संविधान को बड़ी चालाकी से और लगातार संविधान की हर उस चीज़ को नष्ट कर देने के लिए इस्तेमाल किया गया है जिसकी हम कद्र करते थे, खास तौर पर उसकी मूल अधिकारों की प्रस्तावना को।...

सचमुच मुझे यह कहते हुए बहुत अफ़सोस होता है कि भारत का पहला गणतन्त्र मर चुका है! संविधान की आड़ लेकर डिक्टेटरशिप क़ायम कर दी गयी है, और इसीलिए मैं कहता हूँ कि हमारे पनपते हुए देश और जनतन्त्र के लिए 26 जून का दिन सबसे अभागा और सबसे मनहूस दिन है।

अध्यक्ष महोदय, इमर्जेंसी लागू होने के बाद से जो सत्ताईस या कितने दिन बीते हैं, उन्हें न सिर्फ़ व्यक्ति की आज़ादी पर अंकुश लगाने और उसमें कतरब्योंत करने के लिए बल्कि उसे जड़ से ही ख़त्म कर देने के लिए इस्तेमाल किया गया है। बड़े पैमाने पर गिरफ़्तारियाँ हुई हैं—नेताओं की, संसद के सदस्यों की, विधायकों की; दोनों ही तरफ़ के हमारे साथियों की गिरफ़्तारियाँ हुई हैं, सभी पार्टियों के लोगों की गिरफ़्तारियाँ हुई हैं, और इतना ही नहीं, दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादियों के ख़िलाफ़ लड़ने की आड़ में कितने ही वामपंथियों, सोशलिस्टों और दूसरे प्रगतिशील लोगों को जेल में डाल दिया गया है। अध्यक्ष महोदय, मैं पूछता हूँ कि इनमें से बहुत-से लोगों का अपराध क्या था? यही न कि सच्चाई को उन्होंने जिस तरह देखा उसी तरह बयान

कर दिया।...इसलिए मुझे खुशी है कि इन लोगों को जेल भेज दिया गया है। हम सब लोग जेल चले जायें।...

स्वतन्त्र भारत के शासक हम सभी का जिस शर्मनाक तरीक़े से अपमान कर रहे हैं उस तरह से तो कभी अँग्रेज़ों ने भी भारत का नहीं किया था।...इसलिए मैं समझता हूँ कि इस सदन पर इस बात की खास तौर पर ज़िम्मेदारी आ जाती है कि वह इस बात का पक्का प्रबन्ध करे कि जिन लोगों को नज़रबन्द किया गया है, जिन नेताओं को गिरफ़्तार किया गया है उनके साथ जेल में ठीक बरताव हो।

इसके बाद मैं अखबारों की आज़ादी और मौजूदा सेंसरशिप के सवाल पर आता हूँ। यह सेंसरशिप अनोखी और बे-मिसाल है। अँग्रेज़ों के ज़माने में भी, उनकी हकूमत के बदतरीन ज़माने में भी, जबकि अँग्रेज़ दूसरा महायुद्ध लड़ रहे थे और एक के बाद एक हर लड़ाई में उनकी हार हो रही थी, उन्होंने कभी पराधीन भारत पर भी ऐसी सेंसरशिप नहीं थोपी थी जैसी कि स्वतन्त्र भारत के शासक हमारे ऊपर थोप रहे हैं।...

चूँकि मैं सामाजिक न्याय में विश्वास करता हूँ, समाजवाद में विश्वास रखता हूँ, वैसे मैं किसी पार्टी में नहीं हूँ...इसलिए मैं चाहता हूँ कि फ़ौरन कुछ आर्थिक कार्यक्रम पूरे किये जायें। हम जानना चाहते हैं कि सरकार को इन कार्यक्रमों को पूरा करने से किसने रोका? अन्त में मैं जगजीवनराम से पूछना चाहता हूँ, कि आज हम जहाँ पहुँच गये हैं वहाँ से वापस लौट आने का कोई रास्ता है? या हम एक पार्टी की हुकूमत और उसके बाद एक आदमी की हुकूमत की तरफ़ आगे बढ़ रहे हैं? क्या यह खुली डिक्टेटरशिप की शुरुआत नहीं है? क्या जनतन्त्र के ढाँचे के टूटे हुए टुकड़ों से सरकार ईंट-ईंट जोड़कर एक निरंकुश शासन की इमारत नहीं खड़ी कर रही है?...

श्रीनगर के शमीम अहमद शमीम ने कहा:

जनतन्त्र आपके लिए बहुत तकलीफ़देह तरीक़ा है। लोग आपके खिलाफ़ बातें करते हैं, लोग आपका विरोध करते हैं, लेकिन जनतन्त्र की बुनियादी खूबी यही है कि आखिर में जीत बहुमत की ही होती है। लेकिन ऐसा लगता है कि आजकल जिन लोगों का बहुमत है उन्होंने यह ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है कि अल्पमत का रोड़ा भी रास्ते में क्यों रहने दें। यह सदन विपक्ष के कई नाटक देख चुका है। लेकिन यह सदन इस बात का भी गवाह है कि यहाँ से उसी चीज़ को मंज़ूरी दी गयी है जिसके साथ बहुमत था। इसकी क्या वजह है कि विपक्ष ने जो कुछ किया उसके बावजूद, वही क़ानून आज आपको काँटे की तरह खटकने लगा है? एक बेतुकी दलील यह दी जाती है कि इमर्जेंसी की वजह से लोग ज़्यादा मुस्तैदी से काम करने लगे हैं, सरकारी नौकर 10 बजे दफ़्तर आने लगे हैं, रेलें ठीक वक़्त से चलने लगी हैं, वग़ैरह-वग़ैरह। इसमें यह मतलब छिपा हुआ है कि यह संसदीय रास्ता, जिस पर हम पिछले सत्ताईस साल से चलते आये हैं, हमारा वक़्त खराब करने के अलावा और कुछ नहीं करता; इसमें यह मतलब भी छिपा हुआ है कि यह 'जिस्म के एक बेकार हिस्से' की तरह है; इसमें यह मतलब भी छिपा हुआ है कि जिस दिन से आपने इमर्जेंसी लागू की है उस दिन से हर चीज़ में बेहद सुधार हो गया है। इस दलील में तुक क्या है? आप कहते हैं कि हमें संसदीय जनतन्त्र

का यह ढोंग नहीं चाहिए, इससे क़ौम की तरक़्क़ी में रुकावट पड़ती है।

और फिर अखबारों की आज़ादी का सवाल ले लीजिये। आपने अखबारों पर सेंसरशिप लागू कर दी है। वे सूरमा जो अखबारों की आज़ादी और देश की आज़ादी के लिए लड़ चुके हैं आज सेंसरशिप को सही साबित करने की कोशिश में यह कह रहे हैं कि फलाँ अफ़वाह को फैलाने दिया गया होता तो मुल्क का पूरा ढाँचा ढह गया होता। इन्दिरा गांधी ने कल अपनी तक़रीर में कहा था कि उनको यह बताया गया था कि आर० एस० एस० के दफ़्तर से जो तलवार बरामद हुई थी वह लकड़ी की थी और इसके बाद उन्होंने कहा था कि 'या तो आपके पास तलवार है या तलवार नहीं है।' यही बात अखबारों की आज़ादी पर भी लागू होती है। या तो अखबारों की आज़ादी होती है या फिर नहीं होती। ऐसा नहीं हो सकता कि सिर्फ़ ऐसे अखबार हों जो बस वही बातें छापें जो आप चाहते हैं। जनतन्त्र का असली निचोड़ यह है कि दोनों तरफ़ की बातें जनता के सामने रख दी जायें और जनता की समझ पर भरोसा रखकर उसे इस बात का फ़ैसला करने का मौक़ा दिया जाये कि क्या सही है और क्या ग़लत। आप जानते हैं कि 1971 में अखबार आपके बारे में क्या लिखते थे; फिर भी जनता ने आपको वोट दिया। अखबार जो कुछ लिखते थे उसकी बुनियाद पर उन्होंने फ़ैसला नहीं किया। 'झूठ और सच' से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। फिर ऐसा क्या हो गया है कि आज विपक्ष की तरफ़ से फैलायी जाने वाली किसी अफ़वाह के महज़ शुबहे से पूरी सरकार हिल जाती है? अगर इस क़ानून को, क़ानून में कुछ हेर-फेर करने के इस सुझाव को नेकनीयती के साथ रखा गया होता तो मैं इसका साथ देता। लेकिन यह बदनीयती के साथ रखा गया है। आपने इस मुल्क की जनता के खिलाफ़ जंग का ऐलान कर दिया है। आप यह क़ानून महज़ जजों और अदालतों को बदनाम करने के लिए बनवाना चाहते हैं और सारी दुनिया जानती है कि इसके पीछे असली वजह क्या है। आपको अदालतों पर कोई भरोसा नहीं है; आपको जजों पर कोई भरोसा नहीं है।...

मेरा मोरारजी देसाई से बहुत-सी बातों पर मतभेद है; वह इस सदन में जो कुछ कहते हैं उसका एक लफ़्ज़ भी मुझे अच्छा नहीं लगता, यह सदन गवाह है कि जिस दिन उन्होंने इस सदन में विपक्ष की तरफ़ से बोलने की ज़िम्मेदारी संभाली थी, उसी दिन मैंने खड़े होकर कहा था, 'उन्हें मेरी तरफ़ से बोलने का कोई हक़ नहीं है।' मैं कह चुका हूँ कि मेरे दिल में जयप्रकाश के लिए जो भी इज़्ज़त थी, जब उन्होंने जनसंघ के इजलास की सदारत की तो मैंने उनकी इस बात को ठीक नहीं समझा। जिस वक़्त से उन्होंने जनसंघ के इजलास में शिरकत की और बिहार की विधानसभा तोड़ देने की माँग की उसके बाद से मैंने किसी बात पर उनका साथ नहीं दिया। लेकिन इतना मैं आपको बता दूँ कि मैं इस बात को कभी नहीं मानूँगा कि वह स्मगलर हैं। फिर उन्हें किसलिए गिरफ़्तार किया गया है। मोरारजी के बारे में ऐसा लगता है कि उनकी वजह से मुल्क की सलामती के लिए खतरा पैदा हो गया था; वह स्मगलर थे। इसीलिए उनको गिरफ़्तार कर लिया गया है।...

आज आपने इमर्जेंसी की आड़ में किया क्या है? इमर्जेंसी के बारे में मैं यह मानता हूँ कि हालात ऐसे थे कि सचमुच कोई सख्त क़दम उठाना ज़रूरी हो गया था। लेकिन आपने ये क़दम उठाये किसके खिलाफ़ हैं? आपने

ये क़दम पूरी क़ौम के खिलाफ़ उठाये हैं। आपने मेरे खिलाफ़ सख्त क़दम उठाये हैं। आपने उन लोगों के खिलाफ़ सख्त क़दम उठाये हैं जो आपके साथ हैं। आपने उन लोगों की आज़ादी को हड़प लिया है जो क़ानून के बताये हुए रास्ते पर चलते हैं। यह कहाँ का इन्साफ़ है कि आप किसी भी आदमी के हक़ महज़ इसलिए छीन लें कि उसने कोई ऐसा काम किया है जो आपको पसन्द नहीं है। पार्लियामेंट के उन बड़े-बड़े सूरमाओं के सर, जो बड़े-बड़े हमले करते रहते थे, 1971 के चुनाव में क़लम कर दिये गये थे। उनके सर जनता ने क़लम किये थे। आज भी अगर आपने देश के सामने जाकर कहा होता कि ये लोग पार्लियामेंट को काम नहीं करने देते तो आप देखते कि जनता एक बार फिर आपको बहुमत दिला देती और इन लोगों को ठुकरा देती। लेकिन आपने ऐसा नहीं किया।

मुमकिन है कि यह पार्लियामेंट इस मुल्क की आखिरी पार्लियामेंट हो। इसका सबूत श्रीमती गांधी का वह बयान है जिसमें यह कहा गया है कि इमर्जेंसी से पहले वाले आम हालात अब फिर कभी लौटकर आनेवाले नहीं हैं। उन्होंने उन हालात को आज़ादी का बेजा इस्तेमाल कहा है। जिस मुल्क में इस बात का फ़ैसला एक आदमी के हाथ में हो कि मामूल क्या है और आज़ादी का बेजा इस्तेमाल क्या है और आज़ादी क्या है, उस मुल्क के फाटक पर समझ लीजिये डिक्टेटरशिप की तख्ती लगी है। श्रीमती गांधी डिक्टेटर नहीं हैं लेकिन उन्होंने डिक्टेटरशिप के रास्ते पर आगे बढ़ना शुरू कर दिया है। डिक्टेटरशिप की सबसे बड़ी खूबी यह होती है कि शुरू-शुरू में बहुत सोच-समझकर और बहुत उम्दा उसूल ढाले जाते हैं। उन्हें बहुत खूबसूरत अलफ़ाज़ में ढाला जाता है। धीरे-धीरे लोगों को उनमें मज़ा आने लगता है। उनको उनमें सुकून मिलता है और तब लोग यह कहने लगते हैं कि यही जम्हूरियत के उसूल हैं। ऐसा यहीं नहीं होता। रूस में, जर्मनी में, उन दूसरे मुल्कों में जहाँ डिक्टेटरशिप है, आम तौर पर लोग जम्हूरियत के गुण गाते हैं और उसके नाम की माला जपते हैं। मैं श्रीमती गांधी को एक बात बताना चाहता हूँ। वह बहुत साफ़-गो औरत हैं। वह जो कुछ भी कहना चाहती हैं बहुत साफ़ तौर पर कहती हैं। मुझे ऐसा लगता है कि पार्लियामेंटरी तरीक़े पर से उनका भरोसा उठ गया है। बहुत अच्छा हो अगर वह साफ़-साफ़ यह कह दें कि आज इस मुल्क में इस तरीक़े के लिए कोई जगह नहीं रह गयी है। इसकी वजहें कुछ भी हों, मैं उनमें नहीं जाना चाहता।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने श्रीमती इन्दिरा गांधी का साथ दिया। उसके संसद-सदस्य इन्द्रजीत गुप्ता ने कहा कि इमर्जेंसी का ऐलान बिलकुल सही था और हर आदमी ने उसका समर्थन किया था। लेकिन सरकार को चाहिये कि वह सारे देश को उन सारी बातों की जानकारी दे जिनकी वजह से उसे यह क़दम उठाने पर मजबूर होना पड़ा। उन्होंने कहा कि कुछ पार्टियों ने जो मोर्चा बनाया था वह जयप्रकाश नारायण की अगुवाई में पिछले डेढ़ साल से कई राज्यों में ऐसे तरीक़ों से सत्ता पर कब्ज़ा करने की कोशिश कर रहा था जो पूरी तरह संविधान के अनुकूल नहीं थे। सच तो यह है कि इन सारी घटनाओं का एक अन्तर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि के साथ बहुत सीधा सम्बन्ध है। अमरीका अपनी चाल चल रहा है।

उन्होंने कहा, प्रस्ताव पेश करनेवाले ने बहुत ठीक कहा था कि कुछ अखबार

सत्ता पर कब्ज़ा करने की इस साज़िश में बहुत आगे बढ़कर हिस्सा ले रहे हैं। अगर इज़ारेदारों के अख़बारों को खुली छूट दी गयी होती तो अब तक बीस-पच्चीस दिन के अन्दर उन्होंने देश में तबाही मचा दी होती। सेंसरशिप दक्षिणपंथी ताक़तों को कमज़ोर करने और जनतांत्रिक ताक़तों के हाथ मज़बूत करने के लिए लगायी गयी थी।...

लोकसभा में बहस के दौरान बीच में बोलते हुए श्रीमती गांधी ने जनसंघ और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर 'कानाफूसी की मुहिम' चलाने का आरोप लगाया और यह शिकायत की कि सरकार के खिलाफ़ जो 'झूठी बातें' फैलायी गयी थीं उनके खिलाफ़ अख़बारों ने कुछ नहीं कहा। उन्होंने कहा कि अब भी इसके बारे में 'कानाफूसी की एक बहुत बड़ी मुहिम' चल रही है कि 'कौन अपने घर में क़ैद कर दिया गया है, किसने भूख-हड़ताल कर रखी है और कौन मर गया है।' इस बात पर ज़ोर देते हुए कि विपक्ष की पार्टियाँ 'हिंसा के साथ बँधी हुई' हैं, उन्होंने अख़बारों में छपी हुई ख़बरों का हवाला दिया कि जयप्रकाश ने 1967 में कहा था कि वह 'फ़ौजी डिक्टेटरशिप की बात सोच रहे हैं' और उन्होंने सुझाव दिया था कि उस साल चुनाव की वजह से जो राजनीतिक अस्थिरता पैदा हो गयी थी उसे देखते हुए 'राष्ट्र को चाहिए कि वह इस खाली जगहों को भरने के लिए फ़ौज की मदद का सहारा ले।'

आगे चलकर उन्होंने कहा कि गुजरात में विधायकों के बच्चों को मार देने की धमकी देकर उन्हें विधानसभा से इस्तीफ़ा देने पर मजबूर किया गया और जिस वक़्त कांग्रेस का एक विधायक अस्पताल में पड़ा था तो छात्रों ने उसे उठाकर खिड़की के बाहर फेंक देने की धमकी दी थी। 'आनन्द मार्ग जैसे अपराधी संगठनों के मुस्टंडे' अब भी लोगों की हत्या करने की साज़िशें कर रहे थे। जब पश्चिम बंगाल में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की सरकार थी तब लोग सूरज डूबने के बाद सड़क पर निकल नहीं सकते थे। उन्होंने अपना भाषण जारी रखते हुए कहा, "अब मनमानी आज़ादी और राजनीति के नाम पर कुछ भी करने की छूट के वे दिन फिर कभी नहीं लौटने दिये जायेंगे।

"जनतन्त्र का तक़ाज़ा है कि हर आदमी अपने ऊपर क़ाबू रखे। सरकार की ज़िम्मेदारी है कि वह विपक्ष को काम करने का पूरा मौक़ा दे, बोलने की आज़ादी और मीटिंगें करने की आज़ादी दे। लेकिन विपक्ष की भी ज़िम्मेदारी है कि वह जनतन्त्र को नष्ट करने के लिए या 'सरकार का काम-काज ठप्प कर देने' के लिए इसका फ़ायदा न उठाये। 'सरकार का काम-काज ठप्प कर देने' के शब्द मेरे नहीं हैं; ये शब्द यहाँ नई दिल्ली की और दूसरी जगहों की मीटिंगों में खुलेआम इस्तेमाल किये गये थे।..."

श्रीमती गांधी की एक बात के जवाब में भारतीय लोकदल के संसद-सदस्य एच० एम० पटेल ने कहा कि जब अख़बारों पर पूरी सेंसरशिप लागू कर दी गयी है तो 'कानाफूसी की मुहिम' और अफ़वाहों के अलावा और उम्मीद ही क्या की जा सकती है।

राज्यसभा ने 22 जुलाई को 136 के खिलाफ़ 33 वोटों से इमर्जेंसी के ऐलान को अपनी मंज़ूरी दे दी। वोट ले लिये जाने के बाद सोशलिस्ट नेता नारायण गणेश गोरे ने विपक्ष की ओर से एक बयान पढ़ा जिसमें ऐलान किया गया था कि संसद के काम करने के नियमों को कुछ समय के लिए स्थगित कर दिये जाने के खिलाफ़ और संसद की कार्रवाई की रिपोर्टों पर भी अख़बारों में सेंसरशिप लागू करने के लिए सरकार के फ़ैसले के खिलाफ़ विरोध प्रकट करने के लिए विपक्ष के सदस्य सदन की बाक़ी बैठक में भाग नहीं लेंगे।

अगले दिन लोकसभा में भी इमर्जेंसी के ऐलान को 336 के खिलाफ़ 69 वोटों

से मंज़ूरी मिल जाने के बाद विपक्ष के ज़्यादातर सदस्य सदन छोड़कर चले आये; लेकिन भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और कई छोटी-छोटी पार्टियों ने, जिनमें मुस्लिम लीग, रिपब्लिकन पार्टी, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी और अन्ना द्रविड़ मुन्नेत्र कज़गम शामिल थीं, बायकाट का साथ नहीं दिया।

दोनों सदनों ने संविधान (39वाँ संशोधन) बिल भी पास कर दिया, जिसमें यह कहा गया था कि इमर्जेंसी की घोषणा के लिए राष्ट्रपति के बताये हुए कारणों को किसी अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकी। 28-29 जुलाई को जब पन्द्रह राज्यों की विधानसभाओं ने अपनी विशेष बैठकों में इस बिल को मंज़ूरी दे दी, तो उसे 1 अगस्त को राष्ट्रपति की भी स्वीकृति मिल गयी।

इमर्जेंसी के ऐलान की मंज़ूरी लेना क़ानूनन ज़रूरी था। लेकिन श्रीमती गांधी तो इलाहाबाद हाईकोर्ट के फ़ैसले की वजह से हरदम परेशान रहती थीं।

उनके घर पर जो 'इमर्जेंसी कौंसिल' बैठती थी वह कई बड़े-बड़े वकीलों से सलाह-मशविरा करने के बाद इस नतीजे पर पहुँची थी कि क़ानून की जो शक्ल उस वक़्त थी उसमें कोई भी जज उस फ़ैसले से अलग कोई फ़ैसला दे ही नहीं सकता था जो जस्टिस सिनहा ने दिया था।

सबसे पहले तो इस बात का इन्तज़ाम करना था कि इस फ़ैसले का उनके भविष्य पर कोई बुरा असर न पड़े। श्रीमती गांधी के वकीलों ने, और पैरवी करने से इंकार करने से पहले पालकीवाला ने भी उनसे कहा था कि सुप्रीम कोर्ट उन्हें चुनाव में भ्रष्टाचार का सहारा लेने के इल्ज़ाम से बरी कर देगा। उन्हें यह भी तसल्ली थी कि सुप्रीम कोर्ट के चीफ़ जस्टिस ए० एन० रे थे जिनको श्रीमती गांधी ने उनकी बारी आने से पहले ही इस पद पर नियुक्त कर दिया था। उनसे पहले जिन तीन जजों की बारी थी उनमें से एक ने, जस्टिस हेगड़े ने, उस वक़्त कहा था कि श्रीमती गांधी इस बात के लिए रास्ता साफ़ कर रही हैं कि उनके खिलाफ़ जो चुनाव याचिका दायर की गयी थी उसमें अगर फ़ैसला उनके ख़िलाफ़ हो तो अपील करने का मौक़ा रहे।

फिर भी वह खतरे की कोई गुंजाइश बाक़ी नहीं रहने देना चाहती थीं। गोखले ने इलाहाबाद वाले फ़ैसले को रद्द कर देने के लिए एक बिल तैयार किया और उसका मसविदा सिद्धार्थशंकर रे और रजनी पटेल को दिखाया। रजनी पटेल बम्बई के एक 'प्रगतिशील' थे जो सबसे बढ़िया स्काच ह्विस्की 'रायल सैल्यूट' के अलावा और कुछ नहीं पीते थे। दोनों श्रीमती गांधी के बहुत क़रीब थे और जब भी उन्हें किसी सलाह-मशविरे के लिए उनकी ज़रूरत पड़ती थी तो वे हवाई जहाज़ से उड़कर उनके पास पहुँच जाते थे। लेकिन संजय को ये लोग बिलकुल पसन्द नहीं थे और वह उनके ख़िलाफ़ कार्रवाई करने के लिए मौक़े की ताक में था।

एक वक़्त इस 'प्रगतिशील' ग्रुप ने यह क़ानून बनवा देने का सुझाव रखा था कि अगर सज़ा के तौर पर किसी संसद-सदस्य की पार्लियामेंट की सदस्यता ख़त्म कर दी जाये तो उसके साथ यह भी शर्त रहनी चाहिए कि उस पर संसद-सदस्य न बन सकने की पाबन्दी उस संसद की ज़िन्दगी तक ही रहे। इरादा यह था कि अगर सुप्रीम कोर्ट श्रीमती गांधी की अपील रद्द कर दे तो प्रधानमंत्री संसद को भंग कराकर फिर चुनाव करा सकती थीं। लेकिन सब लोग ऐसा नहीं चाहते थे। संजय चुनाव कराने के सख्त ख़िलाफ़ था। यूनुस का कहना था कि पाँच साल तक चुनाव की बात सोचनी भी नहीं चाहिए।

सरकार ने इलाहाबाद हाईकोर्ट के फ़ैसले को उसके सुनाये जाने की तारीख से ही रद्द करा देने के लिए लोकसभा में 4 जुलाई को एक बिल पेश किया। चुनाव

क़ानून में कई हेर-फेर करने के सुझाव रखे गये थे।

पहला यह कि सरकारी कर्मचारियों पर अपने सरकारी काम के सिलसिले में चुनाव की मुहिम के दौरान राजनीतिक उम्मीदवारों की मदद न करने की पाबन्दी अब नहीं रहेगी। इसका मतलब था कि श्रीमती गांधी को अपनी चुनाव की मीटिंगों के लिए मंच बनवाने और लाउडस्पीकर तथा बिजली लगाने के लिए सरकारी नौकरों की मदद लेने के अपराध से बरी कर दिया जायेगा।

दूसरा यह कि सरकारी गज़ट में छप जाना केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के किसी भी कर्मचारी की नियुक्ति, इस्तीफ़े, नौकरी खत्म किये जाने या नौकरी से हटा दिये जाने की तारीख का पक्का सबूत माना जायेगा। इसका मक़सद उस दूसरे अपराध को रद्द कर देना था जिसके लिए श्रीमती गांधी को सज़ा दी गयी थी—यह कि एक सरकारी नौकर यशपाल कपूर ने सरकार को अपना इस्तीफ़ा भेजने से पहले श्रीमती गांधी के चुनाव अभियान के मैनेजर की हैसियत से काम किया था।

तीसरा यह कि चुनाव के खर्चे का हिसाब लगाने के लिए और 'दूसरे कामों के लिए' नामज़दगी की तारीख शुरुआत मानी जायेगी। ऐसा इसलिए किया गया था कि एक ओर तो सुप्रीम कोर्ट यह फ़ैसला न दे सके कि श्रीमती गांधी ने अपने चुनाव के लिए 35,000 रुपये की सीमा से ज्यादा पैसा खर्च किया था और दूसरी तरफ़ यह कि चुनाव लड़ने का ऐलान करने की तारीख़ का कोई महत्त्व नहीं है।

पी० टी० आई० और यू० एन० आई० दोनों ही ने पूरा बिल और उसका महत्त्व समझाते हुए खबर भेजी थी। लेकिन सेंसर के दफ़्तर के आदेश पर उन्होंने खबर को वापस ले लिया और दूसरी खबर भेजी जिसमें सिर्फ़ संक्षेप में बिल का निचोड़ दिया गया था और उसमें श्रीमती गांधी का कोई ज़िक्र नहीं था।

यह बिल एक संशोधन के साथ 5 अगस्त को लोकसभा में पास हो गया। इसमें यह भी कहा गया था कि चुनाव में भ्रष्टाचार के तरीक़े अपनाने की बुनियाद पर अगर किसी की सदस्यता खत्म कर दी जाये तो उसका मामला राष्ट्रपति के पास भेजा जाये और राष्ट्रपति चुनाव कमिश्नर से सलाह करके यह फ़ैसला करे कि सदस्य न रह सकने की यह पाबन्दी लगायी जाये या नहीं और अगर लगायी जाये तो कितने अरसे के लिए। इसमें एक कसर रह गयी थी। बाद में सरकार ने संविधान में एक संशोधन करवा दिया कि राष्ट्रपति के लिए मंत्रिमण्डल की सलाह को मानना 'लाज़िमी' है। उनके लिए और कोई रास्ता ही नहीं था।

सदस्य न रह सकने की पाबन्दी के बारे में तो क़ानून बनवाना ज़रूरी था लेकिन इससे भी ज़रूरी वह क़ानून था जिसमें प्रधानमंत्री के चुनाव के बारे में किसी झगड़े पर विचार करने का अधिकार चुनाव कमीशन से छीन लिया गया था। यह जताने के लिए कि यह विचार सरकार के दिमाग़ की उपज नहीं है, श्रीमती गांधी और उनके सलाहकारों ने कांग्रेस के एक मामूली संसद-सदस्य से यह मसला उठवाया। सदस्य न रह सकने की पाबन्दी वाले बिल पर बहस के दौरान उन्होंने कहा कि जिन पदों पर चुनाव जीतकर आनेवाला आदमी ही रह सकता है, उनमें से कुछ अदालतों के दायरे से बाहर निकाल लिये जाने चाहिए।

गोखले ने इस विचार का स्वागत किया, चौबीस घंटे के अन्दर उसे क़ानूनी शक्ल दे दी, और 7 अगस्त को संविधान (40वाँ संशोधन) बिल पेश किया, जिसमें राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और लोकसभा के स्पीकर के चुनाव से सम्बन्ध रखनेवाले मामले निबटाने के लिए किसी भी अदालत के अधिकार-क्षेत्र से बाहर एक नयी संस्था की स्थापना की गयी। इसके पीछे मक़सद सिर्फ़ इस बात का बिलकुल पक्का

बन्दोबस्त करना था कि श्रीमती गांधी पर किसी चुनाव याचिका का कोई असर न पड़ने पाये। दूसरों के नाम तो सिर्फ़ इसलिए जोड़ दिये गये थे कि सीधे-सीधे यह न लगे क यह बिल सिर्फ़ श्रीमती गांधी के बचाव के लिए पेश किया गया है। कुछ मुख्यमंत्रियों ने नई दिल्ली टेलीफोन करके यह जानने की कोशिश की कि क्या उनको भी इस मामले में प्रधानमंत्री जैसी छूट मिल सकती है। उनके मामले में विचार करने का समय नहीं था।

कांग्रेस के ज़्यादातर संसद-सदस्य हमेशा की तरह निश्चिन्त बैठे रहे और उन्होंने इस बिल के बारे में कोई एतराज नहीं किया। मन-ही-मन उन्हें यह बात ग़लत भी लग रही हो पर उन्होंने बाहर से ऐसा ज़ाहिर नहीं होने दिया। लेकिन कुछ लोगों ने इसके खिलाफ़ आवाज़ उठायी। बचे-खुचे विपक्ष की ओर से मोहन धारिया ने ऐलान किया, "यह क़ानून इलाहाबाद हाईकोर्ट के फ़ैसले से बच निकलने के लिए बनवाया जा रहा है। इसे पास करवाने के लिए आखिर इतनी हड़बड़ी क्यों की जा रही है? क्या इस-लिए कि प्रधानमंत्री के मामले की सुनवायी 11 अगस्त को होने वाली है।"

सचमुच यह बिल बहुत हड़बड़ी में 7 अगस्त को 11 बजे लोकसभा में पेश किया गया और सारी आपत्तियों को रद्द करके और यह पाबन्दी हटवाकर कि कोई भी बिल सदन में पेश किये जाने से कम-से-कम एक ख़ास समय पहले सदस्यों के पास भेज दिया जाना चाहिए, सरकार की तरफ़ से उसे 11 बजकर 8 मिनट पर विचार के लिए पेश कर दिया गया। अलग-अलग एक-एक धारा पर बहस और नियम के अनुसार तीन बार उसके पढ़ दिये जाने के बाद 1 बजकर 50 मिनट पर यह बिल पास भी हो गया। राज्यसभा ने अगले दिन एक घंटे के अन्दर उसे मंजूरी दे दी। उसके खिलाफ़ कोई बोला ही नहीं।

जिन राज्यों की विधानसभाओं में कांग्रेस का बहुमत था उनकी बैठक 8 अगस्त को बुलायी गयी और अगले दिन इस बिल पर उनकी भी मंजूरी की मुहर लगवा ली गयी और 10 अगस्त को राष्ट्रपति ने उसे अपनी स्वीकृति दे दी—जिस दिन सुप्रीम कोर्ट में श्रीमती गांधी की अपील की सुनवायी होने वाली थी उससे एक दिन पहले।

लेकिन इससे पहले कि 40वें संशोधन बिल को (सरकारी हिसाब से वह 39वाँ था) क़ानून की हैसियत मिल पाती, कांग्रेस के कुछ संसद-सदस्यों ने एक और कमी पूरी कर दी। उन्हें यह शक हुआ कि विपक्ष का कोई आदमी कहीं इस बिल के खिलाफ़ स्टे-ऑर्डर न ले ले। इसलिए उन्होंने 9 अगस्त को राज्यसभा की बैठक करायी और संविधान (41वाँ संशोधन) बिल पास करा दिया, जिसमें कहा गया था कि जो आदमी राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री रह चुका हो उसके खिलाफ़ किसी अदालत में फ़ौजदारी क़ानून के तहत कोई मुक़दमा नहीं दायर किया जा सकता। राष्ट्रपति का नाम तो यों ही लगेहाथ जोड़ दिया गया था क्योंकि संविधान की धारा 361 में यह बात पहले ही से मौजूद थी। बिल का मक़सद दरअसल प्रधानमंत्री का बचाव करना था। जब सुप्रीम कोर्ट में उनके खिलाफ़ दायर की गयी चुनाव याचिका की सुनवायी शुरू हो गयी तो इस बिल को चुपचाप खटाई में डाल दिया गया; मक़सद पूरा हो गया था।

अब चूंकि सारे ज़रूरी क़ानून बनवाये जा चुके थे, इसलिए सारा ध्यान सुप्रीम कोर्ट में प्रधानमंत्री की अपील की ओर दिया जाने लगा। सबसे पहले तो उसके बारे में 'ज़रूरत से ज़्यादा और प्रतिकूल' प्रचार को रोकना था। चीफ़ प्रेस सेंसर हैरी डी० पेनहा ने अख़बारों, समाचार एजेंसियों और दूसरे लोगों को ख़ास तौर पर यह आदेश दिया कि वे अदालत की कारंवाई की कोई रिपोर्ट पहले उनके दफ़्तर से मंजूर करवायें

बिना न छापें। सभी अखबारों ने चूं किये बिना ही यह आदेश मान लिया; सिर्फ़ एक-पेजी दैनिक ईवनिंग व्यू ने नहीं माना और बाद में उस पर पाबन्दी लगा दी गयी।

सुप्रीम कोर्ट की कारंवाई की खबर सैंसर करने के आदेश पर चीफ़ जस्टिस ने भी कोई एतराज़ नहीं किया; सुप्रीम कोर्ट के पूरे इतिहास में इससे पहले ऐसा कभी नहीं हुआ था। सच तो यह है कि वह इस बात के पक्ष में थे कि कारंवाई में भाग लेने या उसे सुनने के लिए जो वकील आयें उनकी पहले जाँच-पड़ताल कर ली जाये। इसके ख़िलाफ़ इतने जोर की आवाज उठायी गयी कि—अदालत का बायकाट कर देने तक की धमकी दी गयी—उन्होंने फिर इसे लागू नहीं किया।

चीफ़ जस्टिस की अगुवाई में पाँच जजों की बेंच 11 अगस्त को अपील की सुनवायी करने के लिए बैठी।

शान्तिभूषण ने, जो बहुत चुस्त और मुस्तैद वकील थे और जिन्होंने इलाहाबाद में राजनारायण की तरफ़ से पैरवी की थी, सुप्रीम कोर्ट में भी यह काम सँभाला। श्रीमती गांधी की पैरवी कर रहे थे अशोक सेन जो पहले क़ानूनमंत्री रह चुके थे। सेन ने अदालत से संविधान के 39वें संशोधन के तहत इलाहाबाद हाईकोर्ट के फ़ैसले को उलट देने के लिए कहा। लेकिन शान्तिभूषण ने दलील यह दी कि अदालत पहले यह फ़ैसला कर दे कि 39वाँ संशोधन संविधान के मुताबिक ठीक भी है या नहीं। कुछ लोगों को क़ानून से परे रखकर 39वें संशोधन ने ऊंचे पद की बुनियाद पर आदमी-आदमी के बीच फ़र्क पैदा कर दिया है, उसने शासन के लिए क़ानून की पाबन्दी के विचार को ही नष्ट कर दिया है, और संसद का यह ऐलान कि हाईकोर्ट के फ़ैसले का कोई मतलब नहीं रह गया है, सरकार, संसद और अदालतों के अधिकारों को एक-दूसरे से अलग रखने के सिद्धान्त के खिलाफ़ है। उन्होंने यह दलील भी दी कि हाल ही में संसद की जो बैठक हुई थी उसकी सारी कारंवाइयाँ ग़ैर-क़ानूनी थीं, क्योंकि कितने ही मेम्बरों को ग़ैर-कानूनी तौर पर गिरफ़्तार कर लिया गया था और संसद की कारंवाई में हिस्सा लेने का मौक़ा नहीं दिया गया था।

एटॉर्नी-जनरल नीरेन डे ने, जो सरकार का इतना खुला समर्थन करते थे कि सरकार खुद मुश्किल में पड़ जाती थी, यह दलील दी कि चुनाव के झगड़ों पर विचार करना अदालतों का बुनियादी काम नहीं है। उन्होंने यह भी बताया कि पश्चिम के ज्यादातर जनतान्त्रिक देशों में चुनाव से सम्बन्ध रखनेवाले सारे मामले उनकी संसद के अधिकार-क्षेत्र में आते हैं। उन्होंने बहस करते हुए कहा कि 1973 में केशवानन्द भारती बनाम केरल सरकार वाले मुक़दमे में सुप्रीम कोर्ट ने यह फ़ैसला दिया था कि संसद को संविधान में संशोधन करने या उसे बदलने का अधिकार ज़रूर है लेकिन इस तरह कि उसका 'बुनियादी ढांचा या रूपरेखा' बदले या नष्ट न हो जाये।

चीफ़ जस्टिस रे ने ऐलान किया कि संविधान के संशोधन के बारे में फ़ैसला देने से पहले अदालत श्रीमती गांधी की अपील के सिलसिले में तथ्यों और दलीलों पर जिरह सुनेगी।

सुप्रीम कोर्ट की जिरह के बारे में श्रीमती गांधी को कोई चिन्ता नहीं थी। संविधान के संशोधनों में अगर कोई कसर रह भी गयी होगी तो उनके वकील उसका बन्दोबस्त कर लेंगे।

उन्हें चिन्ता थी उन बातों की जो पड़ोसी देश बंगलादेश में उस समय हो रही थीं। 14 अगस्त को शेख मुजीबुर्रहमान और उनके परिवार के ज़्यादातर लोगों की बड़ी बेरहमी से हत्या कर दी गयी थी। न 'रॉ' को और न ही किसी दूसरी गुप्तचर सेवा को इसकी रत्ती-भर भी भनक मिल सकी थी। एक बार फिर उन्होंने

श्रीमती गांधी को निराश किया था। दरअसल उसी दिन से संजय ने 'रॉ' को 'ससुराली रिश्तेदारों का संघ' कहना शुरू कर दिया था। 'रॉ' के चोटी के अफ़सरों के बहुत-से रिश्तेदार उस संगठन में थे। श्रीमती गांधी ने 'रॉ' के कर्त्ता-धर्त्ता रामजी काओ से बंगलादेश के बारे में पहले से कोई खुफ़िया रिपोर्ट न मिल सकने पर अपनी नाराज़गी ज़ाहिर की। उन्हें परेशानी यह थी कि अगर उनके जासूस बंगलादेश के बारे में उनके काम नहीं आये तो कल भारत के बारे में भी यही हो सकता है।

सचमुच मुजीब की मौत से श्रीमती गांधी को बहुत गहरा धक्का लगा, ख़ास तौर पर इसलिए कि दोनों ही नेता अपना निरंकुश शासन क़ायम करने के एक जैसे रास्तों पर चल रहे थे। जब मुजीब ने संविधान को रद्द करके सारी ताक़त अपने हाथ में ले ली थी, तो उस वक़्त जयप्रकाश नारायण ने 11 फ़रवरी को दिल्ली में विपक्ष की सभी पार्टियों की एक मीटिंग की थी। उन्होंने कहा था कि शायद यह उस चीज़ का रिहर्सल है जिसका सामना कल उन्हें भारत में करना पड़ेगा, और उन्हें इसके लिए तैयार रहना चाहिए। अशोक मेहता ने जयप्रकाश नारायण की दलील को यह कहकर रद्द कर दिया था कि भारत में ऐसा नहीं हो सकता। लेकिन मोरारजी ने यह नहीं माना कि ऐसा नहीं हो सकता और कहा कि अगर ऐसा हुआ तो मैं गुजरात में आन्दोलन छेड़ दूंगा। चरणसिंह ने कहा 'वह जो भी करना चाहती हैं करें' और साथ ही यह भी कहा कि 'वह कर ही क्या सकती हैं?' राजनारायण ने कहा, 'कम-से-कम हम दोनों को जेल में तो डाल ही सकती हैं।'

जयप्रकाश नारायण ने बहस के बीच में बोलते हुए कहा कि वह लोग इस बात पर गम्भीरता से विचार नहीं कर रहे हैं। उनको पूरी संजीदगी से इस पर विचार करना चाहिए कि ऐसा हो सकता है। वह देख रहे थे कि नागरिक स्वतन्त्रताएं ख़त्म हो जायेंगी; कई पार्टियों वाली व्यवस्था ख़त्म हो जायेगी। उन्होंने कहा कि विपक्ष की पार्टियों को बाहरी इमर्जेंसी के जारी रहने के ख़िलाफ़ आन्दोलन चलाना चाहिये।

हर आदमी चाहता था कि 'कुछ' किया जाये। क्या किया जाये यह कोई नहीं जानता था, लेकिन किसी ने जयप्रकाश की बात पर गम्भीरता से ध्यान नहीं दिया। बाद में रोहतक जेल में, जहाँ इमर्जेंसी के दौरान विपक्ष के ज़्यादातर नेता क़ैद किये गये थे, कुछ लोगों को जयप्रकाश की यह चेतावनी याद आयी। कितनी सच्ची भविष्यवाणी थी!

लेकिन इसका कोई सबूत नहीं मिलता था कि श्रीमती गांधी ने मुजीब की हत्या से कोई सबक़ लिया हो। लोग दबी ज़बान से इस बात की चर्चा करते थे और भारत की और बंगलादेश की घटनाओं में समानता देखते थे। इशारा यह था कि भारत में भी ऐसा हो सकता है। वजह कुछ भी रही हो लेकिन श्रीमती गांधी के चारों ओर सुरक्षा का बन्दोबस्त और पक्का कर दिया गया। सफ़दरजंग रोड के उस हिस्से पर तो, जहाँ उनकी कोठी थी, इमर्जेंसी लगने के बाद से ही आवाजाही बन्द कर दी गयी थी, लेकिन अब उनकी कोठी से मिले हुए बँगले के सामने से जानेवाली सड़क अकबर रोड पर भी आवाजाही कम कर दी गयी थी।

किसी ने तो यह सुझाव तक दिया कि 15 अगस्त को राष्ट्रीय झण्डा फहराने लाल क़िले श्रीमती गांधी न जायें, जैसा कि 1947 में भारत के आज़ाद होने के बाद से हमेशा होता आया था। लेकिन उन्होंने इस सुझाव को ठुकरा दिया। उन्होंने पब्लिक के सामने आना लगभग बन्द ही कर रखा था लेकिन अगर वह 15 अगस्त को नहीं गयीं तो लोगों को यक़ीन हो जायेगा कि वह ख़तरे का सामना करने से डरती हैं—और उनके नाम के साथ यह कमज़ोरी पहले कभी नहीं जोड़ी गयी थी।

फिर भी 15 अगस्त को सुबह उनकी कोठी से लाल क़िले तक के दस किलोमीटर लम्बे रास्ते पर पुलिस का भारी पहरा था। दरियागंज में रहनेवालों से सड़क की तरफ़ खुलनेवाली खिड़कियाँ बन्द रखने को कहा गया था। सड़क के दोनों तरफ़ के मकानों की छतों पर पुलिस तैनात कर दी गयी थी। बिलकुल वही नक़्शा था जैसा द डे ऑफ़ द जैकाल में था, जिसमें यह बयान किया गया था कि पुलिस ने किस तरह जनरल द गाल की हत्या की साज़िश को नाकाम किया था। कुछ ही दिन पहले 8 अगस्त को धजाराम सांगवान ने, जो पहले फ़ौज में कप्तान रह चुके थे, मुझे जेल में एक साज़िश के बारे में बताया था। वह एक टेलिस्कोपिक राइफ़ल लिये हुए पकड़ा गया था।[1]

श्रीमती गांधी जिस समय बन्द मोटर में लाल क़िले जा रही थीं, उस समय उन्हें इसका पता नहीं था। उनके दिमाग़ में मुजीब की हत्या के अलावा कोई दूसरी बात नहीं थी, जिसकी वजह से उनके बोलने के ढंग पर भी असर पड़ा। उन्होंने विस्तार के साथ बताया कि उन्होंने इमर्जेंसी क्यों लगायी थी। उन्होंने कहा कि इमर्जेंसी लगाकर उन्हें बहुत खुशी हुई हो, ऐसी बात नहीं थी। वह बहुत दिन तक टालती रहीं लेकिन बाद में उन्हें हालात ने मजबूर कर दिया। एक असाधारण हालत पैदा हो गयी थी और देश को फिर से ठीक रास्ते पर लाने के लिए असाधारण क़दम उठाना ज़रूरी हो गया था। उन्होंने अपने बाप जवाहरलाल नेहरू के ये शब्द दोहराये : "आज़ादी खतरे में है। अपनी पूरी ताक़त लगाकर उसकी हिफ़ाज़त करो।"

ये शब्द उनको निशाना बनाकर भी कहे जा सकते थे। उन्होंने विपक्ष की पार्टियों को आन्दोलन का सहारा लेने के लिए बहुत बुरा-भला कहा। केन्द्रीय सरकार के खिलाफ़ बिहार और गुजरात जैसा आन्दोलन दूसरे राज्यों में भी छेड़ने का नारा दिया गया था; लड़कों से पढ़ाई छोड़ देने को कहा गया था। कई तरीक़ों से अनुशासनहीनता फैलायी जा रही थी और कई दल, जिनमें से कुछ तो जनतन्त्र और अहिंसा में विश्वास भी नहीं रखते थे, इन आन्दोलनों को चलाने के लिए मिलकर एक हो गये थे।

मानो यह जानते हुए कि ज्यादतियाँ की गयी थीं, उन्होंने कहा कि मैंने मुख्यमंत्रियों को लिख दिया है कि क़ानूनों को लागू करने में किसी तरह की बेइंसाफ़ी और ज़ोर-ज़बर्दस्ती न की जाये। क़ानून के रास्ते पर चलनेवाले शहरियों की हर तरह से मदद की जाये। पुलिस के और दूसरे अफ़सरों को जनता के साथ दोस्ती का बरताव करना चाहिए। अगर कोई ग़लतियाँ हुई हों तो उन्हें बताया जाना चाहिए कि काम करने का सही तरीक़ा क्या है। उन्होंने कहा कि जिन लोगों को गिरफ़्तार किया गया है उनकी देखभाल अच्छी तरह की जायेगी।

'देखभाल' वाली बात ठीक नहीं थी। जेल में रहन-सहन की हालत बहुत भयानक थी। सरकार इस बात पर तुली हुई थी कि जो लोग नज़रबन्द किये गये थे उनके साथ आम अपराधियों से भी बदतर सलूक किया जाये। शुरू-शुरू के दिनों में जब क़ैदियों से मुलाक़ात और दूसरी सुविधाओं के बारे में क़ायदे बनाये जा रहे थे तो ओम मेहता ने जान-बूझकर उन्हें ज़्यादा-से-ज़्यादा सख्त बनाया था और गृह मंत्रालय में अफ़सरों की एक मीटिंग में यह बात कही भी थी। सबसे पहली बात तो यह कि पुलिस के किसी अफ़सर की मौजूदगी में दो बिलकुल सगे रिश्तेदारों के साथ महीने में सिर्फ़ एक बार आधे घंटे की मुलाक़ात की इजाज़त थी। हर क़ैदी को रोज़ खर्चे के लिए ढाई रुपये मिलते थे। शुरू में नज़रबन्द क़ैदियों को रेडियो भी नहीं दिये गये थे; कुछ को तो

1. इसके पूरे ब्यौरे के लिए मेरी शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली पुस्तक 'जेल में' को प्रतीक्षा कीजिये।

सेंसर किये हुए अखबार तक नहीं दिये जाते थे।

चूँकि गिरफ़्तार किये जानेवालों की तादाद लगभग एक लाख तक पहुँच चुकी थी, इसलिए जेल खचाखच भरे हुए थे। दिल्ली के तिहाड़ जेल में, जहाँ 1,200 क़ैदियों को रखने का इन्तज़ाम है, 4,000 से ज़्यादा क़ैदी थे। जो थोड़ी-बहुत सुविधाएँ थीं वे इतने लोगों के लिए काफ़ी नहीं थीं। कई जेलों में गन्दी नाली का पानी ऊपर आकर बहता रहता था; नल में पानी सिर्फ़ कुछ ही घंटों के लिए आता था।

लन्दन में भारत के हाई कमिश्नर बी० के० नेहरू ने लन्दन के टाइम्स अखबार में एक खत छपवाया था जिसमें भारत के जेलों की हालत बयान की गयी थी। उसमें कहा गया था : "सरकारी अधिकारी नज़रबन्द क़ैदियों का जितना ध्यान रखते हैं और उनकी जितनी अच्छी देखभाल करते हैं वह बिलकुल वैसी ही है जैसी माँ अपने बच्चों की करती है। उन्हें रहने के लिए अच्छी जगह दी जाती है, अच्छा खाना दिया जाता है और उनके साथ अच्छा सलूक किया जाता है।" बंसीलाल ने कहा कि क़ैदियों का वज़न बढ़ गया है।

जेलों की हालत तो बुरी थी ही, लेकिन अफ़सरों का रवैया उससे भी बुरा था। उनसे खास तौर पर कह दिया गया था कि वे राजनीतिक क़ैदियों के साथ 'आम अपराधियों से बेहतर' सलूक न करें। कहीं-कहीं यातनाएँ देने के लिए बाक़ायदा अलग कमरे थे। दिल्ली के लाल क़िले में एक बहुत आलीशान कमरे में विदेशों से मँगाकर तरह-तरह की नयी-से-नयी मशीनें लगायी गयी थीं, जहाँ लोगों को सच-सच बात बता देने पर 'मजबूर' किया जाता था। क़ैदी के चेहरे पर घंटों तेज़ रोशनी पड़ती रहती थी और पीछे से तरह-तरह की आवाज़ें आती रहती थीं, ताकि कुछ देर में वह टूट जाये। खुफ़िया पुलिस के अफ़सर बहुत देर तक उससे सवाल-जवाब करते थे और उसकी हर बात और तमाम हरकतें टेप कर ली जाती थीं।

जेलों में कुछ क़ैदी मर भी गये, जिनमें से एक ट्रेड यूनियन नेता भैरव भारती भी थे, जो पहले मध्य प्रदेश विधानसभा के मेम्बर भी रह चुके थे। सभी राजनीतिक पार्टियों के चौदह मेम्बरों ने श्रीमती गांधी को लिखा : "जेल में एक महत्त्वपूर्ण कार्य-कर्त्ता की मौत के बारे में अधिकारियों ने चुपचाप मामले को दबा देने की जो नीति अपना रखी है, उसे देखते हुए हम महसूस करते हैं कि सरकार को उनकी मौत की वजह के बारे में अदालती जाँच करवानी चाहिए।"

जेलों की बुरी हालत और क़ैदियों के साथ किये जानेवाले बुरे सलूक की खबरें विदेशों के अखबारों में छपने लगीं। अमनेस्टी इण्टरनेशनल के चेयरमैन ईवान मारिस ने कहा, "श्रीमती गांधी की सरकार तो मानव अधिकारों के सिद्धान्त की परवाह चिली, ताइवान, सोवियत संघ और कोरिया जैसे कई दूसरे पुलिस राज्यों से भी कम करती है।"

जयप्रकाश और दूसरे राजनीतिक लोगों के नाम जारी की गयी अपील को नाटकीय रूप देने के लिए लन्दन में महात्मा गांधी की मूर्ति के चरणों में एक ज्योति जलायी गयी। लन्दन के टाइम्स अखबार में 15 अगस्त को छः कॉलम का एक विज्ञापन 3,000 पौंड खर्च करके छपवाया गया जिसमें लिखा गया था : "आज भारत का स्वाधीनता दिवस है। भारतीय जनतन्त्र की ज्योति बुझने न पाये।" तमाम यूरोप के लगभग 500 संसद-सदस्यों और बुद्धिजीवियों ने, जिनमें कुछ नोबुल पुरस्कार विजेता भी थे, उस पर दस्तखत किये थे। प्रसिद्ध वायलिन-वादक यहूदी मेनहुइन ने उस पर इसलिए दस्तखत नहीं किये थे कि उस समय वह श्रीमती गांधी से पत्र-व्यवहार कर रहे थे।

श्रीमती गांधी बुद्धिजीवियों की इस ललकार पर इतना झुंझलायीं कि उन्होंने

नेहरू के स्थापित किये हुए अखबार नेशनल हेराल्ड के सम्पादक चलपति राव से एक जवाब तैयार कराके उन्हें भिजवा दिया। यह अलग बात है कि वह उस पर दस्तखत करने के लिए बहुत बुद्धिजीवियों को नहीं जुटा पायीं। बहुत से ऐसे लोगों को, जिन्होंने उस पर दस्तखत करने से इंकार किया था, इसके लिए मुसीबतें झेलनी पड़ीं। रोमिल्ला थापर, जो जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी में इतिहास पढ़ाती हैं, उन लोगों में से थीं जिन्होंने इंकार किया था। नतीजा यह हुआ कि उनका पिछले दस साल का इनकम-टैक्स का हिसाब फिर से खुलवाया गया।

सच तो यह है कि इनकम-टैक्स की फिर से जाँच करवाना और सी० बी० आई० की इनकम-टैक्स शाखा की तरफ़ से व्यापारियों और अफ़सरों के घरों पर छापे डलवाना उन लोगों को ठीक करने के लिए, जो उसका हुक्म नहीं मानते थे, सरकार का आम तरीक़ा हो गया था। नामी और होनहार इंजीनियर मनतोश सोंधी को, जिन्हें बोकारो के इस्पात के कारखाने में एक बहुत ऊँचे पद से उद्योग मंत्रालय में लाया गया था, संजय गांधी के कहने पर सी० बी० आई० वालों ने बहुत परेशान किया था। सोंधी का क़सूर बस इतना था कि संसद में एक सवाल का जवाब तैयार करने के लिए कोई मामूली-सी जानकारी हासिल करने के लिए कुछ अफ़सरों को मारुति के कारखाने भेज दिया था। उस ज़माने में टी० ए० पई उद्योगमंत्री थे। उन्होंने मंत्रिमण्डल से इस्तीफ़ा देने की धमकी दी तब कहीं जाकर सोंधी की जान बची।

वित्त मंत्रालय के दो टुकड़ों में बंट जाने के बाद से इनकम-टैक्स के बक़ाये का हौआ खड़ा करके लोगों को सताने की वारदातें और भी बढ़ गयीं। इनकम-टैक्स, एक्साइज और बैंकों के कारोबार का एक अलग विभाग बना दिया गया था और प्रणव मुखर्जी के हवाले कर दिया गया था। वह अब संजय के एक दरबारी बन गये थे और उनके हर हुक्म को पूरा करने के लिए हरदम तैयार रहते थे।

वित्त मंत्रालय के दो टुकड़े कर दिये जाने से ढीले-ढाले वित्तमंत्री सी० सुब्रह्मण्यम को दिल का दौरा पड़ गया। जिस वक़्त दक्षिणी भारत के सबसे बड़े कांग्रेसी नेता के० कामराज ने कांग्रेस के पुराने घाघ नेताओं का साथ दिया था, जिन्होंने बाद में संगठन कांग्रेस बना ली थी, उस समय सी० सुब्रह्मण्यम ने पूरी तरह श्रीमती गांधी का साथ दिया था। सुब्रह्मण्यम ने श्रीमती गांधी को बताया था कि मारुति के कारखाने की योजना जिस तरह बनायी गयी है उस तरह वह कारखाना कभी नहीं बन पायेगा। उनके सामने ही उन्होंने घंटों संजय को यह समझाने की कोशिश की थी कि वह इस योजना में बिड़ला को अपने साथ ले ले, जिनका खुद अपना मोटर बनाने का कारखाना भी था। संजय को सुब्रह्मण्यम की ये खरी-खरी बातें अच्छी नहीं लगी थीं और इस वजह से वह उनसे चिढ़ा बैठा था, हालाँकि बहुत बाद में जाकर संजय ने उनकी इसी सलाह पर अमल किया और बिड़ला को अपने कारखाने में साथ ले लिया।

इमर्जेंसी को लागू हुए अभी दो महीने से कुछ ही ज्यादा वक़्त गुज़रा था। लेकिन इतने ही दिन में श्रीमती गांधी की देवताओं की तरह पूजा कराने का सिल-सिला शुरू हो गया था। सारे देश में जगह-जगह उनकी तसवीरें लगायी गयीं और उनका बीस-सूत्री कार्यक्रम मंत्र की तरह जपा जाने लगा। सभी बड़ी-बड़ी यूनिवर्सिटियों में 'इन्दिरा स्टडी सर्किल' संगठित किये गये और इन्दिरा ब्रिगेड में वालंटियरों की भरती तेज़ हो गयी।

मशहूर चित्रकार हुसैन ने श्रीमती गांधी का देवी के रूप में जो चित्र बनाया था वह सरकारी तौर पर सारे देश में दिखाया जा रहा था। इमर्जेंसी की देवी श्रीमती गांधी को दुर्गा की तरह बाघ पर नहीं बल्कि एक बिफरे हुए दहाड़ते शेर पर सवार

दिखाया गया था।

कांग्रेस की सरकारी पत्रिका **सोशलिस्ट इण्डिया** में श्रीमती गांधी के बारे में पहले से अधिक लेख छपने लगे। एक लेख का शीर्षक था : "हमें श्रीमती गांधी पर पूरा भरोसा और विश्वास क्यों रखना चाहिए।" उनकी प्रशस्ति में लेख सभी जगह छपने लगे। विदेशी पत्र-पत्रिकाओं में जो लेख छपते थे उनकी नक़लें बनवाकर दूसरे पत्र-पत्रिकाओं में छापने के लिए बड़े पैमाने पर भेजी जाती थीं। कनाडा की एक पत्रिका में प्रकाशित लेख का शीर्षक था : "प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी की समझदारी भारत की समझदारी है।"

श्रीमती गांधी ने खुद एक हिन्दी पत्रिका के लिए एक लेख लिखा था—'मेरी सफलता का रहस्य'। इसमें उन्होंने बताया था कि बचपन में एक बार जब उनकी अध्यापिका ने उनसे पूछा था कि तुम बड़ी होकर क्या बनना चाहोगी तो उन्होंने जवाब दिया था कि 'मैं जोन ऑफ़ आर्क बनना चाहती हूँ।' इतिहास यह बात तो लिखेगा ही कि आखिरकार वह क्या बन गयीं।

ज्यादातर पत्रिकाएँ, खास तौर पर छोटे प्रकाशन सरकारी विज्ञापनों के सहारे चलने की वजह से इसी रास्ते पर लग गये; अखबार भी या बिलकुल सरकारी गज़ट बन गये या श्रीमती गांधी की चापलूसी करने लगे। लेकिन इण्डियन एक्सप्रेस जैसे कुछ दैनिक अखबारों ने सेंसरशिप का मुक़ाबला करने की कोशिश की तो सरकार ने उन पर तरह-तरह से दबाव डालना शुरू कर दिया। इस अखबार के मालिक बहादुर मारवाड़ी रामनाथ गोएनका को धमकी दी गयी कि अगर वह चुपचाप घुटने नहीं टेक देंगे तो उनके बेटे और उनकी बहू को मीसा में पकड़वा दिया जायेगा और उनके सारे अखबार नीलाम करवा दिये जायेंगे। गोएनका को झंझट से बचने के लिए इण्डियन एक्सप्रेस का बोर्ड ऑफ़ डायरेक्टर्स नये सिरे से बनाकर उसमें ज्यादातर सरकार के लोग रखने पड़े। के० के० बिड़ला, जो संजय गांधी के बहुत निकट थे, उसके चेयरमैन बना दिये गये।

स्टेट्समैन को इस बात की सज़ा दी गयी कि वह अपने पहले पेज पर श्रीमती गांधी की काफ़ी तस्वीरें नहीं छापता था। इस अखबार को आदेश दिया गया कि वह अपने सारे पेजों के प्रूफ़ मंजूरी के लिए सेंसर के पास भेजा करे। ये प्रूफ़ जान-बूझकर सुबह आठ बजे भेजे जाते थे ताकि अखबार वक़्त पर न छप सके और उसकी बिक्री गिरती जाये।

बहरहाल, अखबार कोई इतनी बड़ी समस्या नहीं थे। उनका गला पूरी तरह घोंट दिया गया था। संजय का ध्यान ग़ैर-क़ानूनी इमारतों को ढाने या दिल्ली को 'सुन्दर बनाने' के कार्यक्रम पर लगा हुआ था। राजधानी में फ़ुटपाथों पर दूकानें लगानेवालों पर पाबन्दी लगा दी गयी थी। जामा मस्जिद के पास के छोटे-छोटे खोखे तक ढा दिये गये थे। इन दूकानदारों से, जो बीसियों बरस से वहाँ अपना कारोबार चला रहे थे, कहा गया कि वे शहर के बाहर अपनी दूकानें लगायें—लेकिन वहाँ गाहक कहाँ से आते।

जामा मस्जिद से हटाये गये दूकानदार इन्दर मोहन के पास गये। वह सूचना और प्रसार मंत्रालय में काम करते थे और पहले भी कई बार उनकी मदद कर चुके थे। इन्दर को बताया गया कि सारा फ़ैसला संजय के हाथ में है। इन्दर संजय के पास गये लेकिन उन्होंने टका-सा जवाब दे दिया। उसी दिन रात को ग्यारह पुलिसवाले इन्दर के घर में घुस आये और उन्हें मार-पीटकर घसीटते हुए बाहर ले गये। जब इन्दर ने अपनी गिरफ़्तारी की वजह पूछी तो उनको बताया गया कि इसका हुक्म 'बहुत ऊपर से' आया है। बाद में उनको फिर बहुत बुरी तरह पीटा गया और तीन दिन बाद

एक वकील ने उन्हें छुड़वाया।

संजय साबित करना चाहता था कि कोई भी उसके रास्ते में न आये और यह बात उसने बहुत कामयाबी के साथ साबित कर दी। मकान और दूकानें ढाये जाने का जो थोड़ा-बहुत विरोध पहले हो भी रहा था वह भी बन्द हो गया। लेकिन जब अप्रैल 1976 में तुर्कमान गेट के इलाक़े में घर गिराने का सिलसिला शुरू हुआ तो एक बार फिर बहुत बड़े पैमाने पर विरोध शुरू हुआ।

करनाल, रोहतक, भिवानी और गुड़गाँव में ग़रीब लोगों की झुग्गी-झोंपड़ियाँ ढा दी गयीं और उन्हें रहने के लिए कोई दूसरी जगह भी नहीं दी गयी। अकेले लखनऊ में कोई दस हज़ार इमारतें गिरायी गयी होंगी; मंदिरों-मस्जिदों तक को नहीं बख्शा गया।

शायद जामा-मस्जिद के आस-पास घर और दूकानें गिराये जाने पर जो गुस्सा था उसी के सिलसिले में मस्जिद के इमाम ने नमाज़ के वक्त अपने मुरीदों से कहा कि वे नादिरशाही हुकूमत के फ़रमानों को न मानें। 15 अगस्त के दिन जब श्रीमती गांधी लाल क़िले के फाटक पर से भाषण दे रही थीं, उसी वक्त लाल क़िले के ठीक सामने मस्जिद के ऊपर लाउडस्पीकर लगवाकर इमाम भी तक़रीर करके उनसे टक्कर ले रहे थे।

इमर्जेंसी लागू होने के आठ हफ़्ते बाद अगस्त के महीने में संजय ने अपनी ताक़त आज़माना शुरू किया। उसने सोचा कि अब मुझमें खुद इतनी ताक़त है कि लोगों को उसे तस्लीम करना चाहिए और उसने कई बातों के बारे में अपने विचार लोगों के सामने रख देना ही बेहतर समझा।

नई दिल्ली की एक पत्रिका सर्ज के साथ एक इण्टरव्यू के दौरान उसने कहा कि वह उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के खिलाफ़ है; अर्थतन्त्र पर किसी तरह के नियन्त्रण के ख़िलाफ़ है। वह इस बात के पक्ष में था कि टैक्सों में कमी की जाये (जो बाद में हुई) और देश की आर्थिक हालत मजबूत बनाने के लिए प्राइवेट सेक्टर को ज़्यादा ज़िम्मेदारी सौंपी जाये। उसके दक्षिणपंथी विचारों को सभी जानते थे और उसे कम्युनिस्टों से नफ़रत थी। उसने कम्युनिस्ट पार्टी को बहुत बुरा-भला कहा और ग़ैर-कम्युनिस्ट पार्टियाँ भी जिस तरह काम कर रही थीं उसमें भी बहुत-सी खराबियाँ गिनायीं। उसने कहा, "मैं नहीं समझता कि इनसे ज़्यादा मालदार और भ्रष्ट लोग आपको कहीं और मिल सकते हैं।"

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की तरफ़ झुकाव रखनेवाले मंत्री चन्द्रजीत यादव ने श्रीमती गांधी से अगले दिन कहा कि पूरी कांग्रेस पार्टी में इस बात पर बहुत खलबली मची हुई है। ताज्जुब की बात तो यह है कि इसके साथ ही उन्होंने यह सुझाव दिया कि संजय को खुलकर राजनीति में हिस्सा लेना चाहिए और यह भी कहा कि श्रीमती गांधी को उसे पार्टी के अन्दर कोई काम सौंप देना चाहिए। श्रीमती गांधी ने कहा कि उसे राजनीति से कोई दिलचस्पी नहीं है। उन्होंने उसकी इण्टरव्यू में कही गयी बातों की सफ़ाई देते हुए कहा कि 'वह काम करता है, सिर्फ़ सोचता नहीं है।'

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को बहुत बुरा लगा। इधर पार्टी तो सिर्फ़ इसलिए श्रीमती गांधी का भरपूर साथ दे रही थी कि उनका झुकाव सोवियत गुट की तरफ़ था, और उधर उनका बेटा न सिर्फ़ दक्षिणपंथियों का रवैया अपना रहा था बल्कि कम्युनिस्टों पर भी हमले कर रहा था। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के विरोध का श्रीमती गांधी पर असर हुआ। समाचार ने संजय के इण्टरव्यू का जो पूरा ब्यौरा अखबारों को भेजा था वह वापस ले लिया गया। सिर्फ़ इण्डियन एक्सप्रेस ने उसे छापा था।

संजय ने 28 अगस्त को इण्डियन एक्सप्रेस को अपनी सफ़ाई देते हुए एक बयान भेजा जिसमें कहा गया था, "एक पूरी पार्टी के खिलाफ़ सभी पर लागू होने वाली ऐसी बात कहने का मेरा कोई इरादा नहीं था। जाहिर है कि स्वतन्त्र पार्टी, जनसंघ और भारतीय लोकदल में इससे भी ज़्यादा मालदार लोग हैं और उनमें इससे भी ज़्यादा भ्रष्टाचार है। मुझे गुस्सा इसलिए आया कि मैंने सुना है कि कुछ लोग जो अपने को मार्क्सवादी समझते हैं और यह जताते हैं कि वे दूसरों से बढ़कर हैं, वे बहुत पैसेवाले हैं और ईमानदार भी नहीं हैं।"

उस दिन भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और संजय के बीच ठन गयी। श्रीमती गांधी जानती थीं कि संजय को भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से चिढ़ है, लेकिन वह अकसर उससे कहा करती थीं कि अगर वे लोग 'हमारी शर्तों पर हमारे साथ रहना चाहते हैं, तो इसमें हमारा नुक़सान ही क्या है?'

उनको असली चिन्ता जयप्रकाश की वजह से थी जो भारत की नैतिक अंतरात्मा बन चुके थे और महात्मा गांधी के आदर्शों के सच्चे उत्तराधिकारी बन गये थे। उन्हें गांधीजी के आखिरी शिष्य और जयप्रकाश के राजनीतिक गुरु आचार्य विनोबा भावे का ध्यान आया, जो उस समय 81 वर्ष के थे। वह 7 सितम्बर को नागपुर के पास पवनार में उनसे मिलने गयीं। बाबा ने जयप्रकाश की गिरफ़्तारी पर चिन्ता प्रकट की और कहा कि उन्हें बिना किसी शर्त के रिहा कर दिया जाये। अपना एक साल का मौन-व्रत बीच ही में भंग करके उन्होंने श्रीमती गांधी से कहा कि उनके जीवन की आख़िरी इच्छा यही है कि उनके और जयप्रकाश के बीच मेल हो जाये।

आचार्य विनोवा भावे ने खुलेआम इसके अलावा कुछ नहीं कहा कि इमर्जेंसी 'अनुशासन पर्व' है। सरकार ने उनकी इस राय को नारा बना लिया; यहाँ तक कि डाक-टिकटों पर लगायी जाने वाली मुहर में भी यही नारा लिखा जाने लगा।

वह सरकार की चाल समझ गये और उन्होंने पवनार में आचार्यों की सभा बुलायी। उन्होंने उनसे देश की मौजूदा स्थिति पर निष्पक्ष भाव से सोच-विचार करके 'सुख और शान्ति' लाने के लिए एक 'अनुशासन' की योजना तैयार करने को कहा।

सचमुच बड़े कमाल की बात थी कि भाँति-भाँति के लोगों के इस समुदाय में, जिनमें वाइस-चांसलर, जज, समाजसेवक और लेखक सभी थे, सबकी राय एक थी। तीन दिन की बातचीत के बाद 1,000 शब्दों का जो बयान जारी किया गया उसमें हर बात साफ़-साफ़ और दोटूक ढंग से कही गयी थी और बीच का रास्ता अपनाया गया था। इसमें अब तक जो कुछ हुआ था उसके लिए किसी को दोष नहीं दिया गया था। एक तरफ़ तो उसमें इमर्जेंसी लागू होने के बाद से उद्योग, अर्थतन्त्र और शिक्षा के क्षेत्रों में जो कई 'रचनात्मक' सुधार हुए थे उनकी सराहना की गयी थी। दूसरी ओर इसी बयान में यह भी कहा गया था कि अहिंसा और सर्वधर्म समभावना में विश्वास रखनेवाले बहुत-से सामाजिक और राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं का अनिश्चित काल के लिए नज़रबन्द कर दिया जाना देश के कल्याण के लिए कोई अच्छी बात नहीं थी।

आचार्यों के इस बयान पर श्रीमती गांधी इतना झल्लायी कि श्रीमन्नारायण को, जो आचार्य विनोवा भावे का संदेश लेकर दिल्ली आये थे, एक हफ़्ते तक मिलने का कोई वक़्त ही नहीं दिया गया। विनोवा ने श्रीमती गांधी से कोई झगड़ा नहीं किया बल्कि उन्होंने 'मौजूदा झगड़े का जल्द ही कोई हल' निकालने के लिए आचार्यों और बुद्धिजीवियों की जो एक और बड़ी मीटिंग बुलायी थी उसको रद्द कर दिया।

कुछ बुद्धिजीवियों ने विरोध प्रकट करने का एक और रास्ता अपनाया। वे राजघाट में गांधीजी की समाधि पर 2 अक्टूबर को गांधी जयन्ती के दिन जमा हुए

और वहाँ उन्होंने इमर्जेंसी के खिलाफ़ नारे लगाये। विरोध प्रकट करनेवालों में 85 वर्ष के बूढ़े गांधीवादी जे० बी० कृपलानी भी थे। उन्हें पहले तो गिरफ़्तार कर लिया गया था, लेकिन बाद में छोड़ दिया गया। केरल में गांधी जयन्ती के दिन दूर-दूर के गाँवों तक में पोस्टर लगाये गये जिनमें जनता से कहा गया था कि 'अन्याय और अत्याचार के सामने वह कायरता न दिखाये।'

उस दिन एक घटना ने श्रीमती गांधी को दहला दिया। एक आदमी, जिसके पास चाकू था, सिक्योरिटी वालों की नज़र से बचकर राजघाट की प्रार्थना-सभा में उनके पास आकर बैठ गया। रेल उपमंत्री हट्टे-कट्टे शफ़ी क़ुरेशी ने उसे पकड़ लिया। उन्होंने इसकी जाँच का हुक्म दे दिया, लेकिन साथ ही उनकी रक्षा के लिए सिक्योरिटी के बन्दोबस्त में अब 2,000 आदमी तैनात कर दिये गये।

गांधी जयन्ती के दिन कामराज की मृत्यु भारत के लिए सबसे बड़ा धक्का था।

इमर्जेंसी से कामराज को सबसे ज़्यादा दुःख पहुंचा था। वह कई बार कह चुके थे कि श्रीमती गांधी डिक्टेटर बनने के रास्ते पर आगे बढ़ रही हैं, लेकिन उन्होंने कभी यह सोचा भी नहीं था कि वह सचमुच डिक्टेटर बन जायेंगी। जैसा कि मरने से लगभग एक साल पहले उन्होंने मुझसे कहा था, उनको डर यह था कि अगर आर्थिक और राजनीतिक एकता लाने में देर की गयी तो उत्तर और दक्षिण एक-दूसरे से अलग हो जायेंगे। इमर्जेंसी से यह समस्या टल भले ही गयी हो पर वह हल नहीं हुई थी। दरअसल, मरने से कुछ ही दिन पहले कामराज ने अपने कुछ घनिष्ठ मित्रों को बताया था कि इमर्जेंसी के दौरान उनके लिए करने को कुछ रह ही नहीं गया था; जयप्रकाश और श्रीमती गांधी के बीच समझौता कराने का काम भी वह नहीं कर सकते थे क्योंकि श्रीमती गांधी किसी पर भरोसा ही नहीं करती थीं।

जयप्रकाश से उन्होंने एक बार कहा था कि उन्हें श्रीमती गांधी पर रत्ती-भर भरोसा नहीं रह गया है। चूंकि कामराज डी० एम० के० और अन्ना डी० एम० के० दोनों ही के विरोधी थे इसलिए उनके वास्ते दाँव-पेंच करने की भी ज़्यादा गुंजाइश नहीं रह गयी थी। जैसा कि जयप्रकाश ने 3 अक्तूबर को अपनी डायरी में लिखा, "वह जानते थे कि श्रीमती गांधी जैसे छल-कपट करनेवाले नेता को अन्ना डी० एम० के० के साथ समझौता कर लेने में कोई संकोच नहीं होगा, और इससे वह बहुत डरते थे। इसलिए, फ़िलहाल तो उनका रवैया यही था कि अगला चुनाव 'अकेले अपने बल पर' लड़ा जाये।"

श्रीमती गांधी को इस बात की बहुत ज़रूरत थी कि दक्षिणी भारत उनका साथ दे। वह जानती थीं कि उत्तर में लोग इमर्जेंसी से बहुत नाराज़ हैं। कामराज के मरने के बाद उन्होंने यह 'साबित' करने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया कि दोनों के बीच जो अनबन थी वह दूर हो गयी थी और दोनों एक-दूसरे के बहुत निकट आ गये थे। यह बात सच नहीं थी लेकिन कामराज से पूछने कौन जाता? श्रीमती गांधी ने कहा कि कामराज तमिलनाडु की संगठन कांग्रेस को उनकी कांग्रेस के साथ मिला देने के लिए तैयार थे। यह सच है कि इमर्जेंसी से पहले कामराज इस बात के लिए राज़ी थे कि पूरे देश में संगठन कांग्रेस और कांग्रेस मिलकर एक हो जायें, लेकिन इस शर्त पर कि हर राज्य में संगठन कांग्रेस के नेताओं को बड़ी कांग्रेस में कोई पद दिया जायेगा।

तमिलनाडु में लोगों पर इस बात का गहरा असर पड़ा कि कामराज के दाह-संस्कार में भाग लेने के लिए वह खास तौर पर हवाई जहाज़ से मद्रास गयी थीं और

कुछ लोग यक़ीन भी करने लगे कि उन्होंने कामराज के कांग्रेस में चले आने की जो बात कही थी वह सच थी, और अगर वह कुछ दिन और ज़िन्दा रहते तो ऐसा हो भी जाता। बाद में जब लोकसभा के चुनाव हुए तो लोगों के इस ढंग से सोचने से उन्हें बहुत मदद भी मिली।

दिल्ली के तिहाड़ जेल में उस दिन रात को जेल का सुपरिन्टेण्डेण्ट तीन सौ अफ़सरों और क़ैदियों को लेकर दनदनाता हुआ वार्ड नं० 15 में घुस आया और उसने नज़रबन्द क़ैदियों को डराने-धमकाने की कोशिश की। उसने सोचा कि इन नज़रबन्द क़ैदियों की सीधी-सादी माँगों का 'जवाब' देने के लिए गांधी जयन्ती से अच्छा और कौन दिन हो सकता है। इन लोगों की माँगें बहुत सीधी थीं—पाखाने-पेशाब के लिए बेहतर सुविधाएँ दी जायें, इलाज का बेहतर इन्तज़ाम हो और खाने, कपड़े और मुलाक़ात के मामले में जेल के क़ायदे-क़ानूनों पर अमल किया जाये; और अदालत में या अस्पताल ले जाते वक़्त उनको हथकड़ी न डाली जाये। तिहाड़ जेल के नज़रबन्द क़ैदियों ने 3 अक्तूबर को भी अपनी भूख हड़ताल जारी रखी। चरणसिंह, राजनारायण और नानाजी देशमुख ने इन माँगों में उनका साथ दिया।

सरकार कुछ नरम पड़ी और उसने नज़रबन्द क़ैदियों की कुछ माँगें मान लीं। लेकिन नज़रबन्दी के क़ायदे और भी सख़्त कर दिये गये। 18 अक्तूबर को एक बार फिर मीसा के क़ानून में हेर-फेर किया गया और सरकार के लिए अब यह ज़रूरी नहीं रह गया कि वह इस क़ानून के तहत की गयी गिरफ़्तारियों की वजह किसी को बताये, अदालतों को भी नहीं। यह आर्डिनेंस पिछली तारीख़ 29 जून से लागू कर दिया गया ताकि जो लोग इस वक़्त भी जेलों में बन्द थे वे अपनी गिरफ़्तारी के ख़िलाफ़ अदालतों में कोई फ़रियाद न कर सकें। यह क़दम 13 सितम्बर को मेरी रिहाई के बाद उठाया गया था, जब दिल्ली हाईकोर्ट ने यह फ़ैसला सुनाया था कि सरकार अदालत को इस बात के बारे में संतुष्ट नहीं कर पायी है कि "कुलदीप नैयर को आंतरिक सुरक्षा क़ानून के अनुसार क़ानूनी ढंग से नज़रबन्द किया गया है।" ब्रिटिश समाचार एजेंसी रायटर की ख़बरें भेजने की लाइन 9 अक्तूबर को काट दी गयी क्योंकि उसने सेंसर के नियमों को 'तोड़कर' यह ख़बर और कुछ और ख़बरें भेज दी थीं। लाइन दुबारा वापस लगवाने में तीन महीने लग गये।

मीसा में और ज़्यादा सख़्ती और रायटर की लाइन काट दिये जाने से विदेशों में यह भावना और बढ़ गयी कि भारत तेज़ी से खुली डिक्टेटरशिप की तरफ़ बढ़ रहा है। अमरीका में, वाशिंगटन में भारतीय राजदूत टी० एन० कौल की कोठी के पास भारतीय छात्रों ने 'स्वतन्त्रता का मार्च' करके प्रदर्शन किया। कौल ने मौक़ा-बेमौक़ा इमर्जेंसी के पक्ष में सफ़ाई दी थी और यहाँ तक धमकी दी थी कि भारत ने अपने ढंग का जो जनतन्त्र बनाया है उसे न मानने पर अमरीका को एक दिन पछताना पड़ेगा। उन्होंने भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय को लिखा कि जो छात्र इमर्जेंसी के गुण नहीं गाते थे उनकी छात्रवृत्तियाँ बन्द कर दी जायें। उन्होंने कुछ छात्रों के पासपोर्ट भी रद्द कर दिये क्योंकि वे 'भारत को बदनाम करने पर तुले हुए थे।'

शिकागो में जीवन के सभी क्षेत्रों के लगभग सौ लोगों ने, जिनमें वकील, डॉक्टर, इंजीनियर, व्यापारी और छात्र सभी थे, गांधीजी की एक बहुत बड़ी, 10 फ़ुट लम्बी और 6 फ़ुट चौड़ी तसवीर लेकर प्रदर्शन किया। तसवीर में गांधीजी जंजीरों से जकड़े हुए थे, जिसका मतलब यह दिखाना था कि अगर वह ज़िन्दा होते तो वह भी जेल में होते।

बहुगुणा 9 अक्तूबर को शिकागो में थे। उन्हें बड़ी मुसीबत का सामना करना

पड़ा। उनके भाषण में कई बार लोगों ने शोर मचाया; 'मुर्दाबाद' के नारे लगाये गये। जब यह ऐलान किया गया कि मंत्री महोदय सिर्फ़ लिखकर पूछे गये सवालों का जवाब देंगे तो दर्शकों ने बहुत हुल्लड़ मचाया। इससे पहले न्यूयार्क की एक मीटिंग में उन्होंने कहा था कि "भारत में जनतन्त्र न सिर्फ़ यह कि मरा नहीं है, बल्कि अब उसमें पहले से ज़्यादा जान और चुस्ती आ गयी है।"

जेनेवा से गिरजाघरों की विश्व परिषद् ने 23 अक्तूबर को श्रीमती गांधी से 'जनता का स्वतन्त्र रूप से अपने विचार व्यक्त करने का जनतान्त्रिक अधिकार लौटा देने' का अनुरोध किया। परिषद् के जनरल सेक्रेटरी ने एक पत्र में इस बात पर भी 'दुःख' प्रकट किया कि राजनीतिक लोगों को मुक़दमा चलाये बिना क़ैद कर रखा गया है, और ज़ोर देकर यह बात कही कि इमर्जेंसी के दौरान सरकार ने जो अधिकार अपने हाथ में ले रखे हैं वे 'मानव अधिकारों में बहुत गम्भीर कटौती' का सबूत हैं। श्रीमती गांधी ने इसके जवाब में कहा कि संविधान में जिस तरह बताया गया है कि 'कौन-सा काम किससे पहले किया जाये, उस क्रम से' इमर्जेंसी पूरी तरह मेल खाती है। उन्होंने कहा कि प्रस्तावना में सामाजिक और आर्थिक न्याय की बात पहले कही गयी है और राजनीतिक न्याय की बात बाद में।

यह बात बहुत-से लोगों को ठीक नहीं लगी लेकिन अब उनके पाँव और भी मज़बूत हो चुके थे। इलाहाबाद हाईकोर्ट ने 12 जून को चुनाव के दो अपराधों की बुनियाद पर उनके खिलाफ़ जो फ़ैसला दिया था उसे सुप्रीम कोर्ट ने 12 जून को सभी जजों की एकमत राय से उलट दिया। हाईकोर्ट ने श्रीमती गांधी पर जो यह पाबन्दी लगायी थी कि वह छः साल तक किसी ऐसे पद पर नहीं रह सकतीं जिसके लिए चुनाव जीतना ज़रूरी हो, वह भी रद्द कर दी गयी।

पाँच जजों की बेंच का यह फ़ैसला मुक़दमे के तथ्यों की बुनियाद पर नहीं बल्कि चुनाव क़ानून में अगस्त में संसद में जो हेर-फेर किया गया था उसकी बुनियाद पर दिया गया था। इस तरह श्रीमती गांधी दण्ड से बिलकुल मुक्त हो गयीं।

सुप्रीम कोर्ट ने तीन जजों के खिलाफ़ पाँच जजों की राय से संसद में अगस्त के किये गये उस विशेष संशोधन का वह हिस्सा भी रद्द कर दिया जिसमें प्रधानमंत्री के चुनाव के बारे में कोई फ़ैसला देने का अधिकार अदालतों से छीन लिया गया था। इस फ़ैसले से राजनारायण की यह बात सही मान ली गयी कि किसी को इतनी व्यापक छूट का अधिकार देना संविधान की भावना के खिलाफ़ है।

इन पाँच जजों में से एक जज एम० एच० बेग ने, जिन्हें उनकी बारी आने से पहले ही सुप्रीम कोर्ट का चीफ़ जस्टिस बना दिया गया था, इस मुक़दमे में दोनों पक्षों की ओर से पेश की गयी बातों की खूबियों और खामियों की छानबीन की, क्योंकि उनका कहना यह था कि मामले का फ़ैसला उस कानून की बुनियाद पर होना चाहिये जो हाईकोर्ट के फ़ैसले के वक़्त लागू था। वह इस नतीजे पर पहुँचे कि हाईकोर्ट जिन नतीजों पर पहुँचा था वे बे-बुनियाद थे। जस्टिस बेग ने कहा कि ऐसा लगता है कि "विद्वान जज महोदय को शायद इस बात का ज़रूरत से ज़्यादा आभास था कि वह इस देश के प्रधानमंत्री के मुक़दमे का फ़ैसला कर रहे हैं।" इसलिए उनको (जस्टिस बेग को), जैसा कि उन्होंने अपने फ़ैसले में बताया भी, इस बात की बड़ी फ़िक्र थी कि इस बात का असर उनके फ़ैसले पर न पड़ने पाये। फिर भी जब सबूतों को परखने का वक़्त आया तो उन्होंने कहा, "मुझे ऐसा लगता है कि उन्होंने सबूतों का खरापन परखने के लिए एक जैसी कसौटियाँ इस्तेमाल नहीं कीं, और इस तरह चुनाव याचिका दायर करनेवाले (राजनारायण) को उस बहुत भारी ज़िम्मेदारी से छुटकारा दे दिया, जो

उस पक्ष पर होती है जो भ्रष्ट तरीक़े अपनाने का आरोप लगाकर मतदाताओं के फ़ैसले को चुनौती देता है।..."

श्रीमती गांधी की पार्टी ने इस जीत पर बड़ी खुशियाँ मनायीं और कहा, "जनतन्त्र के रास्ते की पूरी तरह जीत हुई। यह फ़ैसला जनतान्त्रिक ताक़तों की जीत है।" लेकिन उनके विरोधियों ने बहुत कटुता के साथ यह कहा कि अदालत के फ़ैसले की बुनियाद इस बात पर रखी गयी थी कि संसद ने श्रीमती गांधी की पार्टी की माँग पर चुनाव के क़ानून को बिलकुल नये सिरे से एक नये ही साँचे में ढाल दिया था और उन्हें यह नया क़ानून बनने से बहुत पहले की तारीख से ही बरी कर दिया था।

इस फ़ैसले के कुछ ही समय बाद सरकार ने चीफ़ जस्टिस से अनुरोध किया कि सुप्रीम कोर्ट के उस पिछले फ़ैसले पर भी फिर से विचार किया जाये जिसमें संविधान के बुनियादी ढाँचे में हेर-फेर करने के संसद के अधिकार पर कुछ हदें लगा दी गयी थीं। अलग-अलग हाईकोर्टों, सरकार के कई क़ानूनों और अधिनियमों के ख़िलाफ़ लगभग 300 रिट इस बुनियाद पर दायर थे कि ये क़ानून संविधान के बुनियादी ढाँचे से मेल नहीं खाते। नमूने के लिए आन्ध्र प्रदेश का एक मुक़दमा लिया गया। एटॉर्नी-जनरल नीरेन डे ने यह दलील दी कि 1973 वाले फ़ैसले में यह बात साफ़-साफ़ नहीं बयान की गयी थी कि संविधान की बुनियादी विशेषताएँ क्या हैं और उस पर फिर से विचार किया जाना चाहिए ताकि संसद को यह मालूम हो सके कि उसकी हैसियत क्या है। पालकीवाला ने आरोप लगाया कि 'किसी भी भारतीय अदालत के सबसे ऐतिहासिक फ़ैसले' पर उस फ़ैसले के सुनाये जाने के दो ही साल के अन्दर फिर से विचार कराने की कोशिश करके सरकार ने 'भद्दी क़िस्म की जल्दबाज़ी' का सबूत दिया है।

सुनवायी के तीसरे दिन के बाद चीफ़ जस्टिस ने अचानक तेरह जजों की बेंच भंग कर दी। उन्हें पता चल गया था कि ज़्यादातर जज फ़ैसले पर दुबारा विचार करने के पक्ष में नहीं हैं। यह सरकार की हार थी—कई महीने में पहली बार।

धुन के पक्के वकीलों ने अपने काम का दायरा और बढ़ा दिया। उन्होंने नज़रबन्द क़ैदियों की रिहाई के लिए और जेलों की हालत सुधारने के लिए हज़ारों रिट दायर किये।

शान्तिभूषण बंगलौर में कर्नाटक के हाईकोर्ट में अडवाणी, अटलविहारी वाजपेयी, संगठन कांग्रेस के एस० एन० मिश्रा और सोशलिस्ट नेता मधु दण्डवते की पैरवी कर रहे थे। इमर्जेंसी लागू होने के वक़्त ये लोग कर्नाटक में थे। शान्तिभूषण ने कहा, "हम पूरी इमर्जेंसी को और सरकार की तरफ़ से उठाये गये क़दमों को चुनौती दे रहे हैं और इस बात को भी कि ये सारे क़दम किस तरह श्रीमती गांधी के कहने के मुताबिक़ उस गम्भीर ख़तरनाक साज़िश के हिस्से हैं जिसकी वजह से इमर्जेंसी लागू करने की ज़रूरत पड़ी।"

दो और वकील, जिन्होंने नज़रबन्द क़ैदियों के मुक़दमे फ़ीस लिये बिना लड़कर बहुत नाम कमाया, वे थे वी० एम० तारकुंडे, जो पहले बम्बई हाईकोर्ट के जज रह चुके थे, और बम्बई के ही सोली सोराबजी। तारकुंडे ने 'सिटिज़ंस फ़ार डेमोक्रेसी' नामक एक संस्था को भी सक्रिय किया। इस संस्था ने बुनियादी अधिकार वापस किये जाने की माँग करने के लिए कई मीटिंगें कीं। उसने 12 अक्तूबर को अहमदाबाद में एक कनवेन्शन किया जिसमें एम० सी० छागला ने, जो बम्बई के चीफ़ जस्टिस रह चुके थे, सुप्रीम कोर्ट के भूतपूर्व चीफ़ जस्टिस जे० सी० शाह ने, तारकुंडे, मीनू मसानी और कुछ दूसरे वकीलों ने भाषण दिये।

कनवेन्शन का उद्घाटन करते हुए छागला ने कहा, "आज जो लोग जेल में हैं उनमें से ज़्यादातर को यह भी नहीं मालूम है कि वे वहाँ क्यों हैं और वे अपनी सफ़ाई में कुछ कह भी नहीं सकते, क्योंकि जहाँ किसी चीज़ को बदला न जा सकता हो वहाँ सफ़ाई देने का सवाल ही पैदा नहीं होता। वे और किसी अदालत के सामने भी नहीं जा सकते क्योंकि वे सब चीज़ें तो अब बन्द हो गयी हैं।"

उनके इस भाषण की वजह से बड़ौदा के साप्ताहिक अखबार भूमिपुत्र और महात्मा गांधी के क़ायम किये हुए नवजीवन ट्रस्ट के प्रेस को बड़ी मुसीबत का सामना करना पड़ा। भूमिपुत्र के प्रेस पर ताला डाल दिया गया। मामला हाईकोर्ट तक गया और उसके जजों ने सेंसर के आदेशों के कुछ हिस्सों को ग़ैर-क़ानूनी ठहराया। यह फ़ैसला भी तब तक नहीं छपने दिया गया जब तक कि खुद हाईकोर्ट ने इसको छापने की आज्ञा नहीं दे दी। इसके साथ ही हाईकोर्ट ने यह भी कहा कि "किसी नागरिक की आज़ादी के पक्ष में किसी अदालत का कोई भी फ़ैसला किसी को नुक़सान नहीं पहुँचा सकता।"

नवजीवन ट्रस्ट के प्रेस ने, जहाँ से अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ अपनी लड़ाई के दिनों में महात्मा गांधी अपने अख़बार यंग इण्डिया और हरिजन छपवाते थे, भूमिपुत्र के मुक़दमे के बारे में एक छोटी-सी किताब छापी। पुलिस ने प्रेस पर छापा मारकर उस पर ताला डाल दिया और उसे छः दिन तक बन्द रखा। प्रेस ने गुजरात हाईकोर्ट से फ़रियाद की। एक वक़्त ऐसा आया जब नवजीवन ट्रस्ट के प्रेस के सामने यह सुझाव रखा गया कि उस प्रेस में जो कुछ भी छपे अगर पहले सेंसर से उसकी मंजूरी ले लेने के लिए प्रेस तैयार हो जाये तो सरकार उसके ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं करेगी। प्रेस के मैनेजर जितेन्द्र देसाई ने कहा कि आज़ादी के बाद ऐसा पहली बार हुआ है कि स्वतन्त्र भारत की सरकार ने एक ऐसी संस्था पर ताला डलवा दिया है जिसे गांधीजी ने देश की आज़ादी हासिल करने के लिए क़ायम किया था।

कांग्रेस के कुछ वकीलों ने 8-9 नवम्बर को कर्नाटक राज्य वकील सम्मेलन का आयोजन किया। प्रचार यह किया गया था कि यह सम्मेलन ग़रीबों को क़ानूनी मदद देने के सिलसिले में किया जा रहा है। राज्य सरकार ने इसके लिए 1,00,000 रुपये की मंजूरी भी दी थी लेकिन सम्मेलन करनेवालों की असली मंशा थी इमर्जेंसी के पक्ष में एक प्रस्ताव पास करना। बहुत-से ऐसे वकीलों को, जो खुलेआम कांग्रेस के ख़िलाफ़ थे, डेलीगेट नहीं बनाया गया। 1,800 में से केवल 600 वकीलों ने इस सम्मेलन में हिस्सा लिया। फिर भी जब श्रीमती गांधी को सुप्रीम कोर्ट में अपनी अपील में कामयाब होने की बधाई देने का प्रस्ताव सम्मेलन में रखा गया तो पता यह चला कि केवल 10 वोट उसके पक्ष में थे और 590 ख़िलाफ़ थे।

यह सच है कि यह कर्नाटक की एक अकेली घटना थी, लेकिन सारे देश में वकीलों के तेवर बहुत बिफरे हुए थे। वकालतखानों में वे इमर्जेंसी की और उसके साथ जुड़ी हुई हर चीज़ की खुलेआम निन्दा करते थे।

कुछ वकील इस नतीजे की परवाह किये बिना क़ानून के शासन के लिए लड़ते रहे। कितने ही जजों ने भी, जिनमें से ज़्यादातर हाईकोर्ट के थे, सत्ताधारियों के समझाने-बुझाने की कोई परवाह नहीं की। मिसाल के लिए, श्रीमती पद्मा देसाई ने अपने ससुर मोरारजी देसाई से मुलाक़ात के लिए अदालत में अर्ज़ी दी, लेकिन मीसा में नज़रबन्द क़ैदियों की नज़रबन्दी की शर्तों के बारे में जो नियम बनाये गये थे वह कहीं देखने को मिलते ही नहीं थे। दिल्ली के गज़ट में वे छपे ज़रूर थे लेकिन उसकी सब कापियाँ 'ख़त्म हो गयी थीं'। दो उत्साही जजों, जस्टिस रंगराजन और जस्टिस अग्रवाल के

सामने इस अर्ज़ी की सुनवाई हुई और उन्होंने पूरे आग्रह के साथ यह बात कही कि सरकार के खुफ़िया हुक्म क़ानून पर हावी नहीं हो सकते और उन्होंने नज़रबन्द क़ैदियों के साथ मुलाक़ात और पत्र-व्यवहार के बारे में इन नियमों की रुकावट डालने वाली धाराओं को रद्द कर दिया। श्रीमती सत्या शर्मा की अर्ज़ी पर, जिनके पति एस० डी० शर्मा ने भी भीमसेन सच्चर की अर्ज़ी पर दस्तखत किये थे, यह फ़ैसला दिया गया कि इमर्जेंसी के दौरान भी हर सरकारी कार्रवाई को किसी क़ानून की बुनियाद पर जायज़ साबित करना ज़रूरी है। इलाहाबाद के चीफ़ जस्टिस के० बी० अस्थाना ने, एक प्रोफ़ेसर की नज़रबन्दी के बारे में शक ज़ाहिर करते हुए कहा कि किसी गिरफ़्तारी को जायज़ साबित करने के लिए सिर्फ़ सरकार के कठमुल्लापन के ऐलान ही काफ़ी नहीं हैं।

बम्बई में जस्टिस जे० आर० विमदलाल और जस्टिस पी० एस० शाह ने महाराष्ट्र के नज़रबन्दी की शर्तों वाले आदेश में से खुराक, मुलाक़ात और इलाज से सम्बन्ध रखनेवाली सारी शर्तें रद्द कर दीं। उन्होंने कहा, "नज़रबन्द क़ैदी आम अपराधी जैसा नहीं होता है और नज़रबन्द करने के अधिकार का मतलब दण्ड देने का अधिकार नहीं है" और यह कि "किसी भी नज़रबन्द क़ैदी पर जो भी पाबन्दियाँ लगायी जायें वे कम-से-कम होनी चाहिये, बस इतनी जितनी कि उसे नज़रबन्द रखने के लिए काफ़ी हों।"

महाराष्ट्र के ऐक्टिंग चीफ़ जस्टिस वी० डी० तुलज़ापुरकर ने पुलिस के उस हुक्म को रद्द कर दिया जिसके ज़रिये संविधान में नागरिक स्वतन्त्रताओं और क़ानून के शासन की समस्याओं पर विचार करने के लिए बुलायी गयी वकीलों की एक प्राइवेट मीटिंग पर पाबन्दी लगा दी गयी थी। उन्होंने कहा, "कोई भी सरकार जो खुली बहस में इमर्जेंसी की शान्तिपूर्ण और रचनात्मक आलोचना को भी दबा देती हो, कोई भी सरकार जो सिर्फ़ खुशामदियों और चापलूसों के लिए स्वतन्त्रताएँ बाक़ी रखती है, और कोई भी सरकार जो अपने पुलिस के सबसे बड़े अफ़सरों को इस बात की इजाज़त देती है कि वे उसके नागरिकों को अपने उन कामों के लिए भी, जो आम तौर पर किये जाते हैं, जिनके पीछे कोई छिपा हुआ उद्देश्य नहीं होता है और जिनसे कोई खतरा नहीं होता है, पहले इजाज़त लेने पर मजबूर करके अपमानित और बेइज़्ज़त करती है, उसे इस बात का कोई नैतिक अधिकार नहीं है कि वह सारी दुनिया के सामने यह ढिंढोरा पीटे कि इस देश में जनतन्त्र बाक़ी है।"

लेकिन ऐसी मिसालें इक्का-दुक्का ही थीं। कम-से-कम 400 मुक़दमे ऐसे थे, जिनमें मधु लिमये का मुक़दमा भी शामिल था, जिनमें मुद्दई को अपनी बात कहने तक का मौक़ा दिये बिना ही, एकतरफ़ा सुनवाई करके यह कहकर "खारिज कर दिया गया कि उसे वापस ले लिया गया है।" सुप्रीम कोर्ट के स्टे-ऑर्डर बड़ी बेरहमी के साथ ऐन उस वक़्त दिये जाते थे जब छात्र-क़ैदियों का परीक्षा देने का मौक़ा निकल चुका हो। बम्बई के मेयर का चुनाव भी लगभग टल ही गया था।

ज़ाहिर है कि सरकार की कार्रवाइयों से वकीलों ने अपना रास्ता नहीं छोड़ा। 7 अप्रैल को, जिस वक़्त कि इमर्जेंसी की "लहर सबसे ऊँची थी और सबसे ख़तरनाक हो चुकी थी", दिल्ली के हाईकोर्ट के बार एसोसिएशन ने संजय गांधी के चहेते डी० डी० चावला को हराकर प्राणनाथ लेखी को चुना, जो उस वक़्त तिहाड़ जेल में तनहाई की क़ैद काट रहे थे। ज़िला बार एसोसिएशन ने भी कांग्रेसी उम्मीदवार के ख़िलाफ़ एक और बाग़ी वकील कँवरलाल शर्मा को चुना।

यह संजय के लिए खुली चुनौती थी। उसने ज़िला कोर्ट और सेशन कोर्ट के

वकीलों के, लगभग एक हज़ार वकीलों के, वकालतखाने तोड़ देने का हुक्म दे दिया। जिस वक़्त बुलडोज़र इन इमारतों को ढा रहे थे, उस वक़्त चारों ओर पुलिस का पहरा था।

चूंकि उस दिन छुट्टी थी इसलिए कोई वकील वहाँ था नहीं। लेकिन ख़बर फैली तो सारे वकील बौखलाकर अपना सामान बचाने के लिए भागे-भागे वहाँ पहुँचे। उन्हें बड़ी बेरहमी से खदेड़ दिया गया, और कुछ के पीछे तो पुलिस इतनी बुरी तरह पड़ी कि वे लगभग एक महीने तक छिपे रहे। अगले दिन बार एसोसिएशन के मेम्बरों का एक दल इसके ख़िलाफ़ अपनी आवाज़ उठाने के लिए चीफ़ जस्टिस टी० वी० आर० ताताचारी से मिला। तेतालीस वकीलों को, जो एक ही बस पर सफ़र कर रहे थे, फ़ौरन गिरफ़्तार कर लिया गया—24 को मीसा में और 19 को डी० आई० आर० में। केन्द्रीय सरकार के गृह और आवास राज्यमंत्री एच० के० एल० भगत ने एक और डेलीगेशन से कहा कि शायद डी० डी० ए० के साथ 'किसी रंजिश की वजह से' ही उनके वकालतखाने ढाये गये हैं। ओम मेहता ने एक तीसरे दल को यह यक़ीन दिलाया कि अब और कोई तबाही नहीं होगी।

लेकिन अगले इतवार को भी डी० डी० ए० ने 200 और वकीलों के कैबिन तोड़ डाले। बाक़ी बचे हुए लगभग 500 वकालतखाने छुट्टियों के दौरान बड़ी बेरहमी से वहाँ से हटा दिये गये। शाहदरा और पार्लियामेंट की फ़ौजदारी की अदालतों में भी सरकार की तरफ़ से इसी तरह की गुण्डागर्दी की गयी। कुल मिलाकर अट्ठावन वकील जेल में ठूंस दिये गये। उनमें से सिर्फ़ एक अशोक सापरा को रिहा किया गया। वह पुलिस के डी० आई० जी० (जेल) का बेटा था और उसे रात के वक़्त चुपचाप छोड़ दिया गया था।

लेकिन वकीलों की बात और थी। बाक़ी लोग इमर्जेंसी को कमोबेश ज़िन्दगी का ढर्रा समझने लगे थे। कुछ तो 'शान्ति और अनुशासन' के गुण भी गाते थे। कॉलेजों-यूनिवर्सिटियों में छात्र भी, जिनसे जयप्रकाश को बड़ी-बड़ी उम्मीदें थीं, कमोबेश चुप हो गये थे।

ऐसा नहीं है कि उन्होंने विरोध किया ही नहीं था। दिल्ली की जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी में छात्रों ने अगस्त में एक दिन की और सितम्बर में तीन दिन की हड़ताल की। दूसरी यूनिवर्सिटियों की तरह यहाँ भी ख़ुफ़िया पुलिसवालों की भरमार थी। जब पन्द्रह छात्रों को, जो यूनिवर्सिटी में भरती किये जाने के लिए हर तरह से योग्य थे, दाख़िला देने से इंकार कर दिया गया तो छात्र यूनियन के प्रेसिडेंट ने इसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठायी। वाइस-चांसलर ने उसे यूनिवर्सिटी से निकाल दिया। दिल्ली यूनिवर्सिटी में 500 अध्यापक और छात्र गिरफ़्तार किये गये जिनमें एक युवक नेता अरुण जेटली भी था। दिल्ली के कुछ छात्रों को उनके स्कूलों से दो साल के लिए निकाल दिया गया था। हाईकोर्ट ने उन्हें फिर से स्कूल में वापस लेने का हुक्म दिया। कुछ पुलिस इंसपेक्टरों ने कॉलेजों और यूनिवर्सिटियों में नाम लिखवा लिया था।

नई दिल्ली के नेशनल स्टेडियम में 19 नवम्बर को एक विरोध प्रदर्शन हुआ। इसमें सबसे आगे-आगे चौदह से सत्रह वर्ष की उमर तक के चौबीस लड़के थे। उनमें से दो लड़कों ने झपटकर माइक्रोफोन ले लिया और ज़ोर से चिल्लाये, "इन्दिरा, हम तेरी जेलों को भर देंगे, पर तेरे अत्याचार के आगे कभी सर नहीं झुकायेंगे।"

लेकिन विरोध के इन छुटपुट प्रदर्शनों के बाद छात्र और अध्यापक दोनों ही एक ऐसी ज़िन्दगी बिताने लगे जो उन्हें पसन्द तो नहीं थी लेकिन क्या करते, वह एक नंगी हकीक़त थी।

उन्हीं दिनों अण्डरग्राउण्ड से एक पर्चा बाँटा गया था, जिसमें भारत की दशा बहुत सही-सही बयान की गयी थी :

सब-कुछ ईश्वर के हाथ में है। ऐसा लगता है कि देश की ऐसी दुर्दशा इससे पहले कभी नहीं थी। स्वार्थ बेहद बढ़ गया है। अब कोई पार्टी नहीं रह गयी है। एक आदमी की हुकूमत है। बाक़ी सब लोग अब उसके हाथ के खिलौने हैं। आम लोगों और सरकार के छोटे-बड़े अफ़सरों की ज़बान पर ताला लग गया है और उनमें कुछ भी करने की ताक़त नहीं रह गयी है। जनता कराह रही है।

लेकिन उसकी बात सुननेवाला और उसे बचानेवाला है कौन ? शायद किसी ने कभी सोचा भी नहीं था कि ऐसी भी हालत हो सकती है। लोगों की चेतना इमर्जेंसी के डर के नीचे दबकर रह गयी है। लेकिन ऐसा लगता है कि अब इन्दिरा गांधी को इस बात का एहसास होता जा रहा है कि उन्होंने क्या हालत पैदा कर दी है। रोज़ नये-नये ऑर्डिनेंस जारी किये जा रहे हैं। अब वह खुद और उनका बेटा संजय गांधी अकेले ही सरकार चला रहे हैं। अब सरकार की बागडोर गुण्डों के हाथ में है। देश इस मुसीबत से कैसे उबरेगा, यह कोई नहीं जनता।

लाखों लोग जेलों में हैं। उनके परिवारवालों की हालत दिन-ब-दिन बिगड़ती जा रही है। बहुत-से लोगों की नौकरियाँ छिन गयी हैं। कितने ही लड़कों की पढ़ाई छूट गयी है। यूनिवर्सिटियों और कॉलेजों के बहुत-से अध्यापक इस समय जेलों में बन्द हैं। बूढ़ों, नौजवानों और बच्चों तक को डराया-धमकाया जा रहा है। अब खुला पुलिस-राज है। उनकी बेरहमी और उनके जुर्म अब बर्दाश्त के बाहर होते जा रहे हैं।

कोई आर्थिक लाभ भी तो नहीं हुए थे। श्रीमती गांधी अभी तक यह नहीं साबित कर पायी थीं कि भारत जैसे ग़रीब देशों को दरिद्रता की दलदल से बाहर निकलने के लिए रहमदिल निरंकुश शासकों की ज़रूरत होती है। सच तो यह है कि देश में आर्थिक बदइन्तज़ामी की शुरुआत 1966 में उनकी सरकार बनते ही हो गयी थी, जब उन्होंने रुपये का भाव घटा दिया था।

अगर हम थोक क़ीमतों के मामले में बुनियाद 1950-51 के साल को बनायें, जिस साल से योजनाओं का दौर शुरू हुआ था, और यह मान लें कि उस साल क़ीमतों का स्तर 100 था, तो उसके बाद के पन्द्रह वर्षों में वह 148 तक पहुँच गया था, यानी 48 फ़ीसदी बढ़ गया था। 1966-67 से, जिस साल श्रीमती गांधी ने शासन की बागडोर अपने हाथों में सँभाली थी, 1974-75 तक थोक क़ीमतों का स्तर 148 से बढ़कर 351 तक पहुँच गया था। मतलब यह कि उनके शासन के नौ वर्षों के दौरान क़ीमतें 137 फ़ीसदी से ज़्यादा बढ़ी थीं।

दूसरी तरफ़, 1950-51 में देश में 20 अरब 16 करोड़ रुपये के नोट चल रहे थे; 1965-66 में यह रक़म बढ़कर 45 अरब 30 करोड़ रुपये तक पहुँच गयी थी, यानी लगभग पन्द्रह साल में दुगने से कुछ अधिक। लेकिन 1965-66 और 1974-75 के बीच यह रक़म 115 अरब रुपये हो गयी। किसी भी पैमाने से नापने पर यह बहुत तेज़ रफ़्तार थी।

जहाँ तक कारखानों की पैदावार का सवाल था, 1966 में वह 153 प्वाइंट तक

पहुँच चुका था। (इसी पैमाने पर 1951 में यह उत्पादन 55 प्वाइंट पर था।) मतलब यह कि औद्योगिक उत्पादन हर साल लगभग 6.5 फ़ीसदी की रफ़्तार से बढ़ रहा था। 1965-66 और 1974-75 के बीच वह 208 प्वाइंट तक पहुँचा, जिससे यह पता चलता है कि हर साल औद्योगिक उत्पादन सिर्फ़ 4 फ़ीसदी से भी कम की रफ़्तार से बढ़ रहा था। और सो भी तब जबकि लगातार फ़सल अच्छी होने की वजह से काफ़ी राहत मिल गयी थी।

1950-51 में बचत कुल राष्ट्रीय आमदनी की केवल 5.7 फ़ीसदी थी; इतने नीचे स्तर से बढ़कर 1965-66 में वह 13.3 फ़ीसदी तक पहुंच गयी थी। लेकिन 1965-66 और 1974-75 के बीच यह दर लगातार गिरती ही गयी और फिर कभी पहलेवाले स्तर तक नहीं पहुँच सकी। वह 11 से 13 प्रतिशत के बीच घटती-बढ़ती रही। सबसे ज़्यादा पूंजी 1966-67 में लगायी गयी जब कुल राष्ट्रीय आमदनी का 15.3 फ़ीसदी फिर पूंजी के रूप में लगा दिया गया था। इसके बाद के वर्षों में यह दर लगातार गिरती ही गयी। 1968-69 में तो वह गिरते-गिरते 10.2 फ़ीसदी तक पहुंच गयी और 1974-75 में भी वह इससे बहुत अधिक नहीं थी।

बहुत ही कम बचत, सीमित नयी पूंजी, सुस्त उद्योग, प्रचलित मुद्रा में तेज़ी से बढ़ती और 1973-75 में सूखे के वर्षों के दौरान खेती की पैदावार में बेहद कमी का नतीजा आर्थिक संकट के अलावा और हो ही क्या सकता था। 1974 और 1975 में देश को आर्थिक संकट का सामना करना ही पड़ा। ऐसा लगता था कि उनकी आर्थिक मजबूरियाँ ऐसी थीं कि इमर्जेंसी जैसी कोई चीज़ लागू किये बिना श्रीमती गांधी का काम नहीं चल सकता था।

श्रीमती गांधी को सहारा इस बात से मिला कि 1975-76 में जितनी अच्छी फ़सल हुई उतनी उससे पहले कभी नहीं हुई थी। उस साल 12 करोड़ 8 लाख टन अनाज पैदा हुआ था जबकि उससे पहलेवाले साल 1974-75 में कुल पैदावार 9 करोड़ 98 लाख टन हुई थी। फिर स्मगलरों के खिलाफ़ मुहिम चलायी गयी थी, जिसकी वजह से स्मगलिंग के धन्धे में न सिर्फ़ जोखिम बढ़ गया था बल्कि वह महँगा भी पड़ने लगा था। हाजी मस्तान और यूसुफ़ पटेल जैसे चोटी के स्मगलरों सहित 288 स्मगलर गिरफ़्तार कर लिये गये थे और 177 की जायदादें ज़ब्त कर ली गयी थीं। 1 जुलाई को एक ऑर्डिनेंस जारी किया गया जिसके अनुसार अब यह ज़रूरी नहीं रह गया कि जो लोग विदेशी मुद्रा की बचत और स्मगलिंग की रोकथाम के क़ानून में पकड़े जायें उन्हें उनकी गिरफ़्तारी की वजह बतायी जाये। अगर देश के हित में उन्हें नज़रबन्द रखना ज़रूरी समझा जाये, तो उनका मामला सलाहकार बोर्ड के सामने भेजने की भी ज़रूरत नहीं थी। (गायत्री देवी इसी क़ानून में पकड़ी गयी थीं।)

सरकार ने रुपये के भाव को किसी विदेशी मुद्रा के भाव के साथ 'बांधकर न रखने' का भी फ़ैसला किया ताकि विदेशों में रहनेवाले हिन्दुस्तानी अपना पैसा सरकारी रास्तों से भेज सकें क्योंकि काले बाज़ार में भी भाव कुछ बेहतर नहीं था। अब इस तरह हर साल 80 करोड़ रुपये के बजाय 2 अरब रुपया आने लगा।

मीसा के डर की वजह से कारखानों में भी शान्ति थी। कोई हड़ताल करने का मौक़ा नहीं दिया जाता था और अगर कोई हड़ताल होती भी थी तो पुलिस बीच में पड़कर उसे 'तय' करा देती थी। इससे ट्रेड यूनियन तो नहीं खुश थे लेकिन मिल मालिक बहुत खुश थे। ट्रेड यूनियनवाले यों भी कुछ करने से डरते थे। जिस वक़्त बोनस क़ानून रद्द किया गया और मालिकों के लिए यह ज़रूरी नहीं रह गया कि नुक़सान होते हुए भी वे लाज़िमी तौर पर तनख़्वाह का 8.33 फ़ीसदी बोनस दें, उस

वक़्त लगभग सभी ट्रेड यूनियन चुप बैठे रहे। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने कुछ शोर मचाया लेकिन सिर्फ़ अख़बारों में।

कारखानों में शान्ति और 'कुछ कर दिखाने' की सरकार की कोशिशों की वजह से कारखानों को अपनी बेकार पड़ी हुई क्षमता को भी इस्तेमाल करने में मदद मिली। इसका एक और नतीजा हुआ—भरमार। ज़्यादातर मिल मालिक शिकायत करने लगे कि उनका माल ख़रीदने के लिए काफ़ी ग्राहक ही नहीं हैं और माल जमा होता जा रहा है। सरकार ने इसके बारे में कुछ नहीं किया; उसको सिर्फ़ यह फ़िक्र थी कि ताला-बन्दी या बैठकी न होने पाये। और किसी चीज़ का कोई महत्त्व नहीं था।

इसके लिए क्या इमर्जेंसी की ज़रूरत थी? सच तो यह है कि जो भी कामयाबी मिली थी उसका ज़्यादातर हिस्सा कारोबारी ढंग से सोचनेवाले उद्योग-मंत्री टी० ए० पई की उन कोशिशों का नतीजा था जो उन्होंने 1974 में मंत्री बनने के बाद से की थीं। स्मगलरों के ख़िलाफ़ भी 1974 से ही मुहिम चलायी जा रही थी, जब गणेश वित्त-मंत्रालय में राज्यमंत्री थे।

इमर्जेंसी का नौकरशाही के निकम्मेपन और सुस्ती पर कोई ख़ास असर नहीं हुआ। श्रीमती गांधी ने केन्द्रीय मंत्रालयों और राज्यों की सरकारों को कमज़ोर करके बहुत-सी ताक़त अपने सेक्रेटेरियट के हाथों में सौंप दी थी। उनका सेक्रेटेरियट मंत्रियों और मंत्रालयों के साथ लगे हुए स्पेशल असिस्टेंटों, आई० ए० एस० के अफ़सरों और प्राइवेट सेक्रेटरियों के ज़रिये रक्षा-मंत्रालय में एस० के० मिश्रा, वाणिज्य मंत्रालय में एन० के० सिंह और सूचना मंत्रालय में बी० एस० त्रिपाठी जैसे लोगों के ज़रिये—सरकार की पूरी मशीनरी को अपनी मुट्ठी में रखता था। धीरे-धीरे उनके हाथों में असली ताक़त आती गयी और वे पालिसियाँ बनाने लगे। संजय उनको उनका पहला नाम लेकर पुकारता था।

सच पूछा जाये तो श्रीमती गांधी को प्रशासन को सुधारने में कभी संजीदगी से दिलचस्पी थी ही नहीं। पहले तो उन्होंने यह बहाना बनाकर इस काम को टाला कि मोरारजी की अध्यक्षता में प्रशासन सुधार कमीशन ने कुछ सिफ़ारिशें की थीं, जिनकी छानबीन भारत सरकार के सेक्रेटरियों ने अभी नहीं की है। जब इस धीमी रफ़्तार की आलोचना की गयी तो उन्होंने इन सिफ़ारिशों को अन्तिम रूप देने के काम पर तीन मंत्रियों की एक टोली को लगा दिया—मोहन कुमार मंगलम, डी० पी० धर और टी० ए० पई। कई लम्बे-चौड़े पेपर और सुझाव तैयार किये गये लेकिन सबको उठाकर ताक़ पर रख दिया गया।

यह समझा जाता था कि इस पूरी व्यवस्था को बनाये रखने और चलाने के लिए उनका सेक्रेटेरियट, अलग-अलग मंत्रालयों में काम करनेवाले स्पेशल असिस्टेंट और 'रॉ' के लोग काफ़ी हैं। लेकिन जनता के सामने अपने भाषणों में और फ़ाइलों पर अपनी छुटपुट टिप्पणियों में वह सरकारी काम-काज की धीमी रफ़्तार में अपनी दिलचस्पी दिखाती रहीं और उस पर चिन्ता प्रकट करती रहीं।

उन्होंने सभी मुख्यमंत्रियों और कैबिनेट के मंत्रियों को सभी स्तरों पर प्रशासन को चुस्त बनाने के लिए एक पत्र लिखा। उन्होंने कहा, "हम बहुत कठिन दौर से गुज़र रहे हैं। कुदरती बात है कि जिन लोगों के हाथ में सरकार का काम-काज चलाने की ज़िम्मेदारी है उनसे जनता ज़्यादा उम्मीद रखती है। आलस, लापरवाही या अनुशासन-हीनता की कोई गुंजाइश नहीं है। हर आदमी को अपना काम पूरी मुस्तैदी के साथ करना चाहिये। हर दर्जे के सरकारी नौकरों के अधिकार हैं। लेकिन कर्तव्य और ज़िम्मेदारी के बिना अधिकार का सवाल ही पैदा नहीं हो सकता। कारगर नेतृत्व

बहुत ज़रूरी है।...

हालाँकि यह पत्र 10 मार्च 1975 को लिखा गया था, लेकिन उसमें 'कर्तव्य और ज़िम्मेदारी' की बात कही गयी थी—वही बात जो इमर्जेंसी के दौरान श्रीमती गांधी अपने हर भाषण में कहती थीं।

उनके इस पत्र से लोग ताज्जुब से चौंक पड़े और लोगों में खलबली मच गयी। कुछ दिन तक सेक्रेटेरियट के बरामदों में यह अफ़वाहें गूंजती रहीं कि कुछ बुनियादी परिवर्तन और सुधार होनेवाले हैं। प्रधानमंत्री के आदेशों के अनुसार हर विभाग और हर मंत्रालय में इसके बारे में दौड़-धूप होने लगी। कई कैबिनेट के मंत्रियों और मुख्य-मंत्रियों ने इसके जवाब में प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर शासन की समस्याओं के बारे में उनकी 'दूरदर्शिता और गहरी समझ-बूझ' के लिए उनकी प्रशंसा करने के बाद—यह रस्म तो उन्हें पूरी करनी ही पड़ती थी—कुछ और विचार और सुझाव अपनी तरफ़ से रखे।

श्रीमती गांधी ने किसी भी पत्र का जवाब नहीं दिया; उन्होंने उनको पढ़ा तक नहीं। सारे खत उनके सेक्रेटेरियट और कैबिनेट सेक्रेटरी के पास भेज दिये गये। इसके बाद किसी ने उनके बारे में कुछ भी नहीं सुना।

लेकिन जब उन्होंने 25 अप्रैल को एक दूसरा खत लिखकर उन्हें सभी स्तरों पर प्रशासन को चुस्त करने के बारे में अपने पिछले ख़त की याद दिलायी तो कैबिनेट के सभी मंत्री और मुख्यमंत्री दंग रह गये। उन्होंने इसके साथ 'प्रशासन की कार्य-कुशलता में सुधार' के बारे में एक लम्बा-चौड़ा चौदह पन्ने का नोट भी नत्थी कर दिया, जिसे एल० पी० सिंह और एल० के० झा ने तैयार किया था, जो ऊँचे सरकारी पदों से रिटायर हो चुके थे। उन्होंने एक बार फिर मंत्रियों से प्रशासन को सुधारने और निजी तौर पर ध्यान देने के लिए कहा और प्रशासन को चुस्त और फुर्तीला बनाने के लिए उनसे और सुझाव माँगे। एक बार फिर सेक्रेटेरियट में उनके इस ख़त की चर्चा होने लगी। हर मंत्री ने अपने बड़े-बड़े अफ़सरों के साथ कई-कई बार मीटिंगें कीं और हर सेक्रेटरी ने अपने सभी अफ़सरों के साथ उन पर पूरा भरोसा करके बातचीत की। हर पन्द्रह दिन में एक बार इस सिलसिले में की गयी कार्रवाई की रिपोर्ट कैबिनेट सेक्रेटरी को भेजनी थी। नतीजा वही रहा—सरकार की मशीनरी टस से मस नहीं हुई, काम-काज के वही लम्बे चक्करदार तरीक़े और कर्मचारियों में वही जात-पाँत का भेद-भाव।

लेकिन इमर्जेंसी का सहारा लेकर सरकार ने केन्द्र के 200 अफ़सरों को और राज्यों में और भी बहुत सारे अफ़सरों को रिटायर कर दिया। 1960 के बाद से यह क़ानून चला आ रहा था कि पचास साल की उम्र के बाद निकम्मे कर्मचारियों की छँटनी की जा सकती है। जो अफ़सर कोई ग़ैर-क़ानूनी काम करने से इंकार करते थे उनको सजा देने के लिए इस वक़्त यह क़ानून बहुत काम आया।

श्रीमती गांधी अपने बेटे और उसके गुर्गों के साथ मिलकर शासन करके बहुत संतुष्ट थीं। एक तरफ़ तो क़ीमतों में कुछ ठहराव आ गया था और नये नोट छापते जाने की ज़रूरत लगभग बिलकुल ख़त्म हो गयी थी और दूसरी ओर प्रशासन भी 'कहना मानने लगा था'। इन बातों की वजह से श्रीमती गांधी और संजय का अपने ऊपर भरोसा बढ़ गया। अब वे लोग कुछ जोखिम भी मोल ले सकते थे।

यही वह वक़्त था जब श्रीमती गांधी ने कुछ दिन के लिए जयप्रकाश को छोड़ देने की बात सोची। उनके स्वास्थ्य के बारे में जो ख़बरें आ रही थीं वे कुछ अच्छी नहीं थीं। अगर उन्हें कुछ हो गया तो लोग चुप नहीं बैठेंगे। वे श्रीमती गांधी को और उनकी सरकार को कभी माफ़ नहीं करेंगे।

एक वक़्त तो जयप्रकाश की हालत इतनी नाज़ुक हो गयी थी कि उनके अन्तिम संस्कार की भी तैयारी कर ली गयी थी। अख़बारों ने उनका शोक-समाचार भी तैयार कर लिया था। न जाने क्यों विद्याचरण शुक्ल ने यह आदेश दिया था कि जयप्रकाश के बारे में जो कुछ लिखा जाये उसमें इस बात का कोई ज़िक्र न किया जाये कि उनके और नेहरू के बीच दोस्ती थी।

उनका स्वास्थ्य तो खराब था ही, इसके अलावा श्रीमती गांधी को यह भी पता चला था कि जयप्रकाश बहुत निराश हो चुके हैं और जनता के साथ और देश के साथ जो कुछ भी हुआ था उसके लिए अपने को दोषी समझते थे। उनके नेकनीयत सेक्रेटरी पी० एन० धर ने, जिन्होंने हकसर के बाद यह पद सँभाला था, सलाह-मशविरा करने के बाद गांधी अध्ययन संस्थान (इंस्टीच्यूट ऑफ़ गांधी स्टडीज़) के सुमतदास गुप्ता को जयप्रकाश से मिलकर उनके विचार मालूम करने के लिए भेजा। धर का कहना यह था कि जयप्रकाश और श्रीमती गांधी किसी 'ग़लतफ़हमी' की वजह से एक-दूसरे से अलग हटते गये हैं और उस ग़लतफ़हमी को 'दूर किया जा सकता है'। दास गुप्ता को ऐसा लगा कि जयप्रकाश पिछली बातों के बारे में सोच-विचार करने की मुद्रा में हैं। सच बात तो यह है कि अपनी गिरफ़्तारी के बाद पहली बार जयप्रकाश को दास गुप्ता से इस बात की एक पूरी तसवीर मिली कि देश में क्या हुआ था और उससे उन्हें बहुत दुःख हुआ।

जयप्रकाश बाढ़-पीड़ितों की मदद करने के लिए पटना भी जाना चाह रहे थे। ऐसा कर सकने के लिए उन्होंने 27 अगस्त को एक महीने के लिए पैरोल पर छोड़ दिये जाने की प्रार्थना भी की थी। इसके जवाब में श्रीमती गांधी ने कृषि-मंत्रालय के सेक्रेटरी बलबीर वोहरा को उन्हें विस्तार के साथ यह बताने के लिए भेजा था कि पटना के लोगों को राहत पहुँचाने के लिए क्या-क्या किया जा रहा है। लेकिन उन्होंने गाँवों के बारे में कुछ नहीं बताया जिससे जयप्रकाश को बड़ी चिन्ता हुई।

लेकिन 17 सितम्बर को जो पत्र लिखा, उसमें उन्होंने केवल बाढ़ का ज़िक्र नहीं किया था। उन्होंने कहा था, "न सिर्फ़ यह कि बिहार में बाढ़ की स्थिति बिगड़ गयी है, बल्कि देश के दूसरे हिस्सों में भी बाढ़ आयी है। ऐसे वक़्त में किसी के कोई आंदोलन या संघर्ष छेड़ने का सवाल ही पैदा नहीं होता। अगर यह मान भी लिया जाये कि राजनीतिक इमर्जेंसी की कभी कोई जरूरत भी थी, तब भी वह तो अब ख़त्म हो चुकी है और अब उसकी जगह इंसानों की मुसीबत की एक इमर्जेंसी आ गयी है, जिसका मुक़ाबला करने के लिए सारे देश को मिलकर ज़ोर लगाना चाहिए।"

श्रीमती गांधी ने इस ख़त में जितना कहने की कोशिश की गयी थी उससे कहीं ज़्यादा उसका मतलब लगाया। इसमें तो कोई शक नहीं है कि जयप्रकाश बहुत निराश थे। लेकिन देश को डिक्टेटरशिप से बचाने का उनका पक्का इरादा किसी भी तरह कमज़ोर नहीं हुआ था। श्रीमती गांधी को उनका 'भ्रम टूट जाने' के बारे में जो ख़बरें मिलती रही थीं उनसे भी उन्होंने ज़रूरत से ज़्यादा मतलब निकाला। उन्होंने जयप्रकाश को पहले तीस दिन के पैरोल पर छोड़कर उनकी हरक़तों को देखने का फ़ैसला किया।

संजय उनके छोड़े जाने के ख़िलाफ़ था लेकिन पैरोल पर छोड़ दिये जाने में उसे कोई ख़ास हर्ज दिखायी नहीं दिया क्योंकि उस हालत में जयप्रकाश को राजनीति से दूर रहना पड़ेगा। लेकिन जयप्रकाश ने सरकार को यह बात साफ़-साफ़ बता दी थी कि वह फिर सक्रिय रूप से श्रीमती गांधी का विरोध शुरू करने का इरादा रखते हैं।

जयप्रकाश 12 नवम्बर को रिहा किये गये। सरकार ने इसके बारे में एक छोटी-सी खबर अखबारों में छपने की इजाजत दे दी। सरकार ने यह भी नहीं बताया कि उन्हें किन शर्तों पर पैरोल पर छोड़ा गया है। उनके राजनीतिक साथियों का कहना था कि उन्हें इलाज के लिए छोड़ा गया है। डॉक्टरों की राय थी कि वह 'गुर्दे में खराबी' की वजह से बहुत कमजोर हो गये हैं।

श्रीमती गांधी देखना चाहती थीं कि इसके बाद उनका—और जनता का—क्या रवैया होता है। बहरहाल, इस वक्त पलड़ा तो उनका भारी था ही।

सुरंग का छोर

जयप्रकाश ने जनता के चेहरे पर भय छाया हुआ देखा। चंडीगढ़ में उनका स्वागत करने भी बहुत लोग नहीं आये थे। दो दिन बाद जब वह इंडियन एयरलाइंस के हवाई जहाज़ से चंडीगढ से दिल्ली पहुँचे तो यहाँ भी हवाई अड्डे पर थोड़े ही से लोग थे और उनके नाम भी खुफ़िया पुलिसवालों ने दर्ज कर लिये थे। गांधी शांति प्रतिष्ठान पर भी, जहाँ वह ठहरे थे, बराबर कड़ी नज़र रखी जा रही थी।

अगर श्रीमती गांधी समझती थीं कि वह बदल गये हैं तो यह उनकी भूल थी। वह नाइजेरिया के उस कवि और नाटककार वोले सोयिंका की तरह थे जिसने दो साल जेल में काटने के बाद अपने ऊपर उसके असर के बारे में कहा था, "आप वहाँ से बाहर निकलते समय भी उन्हीं सब चीजों पर विश्वास रखते हैं जिन पर वहाँ जाने से पहले रखते थे, लेकिन पहले के मुक़ाबले में ज़्यादा पक्का विश्वास।"

जयप्रकाश ने सुमत से कहा था कि जो कुछ हुआ है उसके बाद धर मुझसे यह उम्मीद तो नहीं रखते होंगे कि मैं श्रीमती गांधी का साथ दूंगा या उनका हाथ बटाऊँगा। अगर चुनाव कराने का ऐलान कर दिया जाता है तो मैं सरकार के साथ टकराव ख़त्म कर देने की पैरवी करूंगा। दिल्ली पहुँचने के कुछ ही दिन के अन्दर जयप्रकाश ने एक प्रेस कान्फ्रेंस की जिसमें सिर्फ़ विदेशी संवाददाता मौजूद थे। भारतीय संवाददाता वहाँ जाते हुए इसलिए डरते थे कि वे नज़र में आ जायेंगे। प्रेस कान्फ्रेंस मुश्किल से पन्द्रह मिनट चली होगी, लेकिन जयप्रकाश ने यह बात बिलकुल साफ़ कर दी कि तबीयत कुछ सँभलते ही वह फिर नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित राजनीति में काम करते रहेंगे।

जयप्रकाश ने संवाददाताओं से कहा, "श्रीमती गांधी ने इसी चीज़ को तो ख़त्म कर दिया है। हम लोग अँग्रेज़ों के ज़माने से बहुत बदले नहीं हैं। श्रीमती गांधी का विरोध करनेवाली ताक़तों को एकता की लड़ी में पिरोने में मैं जो भी मदद दे सकूंगा दूंगा। मध्यम वर्ग के लोगों के हौसले पस्त हो चुके हैं। उनकी समझ में नहीं आ रहा है कि क्या करें। विपक्ष के लोग जेल में हैं। अख़बारों को जंजीरों से जकड़ दिया गया है। श्रीमती गांधी के मन में सचमुच डर समा गया होगा, वह बहुत से काम डर की वजह से करती हैं।"

सरकार को जो जानकारी दी गयी थी उससे यह बात बिलकुल भिन्न थी। ख़ुफ़िया विभाग के लोगों ने ख़बर दी थी कि जयप्रकाश में अब काम करने के लिए बहुत दम नहीं रह गया है। उन दिनों धर ने मुझसे कहा था, "जयप्रकाश बिलकुल मायूस हो चुके हैं और अब पिछली बातों को याद करते रहते हैं।" लेकिन यह उनकी भूल थी। वह अब भी अपने इरादे पर अटल थे।

जब गृहमंत्री उमाशंकर दीक्षित और धर उनसे बातचीत करने गये, तो उन्होंने देखा कि वह ज़रा भी टस से मस होने को तैयार नहीं थे। जयप्रकाश अपनी माँग पर

अड़े हुए थे—जब तक सारे नज़रबन्द क़ैदियों को रिहा नहीं कर दिया जायेगा, इमर्जेंसी उठा नहीं ली जायेगी, अख़बारों पर से सेंसरशिप हटा नहीं ली जायेगी और जल्द ही चुनाव कराने का आदेश नहीं दिया जायेगा तब तक कोई बातचीत नहीं हो सकती।

लगभग यही बात उन्होंने मुझसे बम्बई में कही जहाँ वह डायलिसिस' के लिए गये थे क्योंकि उनका गुर्दा ख़राब हो गया था। यह बात अभी तक रहस्य बनी हुई थी कि उनका गुर्दा ख़राब कैसे हुआ। उनका ख़याल था कि यह चंडीगढ़ की मेडिकल इंस्टीच्यूट में हुआ होगा जहाँ उन्हें इलाज के लिए रखा गया था।

जयप्रकाश ने इस तरह की अफ़वाहें सुनी थीं कि उन्हें ज़हर दिया गया है। दर-असल, उन्होंने बी० बी० सी० को बताया कि उनका स्वास्थ्य 'अस्वाभाविक कारणों से' 27 सितम्बर के बाद बिगड़ना शुरू हुआ था। यह सवाल पूछे जाने पर कि क्या बाहर से किसी ने मंसूबा बनाकर यह काम करवाया था, उन्होंने बी० बी० सी० को बताया, "पूरी ज़िम्मेदारी के साथ मुझे कहना पड़ता है कि मेरे दिमाग़ में इस तरह का कुछ शक ज़रूर है।"

उनके साथ अपनी बातचीत के दौरान मैंने देखा कि इमर्जेंसी और उसके बाद की घटनाओं का उन पर कितना असर हुआ था। वह सचमुच बहुत बुझे-बुझे-से थे और जो कुछ हुआ था उसके लिए अपने को दोषी समझ रहे थे। लेकिन जिस बात की उन्हें ख़ुशी थी वह थी इमर्जेंसी के ख़िलाफ़ व्यापक प्रतिक्रिया। उन्होंने कहा, "एक लाख लोगों का जेल जाना कोई मामूली बात नहीं है। फिर भी उन्हें इस बात पर निराशा थी कि वकीलों और जजों को छोड़कर, बाक़ी और बहुत-से लोगों ने हिम्मत नहीं दिखायी थी।"

वह महसूस करते थे कि वह देश के लिए 'अब किसी काम के नहीं' रह गये थे। उन्होंने कहा कि जहाँ तक देश की सेवा का सवाल है मैं ख़त्म हो चुका हूँ। उन्होंने अपनी जेल की डायरी में लिखा था, 'मेरी दुनिया मेरे चारों ओर तहस-नहस पड़ी है।' लेकिन उनकी यह बात सही नहीं थी। उस वक़्त उन्हें गुमान भी नहीं था कि जल्द ही देश में जनतन्त्र को फिर से क़ायम करने में उनका बहुत बड़ा हाथ होगा और इन्हीं खंडहरों से एक नया भारत उभरेगा।

शुरुआत दिखायी देने लगी थी। लोक संघर्ष समिति ने 14 नवम्बर से सारे देश में सत्याग्रह शुरू कर दिया था। वह नेहरू का जन्मदिन था, जिन्होंने एक बार कहा था कि जयप्रकाश एक दिन भारत के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेंगे। 1,00,000 से ज़्यादा वालंटियरों ने सत्याग्रह करने की शपथ पर दस्तख़त किये।

दिल्ली में 108 वालंटियर चाँदनी चौक में गिरफ़्तार हुए, जिनमें 7 औरतें और 6 नाबालिग़ लड़के भी थे। 50 सर्वोदयी कार्यकर्ता श्रीमती गांधी के सामने शान्तिवन में गिरफ़्तार किये गये, जहाँ वह अपने पिता को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने गयी थीं। सत्याग्रही नारे लगा रहे थे 'भारत माता की जय' और 'तानाशाही नहीं चलेगी।'

वयोवृद्ध स्वतन्त्रता सेनानी और भूतपूर्व संसद-सदस्य तेन्नेती विश्वनाथन ने आन्ध्र प्रदेश में सत्याग्रह की अगुवाई की और सभी जिलों में वालंटियर गिरफ़्तार हुए। उड़ीसा में सत्याग्रह की शुरुआत सम्बलपुर और कटक से हुई; पहले दिन सात आदमी गिरफ़्तार किये गये।

केरल में सत्याग्रह का नारा दिये जाने की ख़बर हाथ से लिखे गये पोस्टरों के ज़रिये हर ज़िला केन्द्र में और उससे नीचे की इकाइयों तक पहुँचायी गयी। ग्यारह में से दस ज़िलों में 280 वालंटियर गिरफ़्तार हुए। कालिकट के पास पुलिस ने वालंटियरों

पर लाठीचार्ज भी किया।

सत्याग्रह सारे देश में हुआ और हर राज्य में कुछ-न-कुछ गिरफ़्तारियाँ ज़रूर हुईं। दिल्ली में जयप्रकाश के नारा देने के बाद 29 जून को जो सत्याग्रह हुआ था उसमें और इस सत्याग्रह में फ़र्क यह था कि इस बार बहुत-से लोग सत्याग्रह देखने के लिए सड़कों पर निकल आये थे। पहले कोई इतनी हिम्मत भी नहीं करता था कि उसे कहीं आस-पास देखा भी जाये। सत्याग्रही जो पर्चे बाँट पाते थे उन्हें लोग खुशी-खुशी लेते थे। पुलिस का रवैया भी एक तरह से पहले से अलग था—वह अब पहले से भी ज़्यादा बेरहम हो गयी थी, जैसे कि उसे अब लाठियाँ बरसाने में या जिसे वह अब तक भीड़ समझती थी उसे तितर-बितर करने के लिए ज़ोर-ज़बर्दस्ती करने में कोई झिझक, कोई संकोच रह ही न गया हो।

सरकार भी ज़्यादा-से-ज़्यादा निरंकुश होती जा रही थी। हालाँकि इमर्जेंसी के दौरान सभी बुनियादी अधिकार स्थगित कर दिये गये थे लेकिन सरकार ने संविधान की 19वीं धारा में जिन मूल अधिकारों की गारंटी दी गयी है उनमें से सात को स्थगित रखने के लिए खास तौर पर आदेश जारी किये—भाषण की स्वतन्त्रता, सभाएँ करने की स्वतन्त्रता, संगठन और श्रमिक संघ बनाने की स्वतन्त्रता, सारे भारत में बिना किसी रोक-टोक के कहीं भी आने-जाने और देश के किसी भी भाग में रहने का अधिकार, सम्पत्ति रखने का अधिकार, कोई भी व्यवसाय, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार।

राष्ट्रपति फ़खरुद्दीन अली अहमद के दस्तखत से जारी किये गये आदेश में 19वीं धारा को लागू कराने के लिए अदालतों में अपील करने पर भी पाबन्दी लगा दी गयी। संविधान में दिये गये अधिकारों पर यह एक नयी रोक लगाने की कोई वजह भी नहीं बतायी गयी। 26 जून 1975 को इमर्जेंसी लागू होने के बाद से यह चौथी रोक थी।

यह उम्मीद की जाती थी कि श्रीमती गांधी शायद लोगों को रिहा करना शुरू कर दें लेकिन उन्होंने बिलकुल उल्टी ही दिशा अपनायी। सत्याग्रह के बारे में जनता ने जो उत्साह दिखाया था शायद उसी की वजह से सरकार विरोध करनेवालों को बहुत चुन-चुनकर सख्ती के साथ कुचल रही थी।

जयप्रकाश की पैरोल 4 दिसम्बर को खत्म कर दी गयी। हालाँकि उन पर से सारी पाबन्दियाँ हटा ली गयी थीं फिर भी उन पर नज़र रखी जा रही थी। वह जहाँ भी जाते थे खुफ़िया विभाग के लोग उनके पीछे परछाईं की तरह लगे रहते थे। जो लोग उनसे मिलने आते थे उनका हिसाब रखा जाता था, उनके पत्रों की और जो कुछ भी वह कहते थे उसकी बड़ी गहरी छानबीन की जाती थी। शायद कोई बात निकल आये।

वरना, जैसा कि जयप्रकाश ने मुझसे कहा, इस वक़्त श्रीमती गांधी की गुड्डी चढ़ी हुई थी। उन्हें दुर्गा कहा जाता था और कभी-कभी तो ऐसा लगता था कि उन्हें खुद विश्वास हो चला है कि उनमें वह शक्ति है। वह जानती थीं कि किस वक़्त क्या करने से सबसे ज़्यादा असर पड़ेगा। गाँव में वह साधारण धोती पहनती थीं और लजीली बहुओं की तरह सर पर पल्ला डाले रहती थीं। कश्मीर में वह कश्मीरियों जैसे कपड़े पहनती थीं। पंजाब में वह कुर्ता-सलवार पहनती थीं और यह भी कहती थीं कि वह पंजाबी हैं क्योंकि उनकी छोटी बहू, संजय की पत्नी मेनका, पंजाब की थी। वह दावा करती थीं कि वह गुजरात की बहू हैं क्योंकि उनके पति फ़ीरोज़ गांधी गुजराती थे। वह जानती थीं कि आम लोगों पर इन सब बातों का बहुत अच्छा असर पड़ता है। और कुछ समय तक तो पड़ा भी।

ऐसा लगता था कि 'निर्देशित जनतन्त्र' का जो ढाँचा उन्होंने खड़ा किया था वह अब टिका रहेगा। ऐसा लगता था कि श्रीमती गांधी ने जो राजनीतिक हल पेश किये हैं उन्हें देश में बहुत-से लोग स्वीकार करने को तैयार हैं। बहुत-से लोग, खास तौर पर पढ़े-लिखे खाते-पीते लोग, बिना किसी शर्मोहया के कहते थे, "हमसे कोई भी काम कराने के लिए हमेशा हमें किसी-न-किसी मालिक की जरूरत रही है। पहले मुग़ल थे, फिर अँग्रेज़ आये और अब श्रीमती गांधी हैं। इसमें आखिर ऐसी बुराई क्या है ?"

उनकी कृपादृष्टि की बदौलत संजय ने अपना राजनीतिक असर भी बढ़ा लिया था और अपनी संदिग्ध ख्याति भी। दिल्ली आनेवाला हर मुख्यमंत्री जब तक संजय से नहीं मिल लेता था तब तक वह अपनी यात्रा को सफल नहीं समझता था। वे सभी एक-दूसरे से होड़ लगाकर उसे अपने राज्य में आने का न्यौता देते थे और सरकार की ओर से जुटायी गयी बड़ी-बड़ी मीटिंगों से यह साबित करने की कोशिश करते थे कि वह कितना लोकप्रिय है।

श्रीमती गांधी सचमुच समझती थीं कि वह बहुत लोकप्रिय है। एक बार जब चन्द्रजीत यादव ने उनसे शिकायत की कि संजय के स्वागत के लिए जो मीटिंगें होती हैं उनमें से ज्यादातर जुटायी हुई होती हैं, तो वह बुरा मान गयीं और बोलीं, "कुछ लोग जलते हैं क्योंकि जनता सचमुच संजय को चाहती है।" यूनुस बार-बार यह कह-कर कि लाखों लोग उसकी ओर खिंचे चले आते हैं, श्रीमती गांधी के इस विश्वास को और पक्का कर देते थे। यूनुस ने तो खास तौर पर एक लेख भी लिखा, जो कई अखबारों में छपा भी, जिसमें कहा गया था कि भविष्य संजय के हाथ में है। सच तो यह है कि संजय का स्वागत करने के लिए जो भीड़ें जमा होती थीं वे सब भाड़े की होती थीं।

लेकिन जो बात श्रीमती गांधी को कभी-कभी बहुत परेशानी में डाल देती थी वह यह थी कि मुख्यमंत्रियों ने हवाई अड्डों पर आकर संजय का स्वागत करना शुरू कर दिया था। यह बात सिद्धार्थशंकर रे ने उनसे कही भी थी। बरुआ की मार्फ़त उन्होंने उन लोगों को हिदायत भी भिजवा दी थी कि वे उनके बेटे का स्वागत करने के लिए हवाई अड्डे या रेलवे स्टेशन पर न आया करें।

लेकिन मुख्यमंत्रियों ने इस आदेश की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया क्योंकि जब भी संजय किसी राज्य में जाता था तो उसका स्वागत करने के लिए 'हमेशा की तरह बन्दोबस्त' करने के बारे में एक गश्ती चिट्ठी गृह-मंत्रालय की ओर से पहले ही भेज दी जाती थी। मंत्रालय ने संजय की सुरक्षा के बारे में भी हिदायतें दे रखी थीं—जिन मीटिंगों में वह भाषण दे, उनमें पब्लिक को पिस्तौल की मार से ज़्यादा दूरी पर रखा जाये और मंच के पीछे ऐसा परदा लगाया जाये जिसे गोली न बेध सके, बीच की खाली जगह में पुलिस और सिक्योरिटी के आदमी भर दिये जायें। यह इन्तज़ाम उन सिक्योरिटी वालों के अलावा था जो चौबीस घंटे उसके साथ लगे रहते थे।

संजय अकसर इंडियन एयर फ़ोर्स के हवाई जहाज़ से राज्यों के दौरे पर जाता था। सरकारी तौर पर वह किसी मंत्री का दौरा होता था लेकिन असली यात्री संजय होता था। आम तौर पर हवाई जहाज़ ओम मेहता के नाम से लिया जाता था। श्रीमती गांधी के ज़माने से पहले गृह राज्य-मंत्री को एयर फ़ोर्स का हवाई जहाज़ इस्तेमाल करने का कभी अधिकार नहीं था, लेकिन ओम मेहता को यह रिआयत उन्होंने खास तौर पर दिलवा रखी थी। धवन, और कभी-कभी शेपन, इस बात का इन्तज़ाम करते

थे कि हवाई जहाज़ किसके नाम से लिया जाये। एक-दो बार ऐसा भी हुआ कि ऐन वक़्त पर वह मंत्री नहीं गया और संजय अकेला ही चला गया।

ज़्यादातर मुख्यमंत्री अपने अनुभव से अब यह जान चुके थे कि श्रीमती गांधी चाहती हैं कि वे संजय से सम्पर्क रखें। राजस्थान के मुख्यमंत्री हरिदेव जोशी को इस बात के लिए लताड़ा भी गया था कि शुरू-शुरू में उन्होंने अपने राज्य के किसी मामले के सिलसिले में संजय से मिलने में आनाकानी की थी। बाद में जब संजय एक बार जयपुर आ रहा था तो उन्होंने उसके स्वागत के लिए 200 फाटक बनवाकर इसका प्रायश्चित कर लिया था। इन तैयारियों पर जो अनाप-शनाप पैसा खर्च किया गया था उस पर जनता के गुस्से को देखते हुए श्रीमती गांधी ने उसकी यह यात्रा रद्द करवा दी थी। लेकिन जोशी ने अपनी वफ़ादारी साबित कर दी थी।

हितेन्द्र देसाई ने, जो पहले मोरारजी के बहुत क़रीब थे लेकिन अब कांग्रेस में चले गये थे, श्रीमती गांधी के इस इशारे को कि वह संजय से मिल लें यों ही टाल दिया था। इसलिए जब तक उन्होंने संजय के दरबार में हाज़िरी देना नहीं शुरू कर दिया तब तक उन्हें दिल्ली में श्रीमती गांधी से मिलने के लिए हमेशा कई-कई दिन तक लटके रहना पड़ता था।

ज्ञानी जैलसिंह तो धवन को भी धवनजी कहते थे। एक बार हवाई जहाज पर चढ़ते वक़्त संजय की एक चप्पल नीचे गिर गयी। हवाई अड्डे पर जो बहुत-से लोग जमा थे उनकी तरह ही जैलसिंह भी चप्पल उठाने के लिए लपके।

श्यामाचरण शुक्ला, जो सेठी की जगह मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री बन गये थे, हरदम संजय के आगे हाथ बाँधे खड़े रहते थे। वह बहुत दिन राजनीति के बनवास में काट चुके थे और यह नहीं चाहते थे कि फिर उनकी वही दुर्दशा हो। अगर श्रीमती गांधी श्यामाचरण से यही चाहती थीं कि वह संजय के दरबार में हाज़िरी दिया करें तो वह यह क़ीमत देने के लिए हर तरह से तैयार थे।

राजनीतिक जोड़-तोड़ संजय के लिए बायें हाथ का खेल था। उसने युवक कांग्रेस के ज़रिये अपनी राजनीतिक ताक़त बढ़ाना शुरू किया। बरुआ ने कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से उससे युवक कांग्रेस में नयी जान डालने के लिए कहा था और वह 10 दिसम्बर को उसमें भरती हो गया था। उसने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की ओर झुकाव रखनेवाले पश्चिम बंगाल के नेता प्रियरंजन दास मुंशी को अध्यक्ष के पद से हटवाकर उसकी जगह एक भरोसेवाली पंजाबी लड़की अम्बिका सोनी को अध्यक्ष बनवा दिया।

लेकिन संजय को सबसे बड़ी चिन्ता इस बात की थी कि इमर्जेंसी को एक स्थायी व्यवस्था का रूप कैसे दिया जाये। उसकी माँ अकसर उससे कहा करती थीं कि इमर्जेंसी हमेशा तो लगी रह नहीं सकती; उसकी जगह कोई ऐसी व्यवस्था लानी होगी जो मज़बूत हो, जिस पर भरोसा किया जा सके और जो हमेशा टिकी रह सके।

संजय ने फिर शुरुआत अख़बारों से की। शुक्ला ने रिपोर्ट दी थी कि कमोबेश सभी अख़बार और सभी पत्रकार सीधे हो गये हैं और उनसे कोई ख़तरा नहीं रह गया है। वे अब खुद अपने सेंसर बन गये हैं।

एक ऑर्डिनेंस जारी करवाकर आज़ादी से पहले के दिनों का, आपत्तिजनक सामग्री के प्रकाशन की रोकथाम वाला क़ानून फिर लागू कर दिया गया और 'ऐसे शब्दों, चिह्नों या दृश्य अभिव्यक्तियों' के प्रकाशन पर पाबन्दी लगा दी गयी "जो भारत में या उसके किसी राज्य में क़ानून के आधार पर स्थापित सरकार के प्रति घृणा या तिरस्कार या अश्रद्धा उत्पन्न करे और उसके फलस्वरूप सार्वजनिक उपद्रव पैदा करे

या उपद्रव पैदा करने की प्रवृत्ति को जन्म दे।" ब्रिटिश राज में इसी क़ानून के तहत जिस आदमी पर 'आपत्तिजनक सामग्री' लिखने का आरोप लगाया जाता था तो उसे किसी पुराने जज के सामने पेश किया जाता था और उसे इस बात का अधिकार होता था कि पत्रकारिता या सार्वजनिक मामलात से सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्तियों की विशेष जूरी के सामने उसके मुक़दमे की सुनवाई हो। लेकिन इस ऑर्डिनेंस में फ़ैसला करने, सजा देने और पहली अपील की सुनवाई का अधिकार सरकार को ही दिया गया था। उसके वाद ही अभियुक्त हाईकोर्ट में जा सकता था।

सरकार को मुद्रकों, प्रकाशकों और सम्पादकों से नक़द जमानत तलब करने का भी अधिकार दिया गया था और उन्हें केवल 'मंजूर की गयी' सामग्री छापने के लिए ज़िम्मेदार ठहराया गया था। सरकार 'आपत्तिजनक' समझी जाने वाली सामग्री छापने वाले प्रेस को बन्द भी करवा सकती थी।

सरकार के लिए सुविधाजनक सम्पादकों की एक टोली ने अखबारों के लिए नैतिकता के मानदण्डों की एक सूची तैयार की। यह अनोखी सूची थी। 3,000 शब्दों के इस प्रवचन में एक बार भी 'अखबारों की आज़ादी' का उल्लेख नहीं किया गया था।

सरकार ने चालीस से अधिक संवाददाताओं की मान्यता भी वापस ले ली। पत्रकारों को अपने-अपने अखबारों के प्रतिनिधि बने रहने की तो इजाज़त दे दी गयी पर बड़ी-बड़ी प्रेस कान्फ्रेंसों में और संसद की बैठक में जाने की सुविधा उनसे छीन ली गयी। (मेरा नाम उन लोगों की फ़ेहरिस्त में था जिनके बारे में कहा गया था कि अगर वे मान्यता के लिए अर्ज़ी दें तो उन्हें मान्यता न दी जाये।)

अखबारों की आज़ादी की रक्षा करने के लिए पत्रकारों और अखबारों से सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे लोगों की जो संस्था, प्रेस कौंसिल ऑफ़ इंडिया, दस वर्ष पहले बनायी गयी थी उसे तोड़ दिया गया। इसके लिए कृष्णकुमार बिड़ला ने दबाव डाला था। मारुति की मोटर बनाकर तैयार कर देने के सिलसिले में बिड़लावाले जो मुफ़्त सलाह और दूसरी मदद दे रहे थे उसकी वजह से कृष्णकुमार बिड़ला संजय के बहुत निकट आ गये थे। बिड़ला के अखबार हिन्दुस्तान टाइम्स के सम्पादक बी० जी० वर्गीज़ की नौकरी खत्म कर दिये जाने के खिलाफ़ प्रेस कौंसिल के सामने जो शिकायत पेश की गयी थी उसमें के० के० बिड़ला को इस बात की सफ़ाई देनी थी। शिकायत यह की गयी थी कि वर्गीज़ के खिलाफ़ जो कार्रवाई की गयी थी उसके पीछे "शासक पार्टी के कुछ ऐसे लोगों का हाथ था जो अख़बारों की आज़ादी के दुश्मन थे।"

कौंसिल में जो बहस हुई थी उससे के० के० बिड़ला को पता चल गया था कि फ़ैसला उनके खिलाफ़ होगा। और हुआ भी यही, लेकिन फ़ैसला कभी सुनाया नहीं गया। कौंसिल के सदस्यों के साथ बातचीत की बुनियाद पर उसके अध्यक्ष ने फ़ैसले का जो मसविदा तैयार किया था उससे यही इशारा मिलता था कि बिड़ला और हिन्दुस्तान टाइम्स में उनके एक डायरेक्टर को दोषी ठहराया जाता।

फ़ैसले के मसविदे में कहा गया था कि वर्गीज़ का नौकरी से हटाना अखबारों की आज़ादी और सम्पादकीय स्वतन्त्रता का खुला उल्लंघन था। बिड़ला और वर्गीज़ के बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था उसे छपने से रुकवाने की बिड़ला ने जो कोशिश की थी उसकी भी प्रेस कौंसिल ने निन्दा की। फ़ैसला इसलिए नहीं सुनाया जा सका कि 31 दिसम्बर 1975 को प्रेस कौंसिल तोड़ दी गयी।

पत्रकारों को संसद की कार्रवाई की खबरें देने के मामले में जो छूट थी वह भी वापस ले ली गयी। संजय डरता था कि संसद में नागरवाला कांड, इंपोर्ट लाइसेंस कांड और मारुति कांड के बारे में जो कुछ भी कहा जायेगा उसे अखबारवाले खूब

उछालेंगे। वह नहीं चाहता था कि फिर कोई तूफ़ान उठाया जाये। मज़ा तो यह है कि अख़बारवालों को संसद के दोनों सदनों की कार्रवाइयों की ख़बरें बिना किसी रोक-टोक के देने में मदद देने के लिए संजय के पिता फ़ीरोज़ गांधी ने ही एक बिल संसद में पेश किया था। एक वक़्त ऐसा भी आया था, जब श्रीमती गांधी चाहती थीं कि इस बिल को बरक़रार रहने दिया जाये, लेकिन संजय नहीं माना और उसने अपनी बात मनवा ली। उसने कहा कि सरकार के काम-काज में भावुकता की कोई गुंजाइश नहीं है।

अख़बार एक तरह से सरकारी गज़ट बन गये थे। वे ख़ुद अपने ऊपर इतनी सेंसरशिप लागू करने लगे थे कि सरकार की मंज़ूरी लिये बिना जयप्रकाश के स्वास्थ्य के बारे में जारी किये जानेवाले बुलेटिन भी नहीं छापते थे। फिर भी श्रीमती गांधी और उनके बेटे को संतोष नहीं था। इण्डियन एक्सप्रेस ग्रुप के अख़बार अभी तक सीधे रास्ते पर आने को तैयार नहीं थे। इसका एक ही हल था कि उन्हें ख़रीद लिया जाये। और रामनाथ गोएनका से कहा गया कि वह अपना अख़बारों का साम्राज्य बेच दें। लेकिन उनके लिए इतने जमे-जमाये कारोबार से, जिसे उन्होंने शून्य से बढ़ाकर यहाँ तक पहुँचाया था, हाथ धो लेना इतना आसान नहीं था। वह फ़ैसला करने के लिए कुछ मोहलत लेकर इसे टाले रखना चाहते थे। उन्हें उम्मीद थी कि सरकार शायद अपना इरादा बदल दे। मोहलत तो मिल गयी, लेकिन जब गोएनका ने देखा कि सरकार अपनी बात पर अड़ी हुई है तो वह भी कुछ ढीले पड़ गये और एक शर्त पर अख़बारों को बेच देने पर राज़ी हो गये। शर्त यह थी कि उन्हें इसकी वाजिब क़ीमत दी जाये और वह भी 'सफ़ेद पैसे' में। वह जानते थे कि यह मुमकिन नहीं होगा।

गोएनका टेढ़ी खीर बनते जा रहे थे। उनको ख़रीदना बहुत महँगा सौदा हो रहा था। दूसरा रास्ता यह था कि बोर्ड के तेरह डायरेक्टरों को किसी तरह क़ाबू में रखा जाये। संजय ने सोचा कि बेहतर यही होगा कि बोर्ड को ही बदलवा दिया जाये। के० के० बिड़ला को चेयरमैन बना दिया गया और कमलनाथ को, जो दून स्कूल के दिनों से संजय का दोस्त था, छः में से एक मेम्बर बना दिया गया। इस तरह बोर्ड में सरकार का बहुमत हो गया। नये बोर्ड ने पहला काम यह किया कि एडीटर-इन-चीफ़ मुलगाँवकर को ज़बर्दस्ती रिटायर कर दिया गया। कहने को तो इसकी वजह यह बतायी गयी कि वह रिटायर होने की उम्र को पहुँच गये थे, लेकिन असली वजह यह थी कि सरकार अपने आदमी को एडीटर बनाना चाहती थी। दो और पुराने पत्रकार अजित भट्टाचार्य और मैं भी निकाले जाने वाले थे लेकिन गोएनका ने किसी तरह टलवा दिया।

सरकार को इण्डियन एक्सप्रेस के तेवर अब भी पसन्द नहीं थे। सरकार ने इस अख़बार के सारे सरकारी इश्तहार बन्द करवा दिये और सभी सरकारी प्रतिष्ठानों और स्वायत्त संस्थाओं को अपने मंत्रालय की तरफ़ से एक ख़ुफ़िया गश्ती चिट्ठी भिजवा दी कि वे एक्सप्रेस ग्रुप के अख़बारों को इश्तहार देना बन्द कर दें। हर महीने लगभग 15 लाख रुपये का घाटा होने लगा।

अख़बारों पर लगभग पूरी तरह अपना शिकंजा कस लेने के बाद भी शुक्ला 'पूरे अख़बार उद्योग का ढाँचा इस तरह नये सिरे से बनाने' की बात करते थे कि 'वह जनता, समाज और पूरे देश के सामने जवाबदेह रहे।' इस सबका मतलब कोई ऐसी पक्की व्यवस्था करना था जो इमर्जेंसी के दौरान मिले हुए अधिकारों पर निर्भर न हो।

इस काम के लिए अंग्रेज़ी की दो बड़ी समाचार एजेंसियों—प्रेस ट्रस्ट ऑफ़ इण्डिया और यूनाइटेड न्यूज़ ऑफ़ इण्डिया को और हिन्दी की दो समाचार एजेंसियों

हिन्दुस्तान समाचार ग्रौर समाचार भारती को एक में मिला देना जरूरी समझा गया। इस तरह सिर्फ़ एक जगह कंट्रोल रखने से काम चल जाता। शुक्ला ने ग्रखबारों ग्रौर समाचार एजेंसियों के मालिकों को एक एजेंसी का सुझाव मान लेने पर राज़ी करने के लिए उनके ख़िलाफ़ ज़ोर-ज़बर्दस्ती ग्रौर दबाव डालने के ग्रपने वही पुराने हथकण्डे इस्तेमाल किये। बाद में सबको मिलाकर समाचार के नाम से एक एजेंसी बन भी गयी। कुछ डायरेक्टरों ग्रौर चोटी के कर्मचारियों की ग्रड़ंगेबाज़ी को खत्म करने के लिए उन्होंने ग्रॉल इण्डिया रेडियो के लिए उनकी खबरें लेना बन्द करके, जिससे उन्हें काफ़ी ग्रामदनी होती थी, इन एजेंसियों को बिलकुल ग्रपाहिज कर देने की कोशिश की।

जनवरी 1976 के पहले हफ़्ते में बतायी गयी सरकार की योजना यह थी कि एजेंसी की गवर्निंग कौंसिल के चेयरमैन ग्रौर पन्द्रह मेम्बरों को राष्ट्रपति नियुक्त करेगा। लेकिन राष्ट्रपति को यह भी ग्रधिकार दे दिया गया था कि ग्रगर "उसे पूरा यक़ीन हो कि एजेंसी कारगर तरीक़े से काम नहीं कर रही है तो वह गवर्निंग कौंसिल से इसके लिए उचित उपाय करने को कह सकता है।"

सरकार जानती थी कि वह जो क़दम उठाने जा रही है उसका मतलब ग्रखबारों की ग्राज़ादी पर ग्रंकुश लगाना ही समझा जायेगा। इसलिए उसने यह समझाना शुरू किया कि वह ग्रखबारों के साथ जो कुछ भी कर रही है वह सिर्फ़ इसलिए कि वे 'पूँजीपतियों के चंगुल से सचमुच छुटकारा पा सकें।' एजेंसी की बाक़ायदा स्थापना 1 फरवरी को हुई।

इधर ग्रखबारों को नये सिरे से संगठित करने का काम चल रहा था, उधर संजय ने ग्रपना ध्यान सरकार के ढाँचे को नये सिरे से बनाने की ग्रधिक महत्त्वपूर्ण समस्या पर केन्द्रित किया। वह ग्रपनी माँ से हमेशा कहता रहता था कि ग्रगर मेरा बस चले तो मैं 'पूरी सरकार को बदल दूँ।' इसी सिलसिले में उसने यह माँग भी रखी थी कि मंत्रिमण्डल के 54 मंत्रियों में से एक चौथाई को हटाकर उनकी जगह युवक कांग्रेस के मेम्बरों को दी जाये। केन्द्रीय सरकार में जो लोग ऊँचे-ऊँचे पदों पर तैनात थे उनके बारे में उसने छानबीन शुरू भी कर दी थी। ग्रफ़सरों को 1 सफ़दरजंग रोड बुलाया जाता था, संजय ग्रौर धवन उनका इण्टरव्यू लेते थे ग्रौर इसके बाद या तो उन्हें ग्रपने पदों पर बने रहने दिया जाता था या फिर हटा दिया जाता था।

लेकिन यह काफ़ी नहीं था। संजय चाहता था कि कैबिनेट में ग्रौर राज्यों में उसके ग्रादमी रहें। इसी तरह से इस बात का पूरा यक़ीन हो सकता था कि वह जो ग्रादेश देगा उनका पूरी तरह पालन किया जायेगा। उसने बंसीलाल को, जो सोलह ग्राने वफ़ादार ग्रौर उसके ग्रपने ग्रादमी थे, कैबिनेट में पहुँचा दिया। कैबिनेट में उनका काम था सख्त लाइन ग्रपनाना—बिलकुल वैसी ही जैसी कि घराना चाहता था। बंसीलाल रक्षामंत्री बनना चाहते थे ग्रौर बन भी गये। इसकी वजह बिलकुल साफ़ थी।

लेकिन वह यह भी नहीं चाहते थे कि उनकी ग्रपनी जागीर हरियाणा से उनका नाता बिलकुल ही टूट जाये। इसलिए उनके बाद जब बनारसीदास गुप्ता वहाँ के मुख्यमंत्री बने (उन्हें भी इसके लिए खुद बंसीलाल ने ही चुना था), तो उनसे कह दिया गया कि 'ग्रसली मुख्यमंत्री' बंसीलाल ही रहेंगे ग्रौर उन्हें उनकी बात 'सुननी होगी'।

श्रीमती गांधी ने ग्रस्सी बरस के बूढ़े मंत्री उमाशंकर दीक्षित को हटा देने की संजय की इच्छा भी पूरी कर दी। उनके लिए यह बहुत बड़ा फ़ैसला था क्योंकि 1971 के चुनाव के वक़्त से पार्टी के खज़ांची की हैसियत से दीक्षितजी ने श्रीमती गांधी की तरफ़ करोड़ों रुपये जमा किये थे ग्रौर बाँटे थे। इधर कुछ दिनों से श्रीमती गांधी उनसे नाराज़ थीं क्योंकि उनकी बहू सरकार के काम-काज में दखल देने लगी थी।

श्रीमती गांधी ने दीक्षितजी के बेटे की बदली दिल्ली के बाहर करवा दी थी ताकि हर बात में अपनी टाँग अड़ानेवाली उनकी बहू से पीछा छूटे, लेकिन बहू दीक्षितजी का हाथ बँटाने के लिए यहीं रह गयी। श्रीमती गांधी को ऐसी बहुओं से निबटने का पहले भी अनुभव था। कुछ समय पहले जब कमलापति त्रिपाठी दिल्ली लाये गये थे, उनकी 'बहूजी' के पर भी श्रीमती गांधी ने कतर दिये थे।

दीक्षितजी के मंत्रिमण्डल से हटा दिये जाने पर दूसरे मंत्री सहम गये। कुछ ही दिन बाद दीक्षितजी तो कर्नाटक के गवर्नर बनाकर भेज दिये गये, लेकिन दूसरे मंत्री सोचने लगे कि अगर आज दीक्षितजी के साथ यह हो सकता है तो कल उनके साथ भी हो सकता है। वे और भी तावेदार बन गये।

उन्होंने एक और पुराना हिसाब भी चुका लिया। उन्होंने स्वर्णसिंह को कैबिनेट से निकाल दिया। वह इस बात को भूली नहीं थीं कि इलाहाबाद हाईकोर्ट के फ़ैसले के बाद उन्होंने पूरे एक दिन टालमटोल करने के बाद उस बयान पर दस्तखत किये थे जिसमें उनके प्रति पूर्ण विश्वास का ऐलान किया गया था। इस तरह उन्हें ढिल्लों को हटाकर उनकी जगह बलिराम भगत को स्पीकर बना देने में बड़ी मदद मिली। विदेश मंत्रालय के राज्यमंत्री के पद से हटा दिये जाने के बावजूद बलिराम भगत उनके स्वामिभक्त सेवक बने रहे थे। सिक्ख होने के नाते ढिल्लों बड़ी आसानी से स्वर्णसिंह की जगह ले सकते थे।

श्रीमती गांधी पी० सी० सेठी को उर्वरक तथा रसायन मंत्री बनाकर ले आयीं। मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री की हैसियत से वह 'घराने' के बहुत निकट आ गये थे। दीक्षितजी के चले जाने के बाद सेठों से पैसा वसूल करने के लिए किसी को तो पार्टी का खज़ांची बनाना ही था और सेठी ने यह काम बड़ी खूबी से सँभाल लिया।

केन्द्र में अपने मोहरे बिठाकर संजय को सन्तोष नहीं हुआ। वह राज्यों में भी अपने ही मुख्यमंत्री चाहता था। उसने सबसे पहले उत्तर प्रदेश की सफ़ाई करने का बीड़ा उठाया और हेमवतीनन्दन बहुगुणा को वहाँ के मुख्यमंत्री की कुर्सी पर से हटा दिया। इस परिवर्तन के लिए माँ और बेटा दोनों राज़ी थे। बहुगुणा नज़रों से इसलिए उतर गये थे कि उनके 'हौसले बहुत बढ़ते जा रहे थे'। माँ-बेटे को शक था कि वह अपनी साख एक बहुत बड़े राष्ट्रीय नेता की हैसियत से जमाने की कोशिश कर रहे थे, जो आगे चलकर प्रधानमंत्री बन सकता था। उत्तर प्रदेश विधानसभा के 1974 वाले चुनाव में कांग्रेस की जीत के बाद (उसे 425 सदस्यों के सदन में 216 सीटें मिली थीं) उन्होंने मतदाताओं को धन्यवाद देने के लिए एक पोस्टर छपवाया था जिसमें उनकी तसवीर थी। यह इस बात का काफ़ी सबूत था कि वह अपने को सामने रखने और बड़े बन जाने की तमन्ना रखते थे—श्रीमती गांधी की टक्कर पर, जो खुद भी उत्तर प्रदेश की ही थीं। दरअसल उनको हटाने का फ़ैसला जून 1975 में ही कर लिया गया था लेकिन इमर्जेंसी की वजह से यह फ़ैसला टल गया था। कुछ लोगों का कहना था कि अगर इलाहाबाद हाईकोर्ट के फ़ैसले का मसला न अटका होता तो वह पहले ही हटा दिये गये होते। खयाल यह था कि वह असर डालकर फ़ैसला बदलवा सकते हैं।

उसके बाद तो उन्हें और भी अच्छा बहाना मिल गया था। यशपाल कपूर ने, जो श्रीमती गांधी की तरफ़ से उत्तर प्रदेश के मामलात की देखभाल करते थे, यह 'खोज' की थी कि बहुगुणा ने संजय और उसकी माँ को 'नष्ट' कर देने के लिए एक 'यज्ञ' करने का काम चार तान्त्रिकों को सौंप रखा है। उनमें से दो ने तो यह बात 'क़बूल भी कर ली थी'। मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री पी० सी० सेठी की मदद से यशपाल कपूर ने उन दोनों का वहाँ पता लगवाकर उन्हें मीसा में गिरफ्तार भी करवा दिया था।

(बहुगुणा ने मुझे बताया कि यह सारा क़िस्सा 'बिलकुल बे-बुनियाद' है और 'जिन तान्त्रिकों की ये लोग बातें करते हैं' उनका कहीं कोई नाम-निशान नहीं है। मुमकिन है कि बूढ़े वैद्यजी को, जो कमलापति त्रिपाठी समेत उत्तर प्रदेश के बहुत-से नेताओं का इलाज कर चुके हैं, तान्त्रिक समझ लिया गया हो।)

श्रीमती गांधी ने बहुगुणा से इस्तीफ़ा देने को कहा और उन्होंने 29 नवम्बर को इस्तीफ़ा दे दिया। मुख्यमंत्री का पद छोड़ने के बाद बहुगुणा ने श्रीमती गांधी से मिलने की कोशिश की लेकिन इसमें कामयाब नहीं हो सके। उन्होंने कभी मिलने का वक़्त ही नहीं दिया। उन्हें अपनी बात कहने का मौक़ा भी नहीं दिया गया क्योंकि उनके हर बयान के लिए पहले सेंसर की मंज़ूरी लेना ज़रूरी था।

बहुगुणा की जगह संजय ने नारायणदत्त तिवारी को बिठा दिया। कुछ ही दिन में इनको नई दिल्ली तिवारी कहा जाने लगा क्योंकि वह भाग-भागकर बार-बार दिल्ली जाते रहते थे। केन्द्र में उत्तर प्रदेश के जितने नेता थे वे सब उनको मुख्यमंत्री बनाने के खिलाफ़ थे लेकिन संजय वहाँ अपना आदमी चाहता था जिसकी आड़ में वह उत्तर प्रदेश पर शासन कर सके। जब भी वह लखनऊ आता था या लखनऊ से चलने लगता था तो वहाँ का पूरा मंत्रिमण्डल उसे सलामी देने के लिए हाज़िर रहता था।

श्रीमती गांधी अपनी सरकार के बारे में नयेपन की भावना पैदा करने के लिए आयेदिन जो इस तरह के परिवर्तन करती रहती थीं उससे किसी को भी कोई फ़ायदा नहीं होता था। लेकिन इस बार केन्द्र और राज्यों में जो परिवर्तन किये गये थे वह एक मक़सद से किये गये थे—जो वफ़ादार थे उन्हें इनाम देने के लिए और जिनकी वफ़ादारी के बारे में शक था उन्हें सज़ा देने के लिए। बहरहाल, यह तो कामचलाऊ हल था; कोई पक्का बन्दोबस्त करना ज़रूरी था।

उनके मन में संविधान को बदलने की धुन समायी हुई थी। संविधान में जो क़ायदे-क़ानून बनाये गये थे उनकी वजह से 'रोड़ा अटकानेवाले छोटे-छोटे गिरोहों को गड़बड़ी फैलाने और संकट पैदा करने के लिए बेहद मौक़ा' मिल गया था। श्रीमती गांधी यह महसूस करती थीं कि सरकार से तो यह उम्मीद की जाती है कि वह 'यह करे, वह करे,' लेकिन विपक्ष को जो भी जी में आये करने की छूट है। इसीलिए वह इस बात पर ज़ोर देने लगीं कि नागरिकों के कर्त्तव्यों की एक सूची होनी चाहिए, जिनका पालन न करने पर सज़ा दी जानी चाहिए।

उनके लिए यह बात महत्त्व तो रखती थी लेकिन बुनियादी नहीं थी। उनका ध्यान इससे भी बड़ी किसी चीज़ पर केन्द्रित था। क्या यह बेहतर नहीं होगा कि वह शासन की राष्ट्रपति-प्रणाली अपना लें, कुछ उस तरह की जैसी फ्रांस में है—फ्रांस की वह हमेशा से बहुत बड़ी प्रशंसक थीं। संसदीय तरीक़े से काम बहुत धीमे होता है, और कभी-कभी तो उससे कोई 'नतीजा नहीं निकलता,' और उसमें जो आदमी चोटी पर होता है उसे खुलकर अपनी मर्ज़ी से काम करने का कभी मौक़ा नहीं मिलता।

संजय इसी बात को बिलकुल दो-टूक ढंग से कहता था। उसका कहना था कि राष्ट्रपति-प्रणाली सारी ताक़त एक आदमी के हाथ में सौंप देती है और उस पर संसद या मंत्रिमण्डल की कोई रोक नहीं होती, और न ही उसके खिलाफ़ अविश्वास प्रस्ताव पास किया जा सकता है। वह इसके पक्ष में था कि संविधान को फिर से बनाने के लिए—उसे बिलकुल बदल देने के लिए एक नयी कांस्टीच्युएंट असेम्बली (संविधान सभा) बनायी जाये।

बीच-बीच में गोखले और कुछ दूसरे लोग क़ानून की प्रणाली में बुनियादी सुधार की बातें करते रहते थे। लेकिन उन्होंने यह कभी नहीं बताया था कि उनके मन

में क्या बात है।

सच तो यह है कि कुछ 'प्रगतिशील लोगों' की राय संविधान को इस तरह बदल देने के पक्ष में थी कि वह समाज की ज़रूरतों को और ज़्यादा हद तक 'पूरा कर सके'। ये लोग नहीं चाहते थे कि सम्पत्ति को मूल अधिकार माना जाये; न ही वे यह चाहते थे कि संविधान की व्याख्या करने की आड़ में अदालतें संसद की सर्वोच्च सत्ता में किसी तरह की कतर-ब्योंत करें।

लेकिन ये 'प्रगतिशील लोग' भी इस बात के खिलाफ़ थे कि संविधान में बड़े पैमाने पर कोई बुनियादी परिवर्तन किये जायें। वे नहीं चाहते थे कि चौतरफ़ा परिवर्तन के द्वार खोल दिये जायें और देश की संविधान सभा में भाग लेनेवाले सभी दृष्टिकोणों को ध्यान में रखकर बहुत सोच-समझकर तैयार किये गये इस संविधान को बुनियादी तौर पर बदला जाये।

और वे श्रीमती गांधी को घेरे रहनेवाले लोगों के इस तरह के इशारों के तो कट्टर विरोधी थे कि राष्ट्रपति-प्रणाली अपना लेने से देश का शासन बेहतर ढंग से चलाया जा सकता है। सत्ताधारियों के निकट के लोगों की दलीलों में जो यह एक इशारा छिपा रहता था कि इमर्जेंसी की बदौलत जो 'अनुशासन' और 'शान्ति' हमें नसीब हुई है उसे 'राष्ट्रपति-प्रणाली जैसी किसी चीज़' के ज़रिये ही मज़बूत किया जा सकता है।

संविधान के बारे में जो कुछ सोचा जा रहा था उसे ठोस रूप लन्दन में भारत के हाई-कमिश्नर बी० के० नेहरू ने दिया, जो श्रीमती गांधी के क़रीबी रिश्तेदार भी थे। उन्होंने फ्रांस जैसे संविधान का सुझाव दिया, जिसमें सबसे ऊपर प्रधानमंत्री की जगह राष्ट्रपति हो। बी० के० नेहरू चाहते थे कि श्रीमती गांधी भारत की द'गाल बन जायें।

बम्बई से रजनी पटेल ने इस रूपरेखा में और रंग भरा और फिर एक नोट तैयार करके एक खुफ़िया दस्तावेज़ की तरह लोगों में बाँटा गया। कोई यह नहीं कहना चाहता था कि ये विचार उसके हैं और किसी को इसकी चिन्ता भी नहीं थी। लेकिन यह नोट भी बहुत-कुछ 1969 में ए० आई० सी० सी० के बंगलौर अधिवेशन के वक़्त, जब कांग्रेस के दो टुकड़ों में बट जाने के सिलसिले की शुरुआत हुई थी, श्रीमती ग़ांधी के 'फुटकर विचार' जैसा ही था।

इस नोट में कहा गया था, "पिछले पच्चीस वर्षों के दौरान हमारे देश में जनतन्त्र के काम करने के अनुभव को देखते हुए" इस बात की ज़रूरत है कि संविधान का मौजूदा रूप बदला जाये। "इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए, और बातों के अलावा, इस बात का पक्का बन्दोवस्त किया जाना चाहिए कि जब स्वतन्त्र और न्यायोचित चुनाव के बाद जनता एक निश्चित अवधि के लिए किसी सरकार के प्रति अपना विश्वास प्रकट कर दे तो उस सरकार को जनता के हित में बिना किसी रोक-टोक के पूरी अवधि तक काम करने का मौक़ा मिले; ताकि राष्ट्र का प्रमुख कार्यपालक अधिकारी अपनी बुद्धि और अपनी अन्तरात्मा के अनुसार, किसी बेजा छूट या बाधा के बिना, किसी से डरे या किसी के साथ पक्षपात किये बिना राष्ट्र की भरपूर भलाई के लिए सत्ता का समुचित उपयोग कर सके।"

इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए जो ठोस सुझाव दिये गये थे उनमें एक सुझाव यह भी शामिल था कि राष्ट्रपति को, जो मुख्य कार्यपालक होगा, सीधे देशव्यापी चुनाव के जरिये छः साल के लिए चुना जायेगा और संसद की अवधि भी छः साल की होगी। राष्ट्रपति का चुनाव अमरीका की तरह नहीं होगा जहाँ पहले कुछ

प्रतिनिधि चुन लिये जाते हैं और वे राष्ट्रपति का चुनाव करते हैं। "चूंकि हमारा राष्ट्रपति इस तरह जनता के सीधे वोट से चुना जायेगा इसलिए इस परिस्थिति में उसकी साख और सत्ता अमराका के राष्ट्रपति से भी बढ़कर होगी," जो बहुत-कुछ हद तक दो सदनों के बीच, कांग्रेस और सीनेट के बीच, पिसकर रह जाता है।

राष्ट्रपति-प्रणाली का दूकान सजाने की बहुत कोशिश की गयी लेकिन बहुत-से कांग्रेसी इस झाँसे में आने को तैयार नहीं थे। हालाँकि उन्होंने इमर्जेंसी के खिलाफ़ अपनी ज़बान नहीं खाली थी, लेकिन वे उसकी सख्तियों को तो महसूस कर ही रहे थे। वे नहीं चाहते थे कि वह हमेशा के लिए क़ायम रहे। उन्हें डर था कि अगर राष्ट्रपति-प्रणाली लागू हो गयी तो यही होगा।

श्रीमती गांधी ने बेहतर यही समझा कि इस मामले को यहीं छोड़ दिया जाये और इसके बजाय संविधान में बुनियादी परिवर्तन करने का अधिकार अपने हाथ में ले लिया जाये। बाद में चलकर, अगर मुमकिन हुआ तो, राष्ट्रपति-प्रणाली का विचार फिर उठाया जा सकता है।

चंडीगढ़ में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में 30 दिसम्बर को जो प्रस्ताव पास किया गया उसमें सिर्फ़ इतना कहा गया था कि संविधान को इस तरह बदल दिया जाये कि वह "जनता की मौजूदा ज़रूरतों को ज़्यादा हद तक पूरा कर सके।"

श्रीमती गांधी न सही, पर संजय को इस बात की ज़्यादा चिन्ता थी कि इमजसी और ज़्यादा दिन तक चलती रहे और मार्च 1976 में जो चुनाव होनेवाले थे उन्हें टाल दिया जाये। इधर कुछ दिनों से 'घराने' ने यह कहना शुरू कर दिया था कि 'इमर्जेंसी से जो कुछ मिला है' उसे अभी पुख्ता करना है। यूनुस पूछा करते थे, "आखिर चुनाव कराने की ऐसी जल्दी क्या है ?" चुनाव तो एक तरह की एय्याशी थे और उन्हें चार-पाँच साल के लिए टाला जा सकता था।

बंसीलाल ने संजय की हाँ-में-हाँ मिलाते हुए चुनाव टाल देने की पैरवी की। वह कांग्रेसी संसद-सदस्यों से कहा करते थे कि लोगों को चुनाव की नहीं अपनी रोजी की फ़िक्र है। "अगर उन्हें रोटी दे दो, तो बेखटके राज करते रहो। आखिर भरत ने भगवान राम के खड़ाऊँ के सहारे देश पर चौदह साल तक राज किया ही था।"

कांग्रेस अधिवेशन ने एक प्रस्ताव पास किया जिसे सिद्धार्थशंकर रे ने पेश किया था : "आर्थिक तथा राजनीतिक स्थिरता लाने में निरन्तरता को सुनिश्चित बनाने के लिए कांग्रेस संसद में कांग्रेसी दल का आवाहन करती है कि वह संविधान की धारा 83[1] के अन्तर्गत वर्तमान लोकसभा की अवधि को बढ़ाने के लिए उचित क़दम उठाये।"

यह वही सिद्धार्थशंकर रे थे जिन्होंने इमर्जेंसी के विचार को क़ानूनी रूप दिया था।

इस अधिवेशन ने सरकार को इमर्जेंसी की अवधि भी बढ़ा देने का अधिकार दे दिया। श्रीमती गांधी ने प्रतिनिधियों को बताया कि सरकार का निकट भविष्य में इमर्जेंसी उठाने का कोई इरादा नहीं है। उसे देश की एकता और उसके ज़िन्दा रहने का भी तो ध्यान रखना था।

सच तो यह है कि इन्दिरा गांधी का, मुख्यमंत्रियों का, सरकारी अफ़सरों का, सभी का इमर्जेंसी में कुछ निजी फ़ायदा था। कोई बुराई नहीं कर सकता था, कोई विरोध नहीं कर सकता था। जो कुछ वे चाहते थे वही क़ानून था। उनको बस जुबान

1. धारा 83 में कहा गया है—"जबकि इमर्जेंसी की घोषणा लागू हो तो संसद क़ानून के अनुसार लोकसभा की अवधि को एक बार में एक वर्ष के लिए बढ़ा सकती है।"

हिलाने की ज़रूरत थी और हर काम हो जाता था। बात यह थी कि सरकार की सारी मशीनरी अब उस हिसाब से काम करती थी जिसे वे 'संवेदनशील प्रशासन' कहते थे।

कुछ दिन बाद कैबिनेट ने भी चुनावों को एक साल के लिए टाल देने का फ़ैसला करके कांग्रेस के प्रस्ताव पर अपनी मुहर लगा दी। किसी भी मंत्री ने इसके ख़िलाफ़ आवाज़ तक नहीं उठायी। सच तो यह है कि बंसीलाल ने हँसकर कहा कि चुनाव तो कम-से-कम पाँच साल के लिए टाल दिये जाने चाहिए।

कांग्रेस के इस अधिवेशन में संजय को बाक़ायदा एक नेता के रूप में पेश किया गया। बहुत छोटा-सा समारोह था जिसमें बेटा छाया हुआ था—माँ की बदौलत। लगभग बीस साल पहले जब श्रीमती गांधी कांग्रेस की अध्यक्ष थीं तो उनके बाप नेहरू ने उनके सामने झुककर कहा था, "हमारी अध्यक्ष महोदया।"

कांग्रेस के पण्डाल में कमरे बस तीन ही थे—एक श्रीमती गांधी के लिए, एक पार्टी के अध्यक्ष के लिए और एक संजय के लिए। सबसे ज़्यादा भीड़ उसी के कमरे में रहती थी। सबसे ज़्यादा वाहवाही उसी की होती थी क्योंकि कांग्रेस में बहुत-से लोग यह समझने लगे थे कि यही चढ़ता हुआ सूरज है। जिधर भी वह जाता कांग्रेसियों की भीड़ उसके पीछे चलती। श्रीमती गांधी ने समझा कि यह संजय गांधी की लोकप्रियता का और भी ज़्यादा सबूत है। वह यह नहीं समझ पायीं कि उसकी सारी 'लोकप्रियता'—और ताक़त—उन्हीं के दम से है। चारों ओर भ्रम का ऐसा वातावरण था कि कोई सच्चाई को जानने की परवाह ही नहीं करता था। और उन्हें सच बात बताने के लिए न कोई अख़बार था और न कोई मंच।

ख़ुफ़िया रिपोर्टों से पता चलता था कि बुद्धिजीवी बहुत 'नाराज़' हैं, अख़बारों में ख़बरें न छपने से उनमें गुस्सा है और वे बी० बी० सी० और वॉयस ऑफ़ अमेरिका के रेडियो कार्यक्रम सुनने लगे हैं।

जैसा कि संजय अकसर कहा करता था, उसे बुद्धिजीवियों से नफ़रत थी। उसने काम करने का ख़ुद अपना एक तरीक़ा निकाल लिया था और उससे कामयाबी भी मिलती थी। जो मिल-मालिक, दूकानदार या सरकारी अफ़सर 'उसकी आज्ञा मानने से इंकार करते थे', उनके घरों पर वह प्रणव मुखर्जी से कहकर इनकम-टैक्स, एक्साइज़ और एनफ़ोर्समेंट वालों से छापे डलवा देता था या उनका टैक्स के बक़ाये का पिछले दस साल का हिसाब खुलवा देता था, और जो लोग ज़रा भी अपनी मनमानी करने की कोशिश करते थे उनके पीछे वह ओम मेहता से कहकर पुलिस और सी० बी० आई० वालों को लगा देता था। इनकम-टैक्स, एक्साइज़ या सी० बी० आई० के विभागों में जो सबसे बड़े अफ़सर थे वे सभी संजय के इशारे पर चलते थे क्योंकि वह उनके फ़ायदे का पूरा ध्यान रखता था—रिटायर हो जाने के बाद नौकरी बढ़वा देना, ऊँचा ओहदा दिला देना और नौकरी की बेहतर शर्तें दिला देना।

संजय और श्रीमती गांधी जिस ताक़त पर भरोसा करते थे, पुलिस पर, उसकी वह अच्छी तरह देखभाल करते थे। सरकारी तौर पर इमर्जेंसी का ऐलान होने से पहले 25 जून को सुबह गृह-मंत्रालय के सेक्रेटरी के दफ़्तर में एक मीटिंग में इस बात पर ज़ोर दिया गया कि पुलिस का 'हौसला' बढ़ाये रखना बहुत ज़रूरी है और उनकी हर सुख-सुविधा का ध्यान रखा जाना चाहिए। बाद में उनकी और फ़ौजवालों की तनख़्वाहें बढ़ा दी गयीं; फ़ौजवालों की रिटायर होने की उम्र भी बढ़ा दी गयी।

पुलिसवालों ने और दूसरे लोगों ने अच्छा काम किया था; चारों ओर 'शान्ति' थी। लेकिन 'घराना' ख़ुश नहीं था। वहाँ हर वक़्त यही महसूस किया जाता था कि यह तूफ़ान से पहले की ख़ामोशी है। कम-से-कम श्रीमती गांधी के सेक्रेटरी पी० एन० धर

तो जिससे भी मिलते थे उससे यही पूछते थे कि खुफ़िया विभाग वाले जो 'शान्ति' की ख़बरें देते हैं क्या वे सच हैं, लेकिन कोई उन्हें असलियत नहीं बताता था। हालाँकि अब श्रीमती गांधी की यह आदत हो गयी थी कि वह वही बातें सुनती थीं जो उनको अच्छी लगती थीं, लेकिन कभी-कभी वह भी सोचती थीं कि जो खबरें उन्हें दी जाती हैं क्या वे सही और सच्ची हैं। जो कुछ मालूम न हो पाये उसका डर तो लगा ही रहता है।

सरकार ने 5 जनवरी को संसद के सामने इमर्जेंसी को कुछ समय के लिए और बढ़ा देने की और मार्च में होनेवाले चुनावों को कुछ समय के लिए टाल देने की कांग्रेस की सिफ़ारिश पेश की।

विपक्ष के ज़्यादातर सदस्यों ने संसद के अधिवेशन के पहले दिन की कार्रवाई में भाग नहीं लिया, जिस दिन राष्ट्रपति ने वहाँ भाषण दिया था। उनके भाषण के बाद, जिसमें उन्होंने ग़रीबों को नयी सुविधाएँ देने, परिवार नियोजन का काम और तेज़ी से चलाने और व्यापार पर लगी हुई कुछ पाबन्दियों में ढील देने के सरकार के कार्यक्रम की रूपरेखा पेश की गयी थी, सरकार-विरोधी सदस्य सदन में आकर बैठे और उन्होंने इमर्जेंसी पर भरपूर हमला किया। पी० जी० मावलंकर ने ज़ोर देकर कहा कि "संसदीय जनतन्त्र को तोड़-मरोड़कर उसकी शक्ल बिगाड़ दी गयी है।" एक और सदस्य समर मुखर्जी ने कहा, "संसद की भूमिका की जड़ खोखली कर दी गयी है और ख़तरा इस बात का है कि उसे और भी खोखला कर दिया जायेगा।"

कृष्णकान्त ने कहा :

> जो बुनियादी सवाल हमें खुद अपने से पूछना चाहिए वह यह है कि जिन कामयाबियों का दावा किया जा रहा है क्या उन्हें हासिल करने के लिए दमन और अत्याचार के इन सारे उपायों की सचमुच ज़रूरत है। हमने एक जनतान्त्रिक संविधान अपनाया था और यह फ़ैसला किया था कि जनतान्त्रिक तरीक़ों से राष्ट्रीय लक्ष्यों तक पहुँचने के लिए हम एक स्वतन्त्र और खुला समाज बनायेंगे। क्या ट्रेनों को ठीक वक़्त से चलाने के लिए हमें मुसोलिनी के दार्शनिक विचार से सबक़ सीखना पड़ेगा? क्या दफ़्तरों में और अर्थ-व्यवस्था में अनुशासन लाने के लिए हमारे लिए ज़रूरी है कि हम हिटलरी तरीक़े अपनायें? क्या हमें चीज़ों की क़ीमतें घटाने के लिए अय्यूब ख़ाँ और याह्या ख़ाँ से सबक़ सीखना होगा? क्या हमारे लिए ज़रूरी है कि लोगों की नागरिक स्वतन्त्रताएँ छीनने के लिए वैसी ही दलीलें दें जैसी कि उगांडा में ईदी अमीन या फ़िलीपींस में मार्कोस या यूनान में फ़ौजी जनरल देते हैं। मुसोलिनी की शुरू-शुरू की कामयाबियों से चर्चिल जैसे लोग भले ही धोखे में आ गये हों और कुछ समय के लिए डिक्टेटरों की तारीफ़ करने लगे हों, लेकिन नेहरू जैसे दूरदर्शी लोग इस तरह के दावों के जाल में नहीं फँसे। उन्होंने इन कार्रवाइयों की बाहरी सजावट की तह में जाकर देखा और असलियत को जान लिया। यही वजह है कि हमने गांधीजी से प्रेरणा लेकर दूसरा ही रास्ता अपनाया।
>
> मैं जिस बुनियादी सवाल की बात कर रहा था, वह यह है कि समाजवाद की मंज़िल तक पहुँचने के लिए क्या हमें जनतन्त्र और जनतान्त्रिक तरीक़ों पर भरोसा है? इमर्जेंसी की क़ामयाबियों का जो ढिंढोरा पीटा जा रहा है क्या वह इस बात को मान लेने का और भी ज़ोरदार ऐलान नहीं है कि जनतान्त्रिक तरीक़े नाक़ामयाब हो गये हैं और उन पर से हमारा भरोसा

उठ गया है ?

क्या हम यह ऐलान कर रहे हैं कि महात्मा बुद्ध की तरह गांधीजी का भी इस देश के लिए कोई इस्तेमाल नहीं है ? बौद्ध-धर्म चीन, जापान और एशिया के दूसरे देशों में पनपा लेकिन भारत में नहीं पनपा, जहाँ महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ था और जहाँ उन्होंने उपदेश दिया था। आज जबकि सारी दुनिया गांधीजी से सीखने की कोशिश कर रही है, जिन्हें आधुनिक युग के लिए सबसे काम का आदमी समझा जाने लगा है, हम लोग इस देश में ही उन रवैयों को, उन तरीक़ों को छोड़ते जा रहे हैं जिनका उन्होंने सुझाव दिया था और जिन पर उन्होंने अमल किया था।

शायद हमारे लिए अपने-आपको उस बात की याद दिलाना फ़ायदेमंद होगा जो प्रधानमंत्री ने 1969 में कही थी : "ग़रीबी के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए डिक्टेटरशिप ज़रूरी नहीं है और न डिक्टेटरशिप से जनता को ताक़त ही मिलती है।" अध्यक्ष महोदय, भारतीय समाज में जो असली संकट पैदा हो गया था वह राजनीतिक भ्रष्टाचार था, जिसकी वजह से सार्वजनिक जीवन के सभी आदर्श कमज़ोर पड़ गये थे और आर्थिक तथा सामाजिक संकट ने हमें घेर लिया था। यह सच है कि ऐसी हालत पैदा करने के लिए सभी राजनीतिक पार्टियाँ ज़िम्मेदार हैं—चाहे वो सरकार में हों या विपक्ष में। लेकिन ज़ाहिर है कि इसके लिए शासक ज़्यादा ज़िम्मेदार हैं। असली समस्या यह है कि राजनीतिक पार्टियों और राजनीतिक नेताओं पर से लोगों का विश्वास उठ गया है और सार्वजनिक तथा राजनीतिक जीवन की सारी गन्दगी को दूर करने के लिए हम सबको मिलकर कोई फ़ैसला करना होगा।

यह तो पहले ही से मालूम था कि इमर्जेंसी को जारी रखने और चुनावों को टाल देने के सुझावों को संसद की मंज़ूरी मिल जायेगी। कांग्रेसी अब बहुत खुश दिखायी पड़ रहे थे कि उन्हें अब यह समझाने के लिए कि इमर्जेंसी क्यों लागू की गयी मतदाताओं के सामने नहीं जाना पड़ेगा।

लेकिन उनमें से कुछ को संविधान सभा की कार्रवाई की याद आयी। इमर्जेंसी के बारे में उसमें जो धारा (उस समय 275) थी उसमें पहले यह कहा गया था कि अगर राष्ट्रपति को इस बात का पूरा यक़ीन हो कि गम्भीर इमर्जेंसी की हालत मौजूद है "जिससे देश की सुरक्षा को ख़तरा है, चाहे वह युद्ध से हो या घरेलू हिंसा से, तो वह ऐलान जारी करके इस आशय की घोषणा कर सकते हैं।"

बाद में इस धारा के शब्दों को बदलकर 'चाहे वह युद्ध से हो या घरेलू हिंसा से' की जगह ये शब्द रख दिये गये कि "चाहे वह युद्ध से हो या बाहरी आक्रमण से या भीतरी उपद्रव से", क्योंकि डॉ० अंबेडकर ने, जो उस समय क़ानूनमंत्री थे, कहा कि 'हो सकता है कि घरेलू हिंसा में बाहरी आक्रमण शामिल न हो।'

राष्ट्रपति को इतने असाधारण अधिकार दिये जाने की संविधान सभा के कुछ सदस्यों ने आलोचना की थी। प्रोफ़ेसर के० टी० शाह ने 'भीतरी उपद्रव' को शामिल करने पर गहरी चिन्ता प्रकट की और ज़ोर देकर कहा कि इस संशोधन में "राष्ट्रपति को ऐसी सत्ता और अधिकार देने की कोशिश की गयी है जो जनतान्त्रिक उत्तरदायी सरकार के साथ मेल नहीं खाते।" एच० वी० कामथ ने कहा कि दुनिया के किसी भी जनतान्त्रिक देश के संविधान में इस तरह की व्यवस्था नहीं है। उन्होंने इस विचार की तुलना हिटलर के सत्ता पर अधिकार करने से की जब उसने ऐसी ही धाराओं का

सहारा लेकर वाइमार संविधान को नष्ट कर दिया था। लेकिन कृष्णमाचारी ने सदन के अधिकांश सदस्यों की भावना को व्यक्त करते हुए कहा कि "इमर्जेंसी की बात सिर्फ़ एक उद्देश्य से शामिल की गयी है, इस उद्देश्य से कि इतने वर्षों तक हमने संविधान बनाने के लिए जो कोशिशें की हैं वे व्यर्थ न जाने पायें और आगे चलकर जिन लोगों के हाथ में सत्ता होगी उनके पास संविधान की रक्षा करने के लिए काफ़ी अधिकार हों।"

इस धारा के नये शब्दों को संविधान सभा ने बिना किसी परिवर्तन के मान लिया और बाद में उसे संविधान की धारा 352 के रूप में स्वीकार कर लिया गया।

सरकार ने आन्तरिक सुरक्षा क़ानून में भी हेर-फेर करके अपने अधिकार और बढ़ा लिये। इस क़ानून में किसी को भी, अदालतों को भी, कारण बताये बिना राजनीतिक क़ैदियों को नजरबन्द रखने और जिनकी नजरबन्दी के आदेश की मियाद पूरी हो गयी हो या आदेश रद्द कर दिये गये हों, उनको फिर से गिरफ़्तार करने की इजाज़त दी गयी थी। लोकसभा ने 22 जनवरी को 27 के खिलाफ़ 181 वोटों से इस क़ानून को अपनी मंज़ूरी दे दी।

मास्को का समर्थन करनेवाली कम्युनिस्ट पार्टी ने, जिसने इमर्जेंसी के दौरान सरकार को दिये गये अधिकारों का समर्थन किया था, पहली बार नजरबन्दी की मियाद बढ़ाने के अधिकारों का विरोध किया और विपक्ष का साथ दिया। कम्युनिस्ट सदस्य भी विपक्ष के साथ थोड़ी देर के लिए सदन से बाहर चले गये जब सदन में यह बिल पेश किया गया कि औद्योगिक मजदूरों को हर साल एक महीने की तनख्वाह के बराबर जो बोनस दिया जाता था वह 1976 में सिर्फ़ आधे महीने की तनख्वाह के बराबर दिया जाये और जिन कम्पनियों को मुनाफ़ा न हो वे 1977 में बिलकुल बोनस न दें।

मीसा क़ानून के सख्त बनाये जाने के खिलाफ़ गोखले ने कैबिनेट में आवाज़ उठायी। वह इस बात के पक्ष में थे कि अदालत में नजरबन्दी पर विचार हो। लेकिन जब यह फ़ैसला हो गया कि हर नजरबन्द के मामले पर विचार करने के लिए एक बोर्ड बनाया जायेगा ताकि अगर बोर्ड उसकी रिहाई का हुक्म न दे तो वह अदालत का सहारा ले सकता है, गोखले ने अपना ऐतराज़ वापस ले लिया।

ऐसा लगता है कि मीसा के क़ानून में यह नया संशोधन तमिलनाडु की स्थिति से निबटने के लिए किया गया था क्योंकि केन्द्र ने 21 जनवरी को वहाँ की करुणानिधि की सरकार को बर्खास्त कर दिया था। गवर्नर की रिपोर्ट गृह मंत्रालय में तैयार की गयी और तमिलनाडु के गवर्नर के० के० शाह ने उस पर चूँ भी किये बिना दस्तखत कर दिये। इस रिपोर्ट में कहा गया था कि राज्य की सरकार ने इमर्जेंसी में दिये गये अधिकारों का दुरुपयोग करने और बड़े पैमाने पर हर तरफ़ भ्रष्टाचार की छूट देने के अलावा बीच-बीच में 'अलग हो जाने की ढकी-छिपी धमकियाँ' भी दी थीं। डी० एम० के० की सरकार के खिलाफ़ भ्रष्टाचार, कुनबापरवरी, प्रशासन और पैसे के मामले में तरह-तरह की गड़बड़ियों और सरकारी पद का बेजा फ़ायदा उठाने के जो आरोप लगाये गये थे उनकी जाँच करने के लिए भारत सरकार ने सुप्रीम कोर्ट के जज आर० एस० सरकारिया की निगरानी में एक कमीशन बिठा दिया। करुणानिधि को हुक्म न मानने की सज़ा देना ज़रूरी था।

तमिलनाडु में सरकार की बागडोर केन्द्र के हाथों में ले लिये जाने के बाद वहाँ गिरफ़्तारियों का बाज़ार गर्म हो गया। लगभग 9,000 आदमी गिरफ़्तार किये गये। कुछ दिन बाद उनकी संख्या घटते-घटते 2,000 रह गयी।

तमिलनाडु की तरह गुजरात में भी केन्द्रीय सरकार के इमर्जेंसी शासन के

क़ायदे-क़ानूनों का विरोध किया जा रहा था। हितेन्द्र देसाई ने, जो उस समय तक राज्य कांग्रेस के नेता बन चुके थे, फरवरी में एक रिपोर्ट में कहा कि ग़ैर-कांग्रेसी सरकार गुजरात में अमन-चैन क़ायम रखने में नाकामयाब रही है और वहाँ राजनीतिक हिंसा बढ़ती जा रही है। राष्ट्रपति ने वहाँ का शासन भी 13 मार्च 1976 को अपने हाथों में ले लिया।

तमिलनाडु और गुजरात में ग़ैर-कांग्रेसी सरकारों को जिस तरह हटा दिया गया था उससे विपक्ष की पार्टियों को पहले से भी ज़्यादा यह यक़ीन हो गया कि सिर्फ़ ज़िन्दा रहने के लिए भी उन्हें मिलकर एक हो जाना चाहिए। इमर्जेंसी के दौरान उन्होंने जो मुसीबतें झेली थीं उनकी वजह से वह एक-दूसरे के साथ बँध रही थीं। चार पार्टियों ने—संगठन कांग्रेस, जनसंघ, भारतीय लोकदल और सोशलिस्टों ने—कांग्रेस का और भी प्रभावशाली ढंग से विरोध करने के लिए 26 मार्च को एक ही पार्टी में मिल जाने की अपनी योजना का ऐलान किया। चारों पार्टियों को मिलाकर एक पार्टी बनाने का काम पूरा करने के लिए चार आदमियों की एक स्टीयरिंग कमेटी बना दी गयी। एक बयान में यह समझाया गया कि इस तरह मिलकर कार्रवाई करना इसलिए ज़रूरी हो गया है कि सरकार "जान-बूझकर हमारे जनतान्त्रिक ढाँचे को नष्ट करती रही है... और अब उसने एक निरंकुश शासन क़ायम कर लिया है जिसे वह हमेशा के लिए बनाये रखना चाहती है।" बयान में यह भी कहा गया कि इस मामले में जयप्रकाश ने भी "सलाह दी और मार्ग दिखाया।"

चरणसिंह अकेले आदमी थे जो चाहते थे कि चारों पार्टियाँ फ़ौरन मिलकर एक हो जायें। यह बात वह बहुत दिन से कहते आये थे। वह देख चुके थे कि किस तरह संयुक्त मोर्चे ने गुजरात में कांग्रेस के हाथों से सत्ता छीन ली थी। जनसंघ और सोशलिस्ट तैयार थे लेकिन उनके नेता जेल में थे। उनके लिए उनसे मंज़ूरी लेना ज़रूरी था। संगठन कांग्रेस ने कहा कि बेहतर यह होगा कि दूसरी राजनीतिक पार्टियाँ उसमें शामिल हो जायें क्योंकि 1969 में कांग्रेस के दो टुकड़े हो जाने के बाद उसके हाथ में इतनी सम्पत्ति आ गयी थी जिससे हर महीने 1,00,000 रुपये किराया आता था। उसका कहना था कि अगर उसने अपना नाम बदल दिया तो यह सारी सम्पत्ति श्रीमती गांधी की कांग्रेस को मिल जायेगी।

एक पार्टी बनाने की बातचीत रुक-रुककर चलती रही लेकिन कई महीने तक उसका नतीजा नहीं निकला। रास्ते में बहुत-सी रुकावटें थीं जिन्हें पार करना था।

जिस वक़्त देश के अन्दर विपक्ष की पार्टियों ने एकता की बात करना शुरू की, उन्हीं दिनों लन्दन में 24 अप्रैल को विदेशों में रहनेवाले लगभग 300 हिन्दुस्तानियों का एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन भारत में पाबन्दियाँ लगानेवाले शासन के ख़िलाफ़ मुहिम चलाने की योजना बनाने के लिए हुआ। कई प्रतिनिधियों ने कहा कि विदेशों में भारतीय अफ़सरों द्वारा प्रचार तथा भारत में सेंसरशिप ने राजनीतिक क़ैदियों तथा उनके साथ बर्ताव को अन्तर्राष्ट्रीय मसला बनने से रोक दिया है। इनमें से बहुतों ने कहा कि 1,75,000 से भी अधिक राजनीतिक विरोधी जेलों में थे तथा कई क़ैदियों के साथ नृशंस व्यवहार किया जा रहा था।

श्रीमती गांधी के शासन पर हमला करते हुए बोलनेवालों ने कहा, "जो चीज़ उनके नेतृत्व को कांग्रेस पार्टी के अन्दर चुनौतियों से बचाने के लिए शुरू हुई थी उसने अब बढ़कर एक पार्टी की एकतरफ़ा सत्ता को दी जानेवाली चुनौतियों से बचाव के उपाय का रूप धारण कर लिया है।"

लेकिन भारत में आज़ादी के दीवानों को अभी कोर्ट ने 28 अप्रैल को यह

फ़ैसला कर दिया कि सरकार को अदालत में सुनवायी के बिना अपने राजनीतिक विरोधियों को जेल में डाल देने का अधिकार है। चार जज इसके पक्ष में थे और एक खिलाफ़ था। इस फ़ैसले में सरकार के इस दावे का समर्थन किया गया था कि 1975 में लागू की गयी इमर्जेंसी के दौरान राजनीतिक क़ैदियों को निचली अदालतों में अपील दायर करके अपनी आज़ादी हासिल करने के लिए 'हेबियस कार्पस' का अधिकार नहीं है।

इलाहाबाद, बम्बई, दिल्ली, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, पंजाब तथा हरियाणा और राजस्थान के सात हाईकोर्ट 43 नज़रबन्द क़ैदियों की 'हेबियस कार्पस' की अर्जियों के पक्ष में फ़ैसला दे चुके थे। इन अदालतों ने यह रुख अपनाया था कि हालांकि बुनियादी अधिकारों के उल्लंघन की बुनियाद पर वे नज़रबन्दी के आदेश रद्द नहीं कर सकते थे, लेकिन उन्हें यह फ़ैसला करने का अधिकार तो है ही कि ये आदेश सही हैं या नहीं और स्वाभाविक न्याय और सामान्य क़ानून के सिद्धान्तों से मेल खाते हैं या नहीं। संविधान की धारा 226, जिसमें हाईकोर्टों को 'हेबियस कार्पस' का आदेश जारी करने का अधिकार दिया गया है बुनियादी अधिकारों वाले परिच्छेद का हिस्सा नहीं है, और इसलिए उसे इमर्जेंसी के अधिकारों के सहारे स्थगित नहीं किया जा सकता।

सरकार की ओर से नीरेन डे ने यह दलील दी कि "इमर्जेंसी के दौरान बुनियादी अधिकारों के मामले में भी राज्यसत्ता के हितों को व्यक्ति के हितों से ऊँचा स्थान दिया जाना चाहिए", नागरिकों पर "इमर्जेंसी के दौरान किसी भी अधिकार के लिए आन्दोलन न चलाने की पाबन्दी लगा दी गयी है", और यह कि "इस समय निजी अधिकारों का कोई क़ानून नहीं है।" दूसरी ओर, शान्तिभूषण ने यह दावा किया कि कुछ अधिकार, जिनमें वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अधिकार भी है, 'संविधान की देन' नहीं बल्कि जनतन्त्र का एक बुनियादी अंश है, जिन्हें इमर्जेंसी से भी नहीं छीना जा सकता।

सुप्रीम कोर्ट ने फ़ैसला सुनाया कि 27 जून 1975 को जारी किये गये राष्ट्रपति के आदेश को ध्यान में रखते हुए किसी भी आदमी को नज़रबन्दी के आदेश की क़ानूनी हैसियत को चुनौती देते हुए रिट की अर्ज़ी दायर करने का अधिकार नहीं है और यह कि 29 जून 1975 का ऑर्डिनेंस संविधान की दृष्टि से बिलकुल वैध है। इस ऑर्डिनेंस के ज़रिये मीसा के क़ानून में यह हेर-फेर कर दिया गया था कि नज़रबन्द किये जानेवाले आदमी को अब यह बताना ज़रूरी नहीं रह गया है कि उसे क्यों नज़रबन्द किया जा रहा है। जस्टिस ए० एन० रे, एम० एच० बेग, वाई० वी० चन्द्रचूड़ और पी० एन० भगवती ने बहुमत दृष्टिकोण का समर्थन किया और जस्टिस एच० आर० खन्ना ने इसके विरुद्ध राय ज़ाहिर की।

जस्टिस रे ने यह कहा कि वैयक्तिक स्वतन्त्रता के अधिकार सहित सारे बुनियादी अधिकार संविधान ने ही दिये हैं और संविधान के सहारे उन्हें छीना भी जा सकता है। पहले से सामान्य क़ानून के तहत 'हेबियस कार्पस' का कोई सहारा मौजूद नहीं था, और सामान्य क़ानून के तहत कोई भी अधिकार जो बुनियादी अधिकार के समान हो, बुनियादी अधिकार से अलग एक भिन्न अधिकार के रूप में नहीं रह सकता। क़ानून का शासन स्वतन्त्र समाज का पर्याय नहीं है; बुनियादी अधिकारों को लागू करवाने का अधिकार कुछ समय के लिए छीन लिये जाने का मतलब यह है कि इमर्जेंसी के दौरान इमर्जेंसी के क़ायदे-क़ानून ही क़ानून का शासन हो गये हैं। क़ानून के संवैधानिक शासन से अलग क़ानून का कोई शासन नहीं हो सकता और इमर्जेंसी के दौरान संविधान के प्रावधानों को रद्द कराने के लिए क़ानून के किसी शासन की दुहाई नहीं दी जा सकती।

जस्टिस भगवती ने कहा कि संकट के समय इस सिद्धान्त को ही सबसे बड़ा माना जाना चाहिये कि सार्वजनिक सुरक्षा ही सर्वोच्च क़ानून है। यह ज़रूरी नहीं है कि इमर्जेंसी का ऐलान करने के लिए युद्ध या बाहरी आक्रमण या भीतरी उपद्रव हो ही; बस इतना ही काफ़ी है कि इस तरह के किसी संकट का खतरा सर पर मँडरा रहा हो। जस्टिस बेग ने कहा कि इस अदालत के सामने ऐसा कोई मामला नहीं आया है जिसमें यह कहा गया हो कि सरकार ने अपने अधिकारों का बेजा इस्तेमाल किया है।

अपने अल्पमत फ़ैसले में जस्टिस खन्ना ने कहा कि संविधान में किसी भी अधिकारी को यह हक़ नहीं दिया गया है कि वह हाईकोर्टों से 'हेबियस कार्पस' का रिट जारी करने का अधिकार छीन ले। इमर्जेंसी के ज़माने में भी सरकार को इस बात का कोई अधिकार नहीं है कि वह क़ानून के सहारे के बिना किसी आदमी की जान या उससे उसकी स्वतन्त्रता ले ले। और जब तक किसी आदमी की जान और उसकी स्वतन्त्रता को इतना पवित्र नहीं माना जायेगा तब तक बिना क़ानून के चलनेवाले समाज और क़ानून के अनुसार चलनेवाले समाज के अन्तर का कोई मतलब ही नहीं रह जायेगा। अगर सरकार की दलील मान ली जाये तो कोई भी अधिकारी किसी भी आदमी को क़ानून का सहारा लिये बिना जब तक जी चाहे नज़रबन्द रख सकता है। सवाल यह नहीं है कि ऐसा हुआ है या नहीं, लेकिन सरकार की दलील मान लेने से यह नतीजा हो सकता है।

इस फ़ैसले पर लोगों को ताज्जुब हुआ और कुछ लोगों को तो निराशा भी हुई क्योंकि यह यक़ीन किया जाने लगा था कि जस्टिस चन्द्रचूड़ और जस्टिस भगवती नज़रबन्दों का पक्ष लेंगे और 'हेबियस कार्पस' की अर्ज़ी 2 जजों के खिलाफ़ 3 जजों की राय से मंजूर कर ली जायेगी। बहुमत में से एक जज ने यह भी कहा कि एक के बाद एक कई वकीलों ने यह डर ज़ाहिर किया है कि इमर्जेंसी के दौरान सरकार नज़रबन्द क़ैदियों को नंगा करके कोड़े लगवा सकती है, उन्हें भूखा मार सकती है, और अगर अदालत ने उसके हक़ में फ़ैसला दे दिया तो वह उन्हें गोली से भी उड़ा सकती है। लेकिन उन्हें इस बात पर बहुत सन्तोष था कि स्वतन्त्र भारत के नाम पर इस तरह के किसी कुकर्म का कलंक नहीं लगा था और उन्हें उम्मीद थी कि इस तरह की बातें कभी नहीं होंगी।

जब लोगों के साथ पाशविक अत्याचारों की दर्जनों मिसालें सामने आयीं तो साबित हो गया कि उनकी यह उम्मीद असल में कितनी ग़लत थी।

लोगों को तरह-तरह की यातनाएँ दी गयीं। उनको नंगा करके नाल लगे हुए 'फ़ौजी' बूटों से रौंदा गया; तलुओं पर बुरी तरह मारा गया; पिंडलियों की हड्डियों पर पुलिस की लाठियाँ, उस पर एक कांस्टेबुल को बिठाकर, बेलन की तरह घुमायी गयीं; उन्हें घंटों एक ही तरह से झुकाकर बिठाये रखा गया; रीढ़ की हड्डी पर मारा गया; दोनों कानों पर इतने तमाचे मारे गये कि मार खानेवाला बेहोश हो गया; राइफ़लों के कुंदों से मारा गया; शरीर के सूराखों में तार लगाकर बिजली दौड़ा दी गयी; सत्याग्रहियों को नंगा करके बर्फ़ की सिलों पर लिटाया गया; जलती हुई सिगरेटों और मोमबत्तियों से शरीर को दाग़ा गया; उन्हें खाने और पानी के बिना रखा गया और सोने नहीं दिया गया और अपना ही पेशाब पीने पर मजबूर किया गया; कलाई पीछे बाँधकर 'हवाई जहाज़' बनाकर लटका दिया गया। (जिसे हवाई जहाज़ बनाना होता था उसके दोनों हाथ पीठ के पीछे रस्सी से बाँध दिये जाते थे और फिर रस्सी को छत पर लगी हुई एक चर्ख़ी के ऊपर से ले जाकर खींच दिया

जाता था। आदमी ज़मीन से कई फ़ुट ऊपर उठ जाता था और पीठ के पीछे बँधे हुए हाथों से हवा में लटकता रहता था।)

यह सब-कुछ बाक़ायदा योजना बनाकर किया जाता था। दस-बारह सिपाही किसी क़ैदी को घेर लेते थे और चुनकर कोई यातना उस पर आज़माते थे। अगर उसके शरीर पर घाव का कोई निशान दिखायी देता था या उसकी जिस्मानी हालत पर कोई असर हो जाता था तो पुलिस उसे मजिस्ट्रेट के सामने पेश नहीं करती थी कि कहीं फटकार न पड़े। अगर क़ैदी को तलाश करने का वारंट जारी कर दिया जाता था तो पुलिसवाले उसे एक थाने से दूसरे थाने और दूसरे से तीसरे थाने पहुँचा देती थी। अधिकारियों के लिए मीसा एक वरदान था क्योंकि इस क़ानून के तहत गिरफ़्तार किया गया आदमी किसी अदालत में फ़रियाद भी नहीं कर सकता था।

जार्ज फ़र्नांडीज़ का अता-पता मालूम करने के लिए उनके भाई लारेंस फ़र्नांडीज़ को बंगलौर में उनके घर से पुलिस पकड़कर ले गयी।

उनकी कहानी उन्हीं की ज़बानी इस तरह है :

6 मई 1976 की रात को मैंने किसी को मेरा नाम लेकर पुकारते सुना। यह सोचकर कि कोई दोस्त होगा मैं फाटक की तरफ़ बढ़ा। देखता क्या हूँ कि मेरे घर के बाहर ही पुलिस की जीप खड़ी है। आवाज़ देनेवाला मुफ़्ती में पुलिस का एक अफ़सर था। उसने मुझसे कहा कि अदालत में माइकेल की रिट पिटीशन के सिलसिले में कोई बयान देने के लिए मुझे पुलिस ने बुलाया है। (लारेंस का छोटा भाई माइकेल इंडियन टेलीफोन इण्डस्ट्रीज़ में इंजीनियर था और वह भी मीसा में गिरफ़्तार कर लिया गया था।) यह सोचकर कि ज़्यादा वक़्त नहीं लगेगा मैं अपने बूढ़े माँ-बाप को बताये बिना ही घर से निकल पड़ा।

पुलिस ने एक घंटे तक मेरा बयान दर्ज किया और फिर मुझे जासूस विभाग के दफ़्तर ले गये। वहाँ किसी ने अचानक मेरे ज़ोर का थप्पड़ मारा। (कई मिनट तक मेरी आंखों के आगे अँधेरा छाया रहा।) जब मुझे होश आया तो मैंने महसूस किया कि उन लोगों ने मेरे सारे कपड़े उतार दिये थे।

वहाँ दस पुलिसवाले थे। उन्होंने मेरी धुनाई शुरू की। मेरे जिस्म के हर हिस्से पर लाठियाँ बरस रही थीं और एक-एक करके चार लाठियाँ टूट चुकी थीं। मैं फ़र्श पर पड़ा मारे दर्द के तड़प रहा था। मैंने हाथ जोड़कर उनसे दया की भीख माँगी, घुटनों के बल रेंगकर मैंने एक बार फिर उनसे हाथ जोड़कर बस करने को कहा। मगर वे मुझे फ़ुटबाल की तरह ठोकरें लगाते रहे। इसके बाद वे कहीं से एक मूसल ले आये और उससे मुझे कई बार मारा। वह भी टूट गया और मैं दर्द से चीख़ने लगा।

इसके बाद आख़िरी हल्ला हुआ। मैं फ़र्श पर पड़ा हुआ था और वे बरगद की जड़ लेकर मेरे ऊपर पिल पड़े। मैं बेहोशी और थोड़े-थोड़े होश के बीच मँडरा रहा था।

सुबह के लगभग तीन बजे होंगे जब मेरी आँख खुली और मैंने पानी माँगा। प्यास के मारे मेरी जान निकली जा रही थी। जब मैंने हाथ जोड़कर पानी माँगा तो एक अफ़सर ने पुलिसवालों से मेरे मुँह में पेशाब करने को कहा, लेकिन उन्होंने किया नहीं। जब मेरा दम बिलकुल फूलने लगता था तो वे दो-एक चम्मच पानी से मेरे होंठ तर कर देते थे। वे जानना चाहते थे कि जार्ज कहाँ है और जार्ज की बीवी लैला और उनका बेटा सितम्बर 1975 में बंगलौर क्यों आये थे। वे यह भी मालूम करना चाहते थे कि उनकी वापसी पर मैं उनके साथ मद्रास क्यों गया था।

मेरी हालत इतनी नाज़ुक थी कि उन्हें लगा कि मैं किसी भी क्षण दम तोड़ दूंगा। एक अफ़सर ने कांस्टेबलों से जीप तैयार करने को कहा। मैंने उस अफ़सर को अपने आदमियों से कहते सुना, "इसे चलती ट्रेन के आगे फेंक दो और कह देना कि इसने आत्महत्या कर ली।" मैं बिलकुल टूट चुका था। मेरे जिस्म के बाएँ हिस्से की न जाने कितनी हड्डियाँ टूट चुकी थीं और मेरी जाँघों में बला का दर्द हो रहा था। मेरी टाँगें और हाथ बुरी तरह सूज गये थे।

इसके बाद मुझे एक जीप पर ले जाया गया जो मल्लेश्वरम की तरफ़ जा रही थी। मैंने समझा कि शायद वह अफ़सर सचमुच अपनी धमकी पर अमल करने जा रहा है। मैं उससे दया की भीख माँगने लगा। ज़ाहिर है उन्होंने अपना इरादा बदल दिया था। मुझे व्यालिकवल की हवालात में ले जाकर बन्द कर दिया गया। अगले दिन मुझे फिर सी० ओ० डी० (जासूस विभाग) के दफ़्तर लाया गया।

वहाँ मैंने पहली बार एक औरत की जानी-पहचानी आवाज़ सुनी। वह स्नेहलता रेड्डी की आवाज़ थी। वह बुरी तरह चीख रही थी। पुलिस ने किसी को मेरी मालिश करने के लिए बुलवाया। उसने मेरे हाथ-पाँव पर तेल लगाया लेकिन थोड़ी ही देर बाद बोला कि मेरी मदद कर सकना उसके वश के बाहर है। उसने अफ़सरों को मुझे किसी अस्पताल पहुँचा देने की सलाह दी। लेकिन उन लोगों ने सुनी-अनसुनी कर दी।

अगले दिन मुझे उस कमरे को पहचानने के लिए, जिसमें जार्ज आकर ठहरा था, एक होटल में ले जाया गया। कुछ देर बाद फिर सी० ओ० डी० के दफ़्तर में लौटने पर मैं भूख से बेहाल लेट गया। जब मैं गिड़गिड़ाकर खाना माँगता तो पुलिस-वाले मुझ पर गालियों की बौछार कर देते। डॉक्टर बुलाया गया। उसने मुझे देख-दाखकर दवाएँ लिख दीं। इसके बाद कुछ दिन तक मुझे मल्लेश्वरम के थाने में रखा गया।

पाखाने-पेशाब के लिए भी पुलिसवालों को मुझे उठाकर ले जाना पड़ता था। 9 मई को ज़बर्दस्ती मेरे बाल काटे गये, दाढ़ी बनायी गयी और नहलाया गया, लेकिन कपड़े वही बदबूदार पहना दिये गये।

कुछ देर बाद दो अफ़सर सादी पोशाक पहने हुए आये और मुझे मोटर पर बिठाकर ले गये। मेरा धीरज टूट गया और मैं फूट-फूटकर रोने लगा। उन्होंने मुझसे कहा कि जो कुछ हुआ उसके लिए वे ज़िम्मेदार नहीं हैं। उन्होंने बताया कि उन्हें यह काम सौंपा गया था कि वह मेरी गिरफ़्तारी चित्रदुर्ग में (वहाँ से कोई 150 किलो-मीटर दूर एक छोटे-से कस्बे में) दिखायें।

लेकिन मुझे दावनगीर ले जाया गया। वहाँ मुझे बताया गया कि मुझे मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जायेगा और मुझे उससे यह कहना है कि मैं उसी दिन बस के अड्डे पर गिरफ़्तार किया गया था। इसके बाद मुझे एक छोटी-सी कोठरी में ढकेल दिया गया जहाँ खटमलों और काक्रोचों की भरमार थी।

वहाँ के दो इंस्पेक्टरों ने आकर मुझसे कहा कि अगर मैंने मजिस्ट्रेट के सामने पुलिस के ज़ुल्मों के बारे में एक बात भी मुँह से निकाली तो मेरे पूरे परिवार का नाम-निशान मिटा दिया जायेगा। वे मुझे मजिस्ट्रेट के घर ले जाने वाले थे लेकिन उन्होंने अपना इरादा बदल दिया और मुझे वापस लाकर हवालात की उसी कोठरी में डाल दिया।

बाद में मुझे नंगे पाँव चलाकर मजिस्ट्रेट की अदालत में ले जाया गया। मेरे पाँव सूजकर दूने हो गये थे।

मजिस्ट्रेट ने मुझसे पूछा कि मैं कब गिरफ़्तार किया गया था। मेरी ज़बान लड़खड़ाने लगी क्योंकि मैं भूल चुका था कि पुलिस के अफ़सरों ने मुझसे कौन-सी तारीख़ और कौन-सा वक़्त बताने को कहा था। मजिस्ट्रेट ने ख़ुद मुझे इशारा दिया और सर हिलाते हुए मुझसे पूछा कि क्या मैं एक दिन पहले बस के अड्डे पर गिरफ़्तार किया गया था। मैं चुप खड़ा रहा और मजिस्ट्रेट ने मुझे 20 मई तक पुलिस की हिरासत में रखने का हुक्म दे दिया।

इसके बाद मुझे हवालात की कुछ बड़ी कोठरी में एक ऐसे आदमी के साथ रखा गया जो 50,000 रु० की चोरी के मामले में पकड़ा गया था। वह पुलिसवालों पर अपना हुक्म चलाता था और जब भी उसका जी चाहता था खाना और सिगरेटें मँगाता रहता था। उसने मुझे तसल्ली दी और वायदा किया कि जिस चीज़ की भी मुझे ज़रूरत होगी वह मुझे मँगा देगा। कांस्टेबल और दरोग़ा उसके एक इशारे पर भागे हुए आते थे। उसे सज़ा हो जाने के बाद जेल में फिर उससे मेरी मुलाक़ात हुई।

11 मई को मुझे फिर बंगलौर वापस लाया गया और मल्लेश्वरम की हवालात में बन्द कर दिया गया। बाद में मुझे मल्लेश्वरम अस्पताल ले जाया गया, जहाँ डॉक्टरों ने बताया कि मेरा ऐक्स-रे लेना पड़ेगा। पुलिस के अफ़सरों ने इसकी इजाज़त देने से इंकार कर दिया। मुझे फिर थाने वापस ले आया गया।

अगले दिन मुझे दूसरे अस्पताल ले जाया गया—कैंटोनमेंट के बावरिंग अस्पताल में। वहाँ डॉक्टरों ने बहुत सरसरी तौर पर मुझे देखा-दाखा और मेरे साथ बड़ी बदतमीज़ी से पेश आये।

मुझे फिर मल्लेश्वरम ले जाया गया जहाँ मुझे नशीली दवाएँ दी जाने लगीं। नतीजा यह हुआ कि मुझे पेचिश हो गयी और तीन दिन तक मेरा बुरा हाल रहा। इसके लिए उन्होंने मुझे कुछ और दवाएँ दीं और मैं अच्छा हो गया। पुलिस को बड़ी फ़िक्र थी कि मैं किसी तरह 20 तारीख से पहले अच्छा हो जाऊँ। उस दिन मुझे फिर मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जाना था।

मल्लेश्वरम का थानेदार रोज़ रात को शराब पीने के लिए मुझ पर ज़ोर डालता रहा था, लेकिन एक कांस्टेबल ने मुझे ऐसा करने से मना किया। दूसरे दिन एक बड़ा अफ़सर आया और मुझसे बोला कि मुझ पर जो कुछ बीती है उसका उसे पूरा पता है। उसने मुझे यक़ीन दिलाया कि मैं 20 तारीख़ को छोड़ दिया जाऊँगा। लेकिन अगले दिन जब मुझे मजिस्ट्रेट की अदालत में पेश किया गया तो मुझे वहाँ कोई ऐसा आदमी दिखायी नहीं दिया जो मेरी ज़मानत कराता। मैंने मजिस्ट्रेट से पुलिस के ज़ुल्म की शिकायत की। उसने कहा कि शिकायत दर्ज कर ली गयी है।

उसके बाद वे मुझे सीधे सेंट्रल जेल ले गये और मेरी सारी उम्मीदों पर पानी फिर गया। जीप बिलकुल जेल की कोठरी के दरवाज़े पर ले जाकर रोकी गयी। मेरे दुर्भाग्य से वहाँ का वार्डन एक लम्बा-चौड़ा, तगड़ा-सा काले रंग का छः फ़ुटा आदमी था। उसे देखते ही मेरा दम निकल गया। मेरे सब कपड़े उतारे गये, मेरी जेब में जो बीड़ियाँ थीं वह छीन ली गयीं और मुझे काल कोठरी में डाल दिया गया। कोठरी अँधेरी और बदबूदार थी। मुझे कुछ पता नहीं कि इसके बाद क्या हुआ।

इतने में मैंने सुना कि कोई बार-बार मुझे पुकार रहा है। मैंने सोचा कि शायद मेरे कान बज रहे होंगे, क्योंकि उनमें से एक आवाज़ जानी-पहचानी थी। वह मधु (दंडवते) की आवाज़ थी। मैं किसी तरह घिसटता हुआ कोठरी के दरवाज़े तक पहुँचा और उसका सींखचा पकड़कर खड़ा हो गया।

मधु ने कहा—लारेंस, तुम हो? मेरी बात का जवाब दो। क्या पुलिस ने

तुम्हारे साथ ज़ोर-ज़ुल्म किया है ?

मैंने डूबती हुई आवाज़ में हाँ कहा। बाहर एक शोर मचा हुआ था। क़ैदियों के बीच एक अफ़वाह फैल गयी थी कि बेलगाँव जेल का भागा हुआ एक क़ैदी फिर पकड़कर यहाँ लाया गया है।

थोड़ी ही देर बाद जेलों के इंस्पेक्टर-जनरल, जेल का सुपरिंटेंडेंट और डॉक्टर लोग वहाँ पहुँचे। वे अपनी पूरी आवाज़ से चिल्लाते रहे। शायद उनकी सबसे बड़ी कोशिश यह थी कि मुझे पागल बना दें। चूँकि मुझे साँस की तकलीफ़ थी इसलिए उन्होंने मुझे बाहर सोने की इजाज़त दे दी थी। इसके बाद मधु दंडवते और मीसा में नज़रबन्द दूसरे क़ैदियों ने जेल में भूख-हड़ताल कर दी। उनकी माँग थी कि मुझे काल कोठरी से निकालकर किसी बेहतर जगह रखा जाये।

दूसरे दिन ऐसा लगता है कि शायद मेरा सबसे छोटा भाई और माँ मुझसे मिलने जेल आये थे। मुझे उस मुलाक़ात की याद नहीं। जेल की अपनी अलग ही एक दुनिया है। अगर मैं आज़ाद रहा तो मैं जेलों को सुधारने के लिए लड़ूँगा।

जेल के हाकिम मुझे विक्टोरिया अस्पताल ले गये; वहाँ मेरा एक्स-रे लिया गया और पलस्तर चढ़ा दिया गया। मीसा का ऑर्डर मुझे 22 मई को दिया गया। बाद में सुपरिंटेंडेंट मुझसे वह ऑर्डर वापस ले लेना चाहता था लेकिन मैंने देने से इंकार कर दिया। जब मैं पाख़ाने गया हुआ था तो उन्होंने मेरी कोठरी की तलाशी भी ली लेकिन उनके हाथ कुछ न लगा।

कुछ दिन बाद वही सुपरिंटेंडेंट अपने पूरे फ़ौज-फ़ाटे के साथ फिर आया और मेरी ख़ैरियत पूछने लगा। उसे देखते ही मेरा ख़ून खौल उठा और मैंने उससे वहाँ से चले जाने को कहा, क्योंकि उसने अपना एक भी वायदा पूरा नहीं किया था। उसने मेरी कोठरी पर ताला डलवा देने की धमकी दी। मैंने उससे कहा, "जी चाहे तो मुझे गोली से उड़वा दो, मुझे परवाह नहीं। मौत जैसी तुम्हारी वैसी मेरी।"

एक और दर्दनाक कहानी स्नेहलता रेड्डी की है। वह एक दुबली-पतली लड़की थी और राजनीतिक शुबहे की वजह से 1 मई 1976 को बंगलौर सेण्ट्रल जेल में क़ैद कर दी गयी थी।[1] उसे न यह बताया गया कि उसका जुर्म क्या है, न उससे कोई सवाल पूछा गया।

सिनेमा देखनेवालों के लिए स्नेहलता कई इनाम जीतनेवाली कन्नड़ फ़िल्म संस्कार की हीरोइन थी (जिसके प्रोड्यूसर और डायरेक्टर उसके पति पट्टाभि थे)। बंगलौर के नाट्य और कला जगत् में भी उसका बहुत नाम था।

लेकिन सबसे बड़ी बात यह थी कि उसकी जान-पहचान जीवन के सभी क्षेत्रों के लोगों के साथ थी—सोशलिस्ट नेताओं और बुद्धिजीवियों से, भारत के और विदेशों के नाट्यमन्च के कलाकारों से, लेखकों, चित्रकारों और जादूगरों से, और सबसे बढ़कर कई ऐसे नौजवान लोगों से जो अभी तक यह खोजने की कोशिश कर रहे थे कि जीवन का अर्थ क्या है, उसका उद्देश्य क्या है। दिन-रात उसके घर के दरवाजे दोस्तों के लिए हमेशा खुले रहते थे।

उसके मित्रों का इतना बड़ा दायरा और उसकी दोस्ती में इतनी गर्मजोशी—इन्हीं बातों ने उसे जेल में पहुँचा दिया। जार्ज फ़र्नांडीज़ के साथ उसकी पुरानी दोस्ती थी। बदले हुए हालात में इस तरह की दोस्ती का होना ही दर्दनाक नतीजों की जड़

1. स्नेहलता की जेल की डायरी पर आधारित।

बन गया।

पलक झपकते उसकी सुन्दर दुनिया बिखर गयी और भय और अनजानी आशंकाओं की अँधेरी रात शुरू हो गयी। उसकी बेटी नन्दना को दो बार पूछताछ के लिए पकड़ा गया और पूरे परिवार पर कड़ी नजर रखी जाने लगी।

वह और उसके पति अपनी नयी फिल्म के लिए लाइटों का बन्दोबस्त करने के लिए 27 अप्रैल को मद्रास जानेवाले थे। शाम को 4 बजे नन्दना को पुलिस तीसरी बार पूछ-ताछ के लिए पकड़कर ले गयी।

वह शाम को 7 बजे लौटकर आयी। किसी को बताया भी नहीं गया था इसलिए पूरे परिवार का चिन्ता के मारे बुरा हाल था। उसके इस तरह अचानक ग़ायब हो जाने से सारा प्रोग्राम गड़बड़ हो गया था। सभी लोग बेहद परेशान थे। आखिर-कार वे दोनों अपने बेटे कोणार्क को वहीं छोड़कर रात को 9 बजे मद्रास के लिए रवाना हुए।

आधी रात को किसी ने दरवाजा खटखटाया और ज़ोर से आवाज़ दी 'टेलीग्राम'। कोणार्क ने दरवाजा खोला और फ़ौरन ही उसकी दोनों बाँहें जकड़ ली गयीं। साथ ही पुलिसवालों का एक झुण्ड दनदनाता हुआ घर में घुस आया। यह पता लगने पर कि बाक़ी परिवार मद्रास गया हुआ है, वे लोग उस लड़के को घसीटकर थाने ले गये। ज़्यादातर पुलिसवाले सारे घर को उलट-पुलटकर तलाशी लेने के लिए और स्नेहलता के 84 वर्ष के बूढ़े बाप और नौकरों से पूछ-ताछ के लिए वहीं रह गये। वे लोग दूसरे दिन छः बजे वहाँ से विदा हुए।

मद्रास में स्नेहलता और उसके पति को जो पहली खबर मिली वह यह थी कि उनके बहुत पुराने दोस्त अप्पाराव और उनकी बेटी को उसी दिन सवेरे गिरफ़्तार कर लिया गया था। उन्होंने फ़ौरन टेलीफोन पर बंगलौर से बात करने की कोशिश की, लेकिन उनका फोन काट दिया गया था। आखिरकार उन्होंने जब पड़ोसी से टेलीफोन मिलाया तो उन्हें पता चला कि रात को क्या हुआ था। उन्होंने बंगलौर वापस जाने का फ़ैसला किया और अपना सामान बाँधने के लिए होटल लौट आये।

बंगलौर पहुँचने पर उन्हें सीधे कार्लटन हाउस ले जाया गया। वहाँ स्नेहलता और उसके पति को गिरफ़्तार कर लिया गया और बाक़ी लोगों को घर पहुँचा दिया गया। कोणार्क का अभी तक कहीं पता नहीं चल सका था। स्नेहलता और पट्टाभि थककर चूर हो चुके थे। पिछली रात वे मोटर चलाकर मद्रास गये थे और वहाँ ज़रा भी आराम किये बिना अगले ही दिन वापस आ गये थे।

सारी रात उन्हें एक कमरे में बिठाये रखा गया। पहरे पर जो सन्तरी था उससे बस इतना ही मालूम हो सका कि 'साइबरू ईगा बरतरे' (साहब अभी आते ही होंगे)। उस रात कोई भी नहीं आया।

आखिरकार उसे और उसके पति को पूछ-ताछ के लिए अलग-अलग कमरों में ले जाया गया। धीरज तोड़ देने की तरकीब कारगर हुई। मालूम नहीं कि वह जान-बूझकर अपनायी गयी थी या केवल संयोग था। इससे पहले कि कोई एक शब्द भी कहता या कोई सवाल करता, स्नेहलता ने खुद ही कहा, "मेरे बेटे को वापस ले आओ, मेरे पति को छोड़ दो, मेरी बेटी को न सताने का वायदा करो तो मुझे जो कुछ भी मालूम है सब बता दूँगी।"

तब तक स्नेहलता और पट्टाभि का इसके अलावा और कोई क़सूर नहीं बताया जा सका था कि एक राजनीतिक शरणार्थी के साथ उनकी खुली दोस्ती थी। स्नेहलता इतनी भोली थी कि जिस नई दुनिया में अचानक उसने क़दम रखा था उसकी थाह

पाना उसके लिए मुश्किल था। थकन, नींद और अपने बेटे की चिन्ता से वह इतनी निढाल थी कि अनजाने ही उसने एक ऐसी बात कह दी थी जो उसके गले का फंदा बन गयी।

उसके परिवार के सब लोग सकुशल हैं, यह साबित करने के लिए उन्हें एक-एक करके उसके कमरे में लाया गया। फिर सबको घर भेज दिया गया; अकेले उसे ही वहाँ रोक रखा गया। अगले हफ़्ते के दौरान जो कुछ हुआ उससे कुछ धीरज बँधा।

स्नेहलता से कई बार पूछ-ताछ की गयी लेकिन उसके पास बताने को था ही क्या। परिवार वालों को उसका बिस्तर, उसके कपड़े और खाना लाने की इजाज़त दे दी गयी। उसके साथ राजनीतिक नज़रबन्द क़ैदी जैसा सलूक किया जाने लगा। परिवारवालों को उससे मुलाक़ात करने की भी इजाज़त थी।

7 मई की शाम को जब पट्टाभि खाना लेकर वहाँ पहुँचा तो कार्लटन हाउस में ताला पड़ा हुआ था और चारों ओर सन्नाटा था। यह सोचकर कि पूछ-ताछ के लिए शायद उसे किसी और जगह ले जाया गया होगा, वह वहीं बैठकर राह देखने लगा। रात को साढ़े दस बजे वह घर लौटा, लेकिन आधी रात के क़रीब फिर वहाँ गया। अब भी वहाँ कोई नहीं था। घर लौटकर कितनी ही जगह टेलीफोन किया पर कुछ नतीजा नहीं निकला। उस रात घर में कोई भी नहीं सोया। दूसरे दिन सुबह किसी दयालु गुमनाम आदमी ने फोन पर उन्हें बताया कि उसे शक़ है कि स्नेहलता को जेल पहुँचा दिया गया है।

जिस तरह उसे पहली गिरफ़्तारी के वक़्त चरका दिया गया था, उसी तरह चरका देकर उसे जेल पहुँचा दिया गया। उसके परिवारवालों को कानोंकान ख़बर नहीं हुई। उस दिन शाम के क़रीब उसे बताया गया कि उसे छोड़ा जानेवाला है इसलिए अपना सामान बाँधकर तैयार रहे। सबसे पहले वे लोग एक मजिस्ट्रेट की अदालत पर रुके।

बाक़ी कार्रवाई तो रस्मी लग रही थी, लेकिन अचानक उसके कानों में ये शब्द पड़े कि 'तुम्हें नज़रबन्द करने का हुक्म दिया जाता है।' मजिस्ट्रेट ने यह भी कहा कि जैसे ही उसके परिवार वाले ज़मानत के लिए पैसा जुटा लेंगे उसे रिहा कर दिया जायेगा। स्नेहलता ने एक पुलिसवाले से कहा कि वह फोन करके उसके पति को बता दे कि वह इस वक़्त कहाँ है। वह फोन तक गया और फोन पर बात करने का नाटक भी किया, लेकिन न कभी फोन मिलाया गया और न ही अगले दिन सुबह तक उसके परिवार वालों को उसका कुछ हाल मालूम हो सका।

इसी बीच काग़ज़ात पर दस्तखत हो गये, हुक्म जारी हो गया। स्नेहलता एक बार फिर कार्लटन हाउस पहुँचा दी गयी। तब तक शाम हो चुकी थी। मई के महीने में झुटपुटे के वक़्त, जब चारों ओर उदासी छा जाती है, स्नेहलता को बंगलौर सेण्ट्रल जेल की डरावनी, बेरहम और पथरीली इमारत में पहुँचा दिया गया। वहाँ पहुँचने पर उसे पहले अपमानजनक अनुभव से गुज़रना पड़ा। इसके बाद तो उसे इस तरह के न जाने कितनी बार अनुभव हुए।

उसके सामान की एक-एक चीज़ की तलाशी ली गयी, क़ैदियों के रजिस्टर में उसके दस्तखत और उसके अँगूठे का निशान लिया गया, और खुद उसके सारे कपड़े उतरवाकर उसकी तलाशी ली गयी।

इसके बाद उसे एक सीली हुई कोठरी में बन्द कर दिया गया, जो बस इतनी बड़ी थी कि एक आदमी भी उसमें मुश्किल से रह सकता था। कोठरी के सिरे पर पाखाने-पेशाब के लिए एक छोटी-सी नाली थी और दूसरे सिरे पर लोहे के सींखचों

का एक दरवाजा था। उसे अपने घरवालों पर इतना गुस्सा आ रहा था कि कि उसका डर और उसकी उदासी भी कुछ दब गयी। उन लोगों से इतना भी न हुआ कि मुझे छुड़ाने की कोशिश करते या मुझसे मिलने ही आ जाते। उसे क्या मालूम था कि उन लोगों ने सारी रात जागकर काटी थी। पुलिसवालों ने कभी फोन करके उन्हें बताया ही नहीं था कि वह कहाँ है।

अगले दिन सुबह उन्हें मालूम हुआ कि वह जेल में है और वे उसकी ज़मानत की अर्ज़ी देने मजिस्ट्रेट के घर गये। मजिस्ट्रेट ने उन्हें यक़ीन दिलाया कि अगर उनका वकील बाक़ायदा अर्ज़ी देगा तो ज़मानत मंज़ूर कर दी जायेगी। वकील को इस बात का इतना भरोसा नहीं था, फिर भी कोशिश उसने की। उसे निजी तौर पर बता दिया गया कि इस मामले में ज़मानत नहीं हो सकती। क़ैद की यातना शुरू हो चुकी थी। धीरे-धीरे इस पूरे कांड पर से रहस्य का परदा उठने लगा।

पहले स्नेहलता पर भारतीय दण्ड-संहिता की दफ़ा 120 और 120 ए के तहत मामला दर्ज किया गया था। आखिरकार जब सरकार कोई भी जुर्म साबित नहीं कर सकी तो मामला वापस ले लिया गया। लेकिन स्नेहलता अब भी जेल में ही क़ैद रही इस बार मीसा में। अब बहस की कोई गुंजाइश ही नहीं थी।

धीरे-धीरे जेल की हक़ीक़त स्नेहलता की समझ में आने लगी। उसकी सेहत इतनी ख़राब हो चुकी थी कि आखिरकार इसी बुनियाद पर उसे छोड़ दिया गया।

जेल के बाहर आने के कुछ ही दिन बाद दिल का दौरा पड़ने की वजह से उसकी मौत हो गयी।

लारेंस और स्नेहलता रेड्डी जैसे और न जाने कितने लोग थे। वे सभी ज़्यादतियों और यातनाओं के शिकार हुए थे।

मंगलौर के कनारा कॉलेज के छात्र नेता उदयशंकर को उसके घर से बिना वारण्ट के गिरफ़्तार कर लिया गया था। पुलिस ने बन्दर थाने में उसे इतने बेंत मारे और इतनी ठोकरें लगायीं कि उसका सारा बदन नीला पड़ गया। उसे न खाना दिया गया न पानी। श्रीकांत देसाई को, जो क़ानून की आखिरी साल की पढ़ाई कर रहा था और विद्यार्थी परिषद् की कर्नाटक शाखा का ज्वाइंट सेक्रेटरी था, बड़ी दरिन्दगी से पीटा गया और 'हवाई जहाज़' बनाया गया।

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के प्रमुख कार्यकर्त्ता राबिन कलिता को मीसा में गिरफ़्तार किया गया था और वह इलाज के लिए गोहाटी मेडिकल कॉलेज के अस्पताल में भरती था। उसकी हालत बहुत बिगड़ गयी। उसके घरवालों को उसकी देखभाल करने की इजाज़त नहीं दी गयी, बल्कि यहाँ तक कि उससे मिलने भी नहीं दिया गया। उसका इलाज अस्पताल में चल रहा था फिर भी उसे हथकड़ी पहनाये रखी जाती थी। हथकड़ी पहने-पहने ही उसने अस्पताल में दम तोड़ दिया।

हेमन्त कुमार बिश्नोई को उस वक़्त गिरफ़्तार किया गया जब वह नई दिल्ली के बुद्ध जयन्ती पार्क में पिकनिक पर गया हुआ था। उसे उल्टा लटका दिया गया और नंगे तलुवों को जलती हुई मोमबत्तियों से दाग़ा गया। उसकी नाक में और पाखाना करने की जगह पिसी हुई मिर्चें ठूँस दी गयी। इन तमाम यातनाओं के बावजूद उसने यह मानने से इंकार कर दिया कि उसने प्रधानमंत्री के खिलाफ़ कोई 'षड्यन्त्र' रचा था, क्योंकि ऐसा कोई षड्यन्त्र था ही नहीं। पुलिस चुप होकर बैठ गयी।

एक समारोह में जहाँ राष्ट्रपति भाषण दे रहे थे, दूसरे लड़कों के साथ पर्चे बाँटने के जुर्म में दो लड़के राजेश और अनिल पकड़े गये। एक पन्द्रह साल का था,

दूसरा तेरह साल का। उन्हें बड़ी बेरहमी से पीटा गया और बड़े-से थाने के पूरे फ़र्श पर उनसे झाड़ू लगवायी गयी।

हौज़ ख़ास थाने की पुलिस वहाँ के कुछ कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं को ख़ुश करने के लिए सुनील और मनोज नामक दो नाबालिग लड़कों को जोगीवाड़ा से पकड़कर ले गयी। उन्हें इतना पीटा गया कि आख़िरकार उन्होंने वही बयान दे दिया जो पुलिस उनसे चाहती थी।

चंडीगढ़ के वकील सी० एल० लखनपाल को जेल में दिल का सख़्त दौरा पड़ा। उसे पोस्ट ग्रेजुएट मेडिकल इंस्टीच्यूट के अस्पताल ले जाया गया और कुछ ही घंटों के अन्दर वहाँ उसकी मौत हो गयी। वहाँ के डाक्टरों ने उसके इलाज के मामले में लापरवाही बरती थी।

पुलिस ने अपना गुस्सा पढ़े-लिखे लोगों पर ख़ास तौर पर उतारा। दिल्ली यूनिवर्सिटी के 200 से ज्यादा अध्यापक तो 26 जून को तड़के ही पकड़ लिये गये थे। उनमें से एक ओ० पी० कोहली, जो दिल्ली यूनिवर्सिटी टीचर्स एसोसिएशन के प्रेसीडेंट हैं और कुछ अपंग भी हैं, को चौबीस घंटे तक लगातार हवालात में खड़ा रखा गया। पुलिसवाले उन पर गालियों और जूतों की बौछार करते रहे और उन्हें इधर-से-उधर धक्का देते रहे। कितनी ही बार वह गिर पड़े लेकिन उन्हें फिर खड़े होने पर मजबूर किया गया।

कुछ अध्यापकों को तो क्लास में पढ़ाते वक़्त गिरफ़्तार किया गया। अदालतों के हुक्म से जब कुछ अध्यापक छोड़े भी गये तो उन्हें जेल के फाटक ही पर वही पहलेवाले जुर्म लगाकर या कोई जुर्म लगाये बिना ही दुबारा गिरफ़्तार कर लिया गया। जब स्कूलों-कॉलिजों में सबने मिलकर इसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठायी तब कहीं जाकर यह दुबारा गिरफ़्तार किये जाने का सिलसिला ख़त्म हुआ।

घोर वामपंथी नक्सलवादियों के ख़िलाफ़ ज्यादतियों का सिलसिला तो इमर्जेंसी के पहले ही से चल रहा था; अब उन्हें बिना किसी वजह के ही पकड़ा जाने लगा। पुलिस और नक्सलवादियों के बीच हथियारबन्द मुठभेड़ों के न जाने कितने क़िस्से बयान किये गये हैं, लेकिन इस बात पर किसी भी तरह यक़ीन नहीं किया जा सकता कि कुछ दर्जन नक्सलवादी गिनती की पुरानी बन्दूकें लेकर हर तरह के हथियारों से लैस हज़ारों पुलिसवालों से घंटों खुली हथियारबन्द लड़ाइयों में टक्कर लेते थे।

मिस मेरी टाइलर ने, जिन्हें छः साल तक नज़रबन्द रखा गया, 6 जुलाई को अपनी रिहाई के बाद बताया कि 'बिहार में छापेमारों का अड्डा क़ायम करने की कोशिश करने' के झूठे आरोप किस तरह गढ़े गये थे। उन्होंने कहा कि यह छापेमारों का गिरोह नहीं था बल्कि कुछ जोशीले नौजवान वामपंथी कार्यकर्त्ता थे जो बिहार और पश्चिम बंगाल के दूर-दूर के देहातों में लोगों को ज़मींदारों और साहूकारों का मुक़ाबला करने और भूमि-सुधार लागू करवाने के लिए बढ़ावा दे रहे थे। उनमें से बहुत थोड़े ही ऐसे होंगे जो जेल में मिलने से पहले एक-दूसरे को जानते भी रहे हों। गिरफ़्तार करने के बाद मेरी टाइलर को साल-भर हज़ारीबाग जेल में तनहाई में रखा गया और उसके बाद अदालत के सामने हाज़िर करने के लिए जमशेदपुर जेल में लाया गया। रिहाई के बाद उन्होंने बताया कि इमर्जेंसी के ऐलान के बाद जो अन्धाधुन्ध गिरफ़्तारियाँ हुई थीं उनकी वजह से जिस जेल में सिर्फ़ 137 क़ैदियों के लिए इन्तज़ाम था, 1,200 आदमी ठूंस दिये गये थे।[1]

1. देखिये मेरी टाइलर, 'भारतीय जेलों में पांच साल', राधाकृष्ण, 1977।

नक्सलवादियों की समस्या कोई नयी नहीं थी। वह 1963 से चली आ रही थी जब घोर वामपंथियों ने चीन-भारत सीमा के पास नक्सलबाड़ी (पश्चिम बंगाल) में ज़मींदारों को निकालकर ज़मीन पर कब्ज़ा कर लेने के लिए एक हिंसक आन्दोलन शुरू किया था।

सरकार को ज़्यादा फ़िक्र अण्डरग्राउण्ड आन्दोलन की थी। लगभग साल-भर हो चुका था और जार्ज फ़र्नांडीज़ को अभी तक नहीं पकड़ा जा सका था। श्रीमती गांधी ने चोटी के अफ़सरों की एक मीटिंग करके उन्हें बहुत लताड़ा कि आखिर अब तक उन्हें गिरफ़्तार क्यों नहीं किया जा सका। एक अफ़सर ने बताया कि वे लोग जार्ज के संगठन में घुस गये हैं और उनके आदमी अब उस संगठन का हिस्सा बन गये हैं। उसने कुछ ही दिन में जार्ज की गिरफ़्तारी का वायदा किया। और हुआ भी यही। जार्ज को 10 जून को कलकत्ते में गिरजाघर से मिले हुए एक घर से गिरफ़्तार किया गया। उनकी गिरफ़्तारी से अण्डरग्राउण्ड संगठन को बहुत बड़ा धक्का लगा।

अण्डरग्राउण्ड आन्दोलन संजय की आँखों में हरदम खटकता रहता था। नसबन्दी की मुहिम के दौरान उसने जो ज्यादतियाँ की थीं उनका प्रचार पूरे ब्यौरे के साथ अण्डरग्राउण्ड से किया जा रहा था।

सचमुच, संजय यह मुहिम बड़ी बेरहमी से चला रहा था। उसने हर मुख्यमंत्री के लिए तय कर दिया था कि किसे कितनी नसबन्दियाँ करानी हैं। मुख्यमंत्रियों ने अपना यह बोझ अफ़सरों में बाँट दिया था। संजय को खुश करने के लिए सारे मुख्यमंत्री नसबन्दी के बारे में उसकी 'इच्छाओं' को पूरा करने के लिए एक-दूसरे से होड़ लगाकर काम कर रहे थे। इसकी परवाह न संजय को थी न श्रीमती गांधी को कि यह काम कैसे पूरा किया जाये, बस काम पूरा होना चाहिए या कम-से-कम कहा यह जाये कि वह पूरा हो गया है।

संजय को नतीजे से मतलब था, तरीक़े से नहीं। जबरी नसबन्दी धड़ल्ले से चलती रही।

दिल्ली में रुखसाना सुल्ताना नाम की एक छबीली लड़की, जो संजय को देवता मानती थी, परिवार नियोजन के काम को बढ़ावा देने के लिए आगे आयी। उसकी कोई सरकारी हैसियत न होते हुए भी जब वह शहरपनाह के अन्दर पुरानी दिल्ली की सड़कों पर निकलती थी तो पुलिस की गारद उसके साथ चलती थी, एक जीप उसकी गाड़ी के आगे और एक पीछे। बाद में उसने एक इंटरव्यू के दौरान बताया कि उसे इस बात पर बड़ा नाज़ है कि "नसबन्दी की मुहिम के साथ—और संजय के साथ—उसका नाम भी जुड़ा हुआ है।"

आबादी की रोकथाम की पॉलिसी के तहत भारत-सरकार ने उत्तर प्रदेश को 4 लाख नसबन्दियों की ज़िम्मेदारी सौंपी थी; लेकिन संजय को खुश करने के लिए उत्तर प्रदेश वालों ने 15 लाख नसबन्दियाँ कराने का बीड़ा उठा लिया। हर सरकारी विभाग की ज़िम्मेदारी बांध दी गयी। हर ज़िले को अलग-अलग बता दिया गया कि किसे कितनी नसबन्दियाँ करानी हैं। अध्यापकों और स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारियों के लिए तो यहाँ तक भुगतना पड़ा कि जो भी आदमी अपनी ज़िम्मेदारी पूरी नहीं कर पायेगा उसे न तरक़्क़ी दी जायेगी, न उसकी तनख्वाह बढ़ायी जायेगी।

यह मुहिम जुलाई में तेज़ की गयी और महीने-भर बाद तो वह तूफ़ानी रफ़्तार से चल पड़ी। जब लोगों ने जबरी नसबन्दी का विरोध किया तो उसकी वजह से हिंसा की 240 वारदातें हुई। जून में रोज़ का औसत 331 नसबन्दियों का था, जो जुलाई में बढ़कर 1,578 हो गया और अगस्त में जब इसके लिए खास कैंप लगाये गये तो औसत

रोज़ 5,644 नसबन्दियों तक पहुँच गया। कई जगह तो यह देखे बिना ही कि किसकी उम्र कितनी है, किसी की शादी भी हुई है या नहीं, लोगों को पकड़कर ज़बर्दस्ती नसबन्दी कर दी गयी।

हिंसा की पहली बड़ी घटना 27 अगस्त को उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर ज़िले में नरकाडीह नामक गाँव में उस वक़्त हुई, जब कमिश्नर साहब ने लोगों को 'राज़ी करने' के लिए जमा किया। लोगों ने इस कार्यक्रम का विरोध किया और अफ़सरों को गाँव के बाहर खदेड़ दिया। पुलिस ने गोली चलायी जिसमें तेरह आदमी जान से मारे गये और बीसियों गोलियों से घायल हुए।

ज़िले के अधिकारियों से हुक्म पाकर पुलिसवाले जबरी नसबन्दी के लिए गाँव वालों को पकड़-पकड़कर लाने के काम में बिलकुल पागलों की तरह जुट गये। गाँवों में आतंक छाया हुआ था। सभी लोग अपनी इज़्ज़त और जान बचाने के लिए भाग-भागकर खेतों में जा छिपे। नामी-से-नामी डाकुओं के ज़माने में भी उन्हें कभी अपना घर नहीं छोड़ना पड़ा था, लेकिन अब खेतों में रहना गाँववालों के लिए एक आम बात हो गयी थी। पुलिस के छापों की वजह से उन्हें अपने घरों में रहते डर लगता था।

नसबन्दी की लहर चढ़ते-चढ़ते रोज़ 6,000 ऑपरेशनों तक पहुँच चुकी थी, कि इतने में 18 अक्तूबर को मुज़फ़्फ़रनगर में एक और धमाका हुआ। वहाँ के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने नसबन्दी के कैंप लगवाये और लोगों को बड़ी-बड़ी रक़में चन्दे में देने पर मजबूर किया गया। जो इंकार करता था उसे मीसा में या डी० आई० आर० में बन्द कर दिये जाने की धमकी दी जाती थी। पुलिसवाले ताक में खड़े रहते थे और लोगों को बस के अड्डों से और रेलवे स्टेशनों से पकड़कर ले जाते थे और ज़बर्दस्ती उनकी नसबन्दी कर दी जाती थी।

एक ख़ास बस्ती से तीन दिन तक बाक़ायदा लोगों को पकड़कर ले जाया गया और उनकी नसबन्दी कर दी गयी। यह भी नहीं देखा गया कि कौन कुँआरा है और किसकी शादी हो चुकी है, किसके बच्चे हैं किसके नहीं हैं, कौन जवान है कौन बूढ़ा। एक बार जब इसी तरह अठारह आदमियों को नसबन्दी कैंप में ले जाया जा रहा था तो लोगों का गुस्सा क़ाबू से बाहर हो गया। बहुत बड़ी भीड़ जमा हो गयी और उन लोगों को छोड़ देने की माँग करने लगी। फिर पथराव शुरू हुआ। पुलिस ने पहले आँसू-गैस के गोले छोड़े और जब भगदड़ मची तो उसने उन पर गोली चला दी। पच्चीस आदमी मारे गये और आठ लापता हो गये। (उनका आज तक पता नहीं लग सका है।) इस वारदात को लोग 'छोटा जलियाँवाला बाग़' कहने लगे। कर्फ़्यू लगा दिया गया और एक दूसरी बस्ती में चार आदमी कर्फ़्यू तोड़ने की वजह से गोलियों से भून दिये गये।

सेंसरशिप के बावजूद, इन घटनाओं की ख़बर ज़बानी ही चारों तरफ़ फैल गयी और मुज़फ़्फ़रनगर से लगभग पैंतीस किलोमीटर दूर इसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने के लिए एक जुलूस निकाला गया। जब इलाक़े के कुछ जाने-माने लोगों के कहने पर जुलूस तितर-बितर होने लगा तो पुलिस ने लोगों का पीछा किया। जब लोगों ने मस्जिद में घुसकर अपनी जान बचाने की कोशिश की तो पुलिस भी दनदनाती हुई अन्दर घुस आयी और गोली चलाने लगी। तीन आदमी जान से मारे गये।

बस्ती ज़िले के एक गाँव में एक बी० डी० ओ०, एक पंचायत सेक्रेटरी और एक ग्रामसेवक इस बात का लेखा-जोखा करने गये कि कितने जोड़े ऐसे हैं जिन पर नसबन्दी लागू की जा सकती है। गुस्से से बिफरी हुई भीड़ ने उनकी बोटी-बोटी काटकर फेंक दी। पुलिस को जो गुस्सा आया तो उसने गिन-गिनकर वहाँ के लोगों से बदला लिया

ग्रौर उन्हें तरह-तरह से सताकर उनके दिल में दहशत बिठा दी।

हरियाणा में कितने ही लोगों ने नसबन्दी कराने से इंकार कर दिया ग्रौर जो सरकारी ग्रफ़सर ज़बर्दस्ती उन्हें पकड़कर नसबन्दी के कैंपों में ले जाने के लिए ग्राये उनका उन्होंने डटकर मुक़ाबला किया। इन लोगों को ग्रन्धाधुन्ध गिरफ़्तार किया गया ग्रौर हर तरह की यातनाएँ दी गयीं। गुड़गाँव ज़िले के एक नौजवान को वहाँ की पुलिस ने ग्रपनी बिरादरीवालों को नसबन्दी के ख़िलाफ़ भड़काने के ग्रपराध में पकड़कर एक ग्रंधी कोठरी में बन्द कर दिया। उससे पूछ-ताछ के दौरान उसके बाल ग्रौर नाख़ून नोंच डाले गये ग्रौर जब उसे छोड़ा गया तो वह दोनों कानों से बहरा हो चुका था।

महेन्द्रगढ़ के एक नौजवान सरकारी नौकर ने जब इस बुनियाद पर नसबन्दी कराने से इंकार किया कि उसके कोई बच्चा नहीं था तो उसे इतना सताया गया कि वह पागल हो गया।

रोहतक ज़िले की एक बूढ़ी मास्टरनी को ज़िला शिक्षा ग्रधिकारी ने ग्रादेश दिया कि जब तक वह दो ग्रादमियों को नसबन्दी के लिए नहीं लायेगी तब तक उसे तनख्वाह नहीं मिलेगी। सफ़ेद बालोंवाली उस विधवा को कोई भी न मिला। ग्राख़िरकार, कहा जाता है कि वह दो पागल भिखारियों को पकड़कर नसबन्दी के कैंप में लायी तब कहीं जाकर उसे तनख्वाह मिली।

सबसे ज़्यादा मुसीबतें इस राज्य के हरिजनों ग्रौर पिछड़े वर्गों के दूसरे लोगों को झेलनी पड़ीं। सरकार को इस बात से कोई मतलब नहीं था कि नौजवान कुंग्रारे लड़के हों या ऐसे बूढ़े जिनकी बीवियाँ मर चुकी हैं, नपुंसक लोग हों या ऐसे लोग जिनकी नसबन्दी पहले हो चुकी है—सभी को नसबन्दी करानी पड़ती थी। महत्त्व लोगों या उनकी भावनाग्रों का नहीं बल्कि इस बात का था कि गिनती पूरी होनी चाहिये।

बिहार में सरकारी ग्रफ़सरों को नसबन्दी की मुहिम के दौरान ग्रपनी 'कारगुज़ारी' दिखाने का सबसे ग्रासान मौक़ा मिल गया। नसबन्दी की सबसे गहरी मार शायद ग्रादिवासियों पर पड़ी। जिस डिप्टी कमिश्नर को सबसे पहले 'ग्रच्छा काम' करने के इनाम में सोने का मेडल दिया गया वह सिंहभूम ज़िले में तैनात था, जो छोटा नागपुर के ग्रादिवासी इलाक़े का एक हिस्सा है। ग्रादिवासियों का एक ग्रौर ज़िला है राँची; वहाँ का सबसे बड़ा हाकिम भी बहुत पीछे नहीं था। ज़्यादतियाँ भोजपुर ज़िले में भी की गयीं, लेकिन वहाँ सबसे ज़्यादा मुसीबतें ग्रादिवासियों ने नहीं झेलीं; सभी पर बराबर मार पड़ी।

पूरबी पटना में भी गड़बड़ हुई। जबरी नसबन्दी की वजह से बिफरी हुई भीड़ पर पुलिस ने गोली चलायी, जिसमें एक ग्रादमी मारा गया ग्रौर कई घायल हुए, लेकिन सेंसर ने ग्रख़बारों को हुक्म दे दिया कि वे सिर्फ़ सरकारी बयान छापें, जिसमें कहा गया था कि फ़ुटपाथ पर रहनेवालों के हटाये जाने पर तिलमिलाये हुए लोगों पर पुलिस ने गोली चलायी। इस घटना के चौबीस घंटे के ग्रन्दर युवक कांग्रेस के लोगों ने नसबन्दी का प्रचार करने के लिए बड़ी-बड़ी सड़कों के किनारे जो तम्बू गाड़े थे वे सब ग़ायब हो गये। ये फ़ुटपाथ पर रहनेवाले वे लोग नहीं थे जिन पर गोली चलायी गयी थी।

सोने का मेडल जीतने की होड़ में पटना ने लोकसभा के चुनावों का ऐलान होने के लगभग दो हफ़्ते पहले पीछे से ग्राकर सबको पछाड़ दिया। केन्द्रीय सरकार ने बिहार के हिस्से में 3 लाख नसबन्दियाँ रखी थीं, लेकिन वहाँ हुईं साढ़े छः लाख। इस बात से वहाँ के स्वास्थ्यमंत्री बिन्देश्वरी दुबे को इतना जोश ग्राया कि उन्होंने ग्रफ़सरों

को ललकारा कि वे 1976-77 का सरकारी साल पूरा होने से पहले ही दस लाख के निशाने तक पहुँच जायें।

बिहार में जो 'अच्छा काम' किया गया था उसकी खुशी में संजय ने चार बार उस राज्य का दौरा किया। चुनाव से पहले जब संजय आखिरी बार बिहार गया तो बिहार प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष सीताराम केसरी ने पटना में एक पब्लिक मीटिंग में कहा कि संजय गांधी राजनीति के क्षितिज पर उभरता हुआ नया सितारा है; अब कांग्रेस के नेतृत्व को और देश को पचास साल के लिए कोई खतरा नहीं है।

संजय का जो शाही स्वागत किया गया उस पर कम-से-कम दस लाख रुपये खर्च किये गये। इसमें से कम-से-कम आधी रक़म बिहार सरकार ने सुरक्षा के बन्दोबस्त और मोटरों की दौड़-धूप और भीड़ को क़ाबू में रखने के इन्तज़ाम पर खर्च की थी। बाक़ी आधी रक़म बड़े-बड़े सेठों और व्यापारियों ने दी थी।

नसबन्दी के लिए खास तौर पर लगाये गये कैम्पों में पंजाब की सरकार जितनी बड़ी संख्या में मर्दों और औरतों को जमा करती थी उससे साफ़ ज़ाहिर था कि उसमें इस काम के लिए कितना जोश था। ऑपरेशन में गड़बड़ी हो जाने की वजह से कुछ लोगों के मर जाने की भी खबरें मिलीं।

नसबन्दी के सिलसिले में की गयी किसी ज़्यादती की खबर कोई अखबार नहीं छाप सकता था। और न श्रीमती गांधी का 'घराना' उन पर यक़ीन ही करने को तैयार था, हालांकि वहाँ सबको मालूम था कि नसबन्दी में ज़ोर-जबर्दस्ती की जा रही है। खुफ़िया विभाग को कुछ ज़्यादतियों का पता लगा और उसने इनकी रिपोर्ट प्रधानमंत्री के पास भी भेजी और उनके सेक्रेटरी के पास भी। लेकिन उनके बारे में शायद ही कभी कोई कार्रवाई की जाती थी। यह कहकर लीपा-पोती कर दी जाती थी कि कुछ-न-कुछ ज़बर्दस्ती तो करनी ही पड़ती है। केन्द्रीय सरकार के राज्य-मंत्री शाहनवाज़ खाँ ने श्रीमती गांधी को मुज़फ़्फ़रनगर की घटना के बारे में एक रिपोर्ट भेजी और उसमें बताया कि किस तरह पुलिस ने जान-बूझकर ताक़त इस्तेमाल की थी और लोगों पर ज़ुल्म ढाये थे। श्रीमती गांधी ने बस इतना कहा कि बातों को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया गया है। इस रिपोर्ट की एक कापी राष्ट्रपति फ़खरुद्दीन अली अहमद को भी दी गयी। उन्हें पढ़कर बहुत धक्का लगा। उन्होंने प्रधानमंत्री से इसकी शिकायत की और अपनी उस डायरी में भी इसे दर्ज किया, जो वह रोज़ पाबन्दी के साथ लिखते थे।

हाथ-पाँव की ज़ोर-ज़बर्दस्ती अकेला तरीक़ा नहीं था जो इस्तेमाल किया गया। सरकार ने सर्कुलर जारी करके यह आदेश दे दिया कि जो कर्मचारी या तो खुद अपनी नसबन्दी न कराये या दूसरों की नसबन्दी न कराये उसकी तरक़्क़ी रोक दी जाये और तनख्वाह न बढ़ायी जाये। अगले साल के लिए किसी का मोटर चलाने का नया लाइसेंस भी तभी बनाया जाता था जब उसने कम-से-कम कुछ लोगों की नसबन्दी करायी हो।

दिल्ली प्रशासन ने यह आदेश जारी कर दिया कि उसके जो कर्मचारी नसबन्दी के लायक़ हैं उन्हें उनकी तनख्वाह नसबन्दी का सर्टीफ़िकेट दिखाने पर ही दी जायेगी। कार्पोरेशन के प्राइमरी स्कूलों के 10,000 अध्यापकों को ज़बानी हुक्म दे दिया गया कि वे कम-से-कम पाँच-पाँच आदमियों को नसबन्दी के लिए राज़ी करें। स्कूलों की हेड मिस्ट्रेसों को यह अधिकार दे दिया गया कि जब तक किसी विद्यार्थी का बाप या उसकी माँ नसबन्दी न कराये तब तक उसे पास न किया जाये।

व्यापारियों के कुछ प्रतिनिधियों को दिल्ली के लेफ्टिनेंट गवर्नर ने राजनिवास

पर बुलाकर उनसे कहा कि वे यह तय करें कि हर महीने वे अपने कितने कर्मचारियों और दूसरे लोगों को नसबन्दी के लिए राज़ी करेंगे।

कई कम्पनियाँ, जहाँ मज़दूर रोज़नदारी पर या ठेके पर काम करते थे, इसलिए बन्द हो गयीं कि मज़दूरों ने यह फ़ैसला कर लिया था कि नसबन्दी का ख़तरा मोल लेने से अच्छा है कि वे अपने गाँव लौट जायें।

सरकार ने आबादी की रोकथाम के बारे में एक राष्ट्रीय पॉलिसी का भी ऐलान किया था। संजय दो बच्चे प्रति परिवार की सीमा बाँधना चाहता था लेकिन श्रीमती गांधी और उनका बाक़ी परिवार तीन के पक्ष में था और यही बात मान ली गयी। राष्ट्रीय पॉलिसी में लक्ष्य यह रखा गया था कि आबादी के हर एक हज़ार आदमियों के बीच इस वक़्त हर साल 35 बच्चे पैदा होते हैं; इसे घटाकर 1984 तक 25 पर पहुँचा दिया जाये। उम्मीद की जाती थी कि तब तक आबादी बढ़ने की रफ़्तार भी 2.4 प्रतिशत से घटकर 1.4 प्रतिशत रह जायेगी। विवाह करने की कम-से-कम उम्र बढ़ाकर लड़कियों के लिए 18 साल और लड़कों के लिए 21 साल कर दी गयी। नसबन्दी कराने पर मर्दों और औरतों को नक़द पैसा भी दिया जाता था। लेकिन यह फ़ैसला अलग-अलग राज्यों के हाथ में छोड़ दिया गया कि अगर वे चाहें तो नसबन्दी को लाज़िमी बना देने का क़ानून बना सकते हैं। (उस समय हमारी आबादी 61 करोड़ 50 लाख थी।)

नसबन्दी के अलावा संजय को एक और धुन थी, दिल्ली को ख़ूबसूरत बनाने की। वह डी० डी० ए० के कर्त्ता-धर्त्ता जगमोहन को रोज़ बताया करता था कि क्या करना है और गन्दी बस्तियों की सफ़ाई के सिलसिले में जितना काम होता था उसका लेखा-जोखा करता था।

इतने बड़े पैमाने पर, जितना कि पहले कभी नहीं हुआ था, ग़ैर-क़ानूनी घरों और झुग्गी-झोंपड़ियों के गिरा दिये जाने की वजह से कई बस्तियों से पुराने बसे हुए परिवार छोड़-छोड़कर जाने लगे थे। इसी तरह का एक इलाक़ा वह था जिसे मुस्लिम आबादी कहा जाता था। तुर्कमान गेट के इलाक़े में, जहाँ बहुत-से ग़ैर-मुसलमान भी रहते थे, 13 अप्रैल को जब बस्ती के बाहर बुलडोज़र जमा होने लगे तो लोग बहुत परेशान होकर उन्हें देखते रहे। वह बैसाखी का दिन था और उस इलाक़े में रहनेवाले पंजाबियों ने अपना यह त्योहार बड़ी धूमधाम से मनाया था।

वहाँ के रहनेवाले 16 अप्रैल को एच० के० एल० भगत से मिले, जिन्होंने उनको यक़ीन दिलाया कि उनके घर ढाये नहीं जायेंगे। उन्होंने कहा, यह हो ही कैसे सकता है जबकि ये इमारतें कई पीढ़ियों से वहाँ खड़ी हुई हैं? लेकिन बुलडोज़र फिर भी नहीं हटे।

अचानक 19 अप्रैल को बुलडोज़र तुर्कमान गेट की तरफ़ बढ़ने लगे। कुछ लोग झुण्ड बनाकर बुलडोज़रों को रोकने के लिए बस्ती के बाहर दरगाहे-इलाही के सामने बैठ गये, जिस पर अभी हाल ही में सफ़ेदी की गयी थी। कई और मुहल्लेवाले आकर शामिल हो गये और बढ़ते-बढ़ते वहाँ कई सौ आदमी जमा हो गये।

दोपहर के क़रीब ट्रकों में भर-भरकर बन्दूकों से लैस सी० आर० पी० के सिपाही और दिल्ली के पुलिसवाले वहाँ आने लगे। कुछ ही मिनटों में धक्का-मुक्की शुरू हो गयी और शोर-गुल मचने लगा। पुलिसवाले रास्ता साफ़ करने की कोशिश कर रहे थे और लोग उन्हें ऐसा करने से रोक रहे थे। इतने में पुलिस की तरफ़ से पत्थरों एक की बौछार हुई। उस वक़्त तक लोग शोर तो मचा रहे थे पर बाक़ी सब शान्ति थी। भीड़ ने भी पुलिस पर जवाबी पथराव किया।

लगभग डेढ़ बजे दरियागंज के सब-डिवीज़नल मजिस्ट्रेट ने लाठी-चार्ज का हुक्म दिया; इसके बारे में तो दो रायें हो ही नहीं सकतीं कि लाठी-चार्ज बड़ी बेरहमी से किया गया। भीड़ में खलबली मच गयी। लोग इधर-उधर भागने लगे। कुछ ज़मीन पर गिर पड़े और चोटें तो बहुतों को आयीं। सैकड़ों लोग गिरफ़्तार कर लिए गये, जिनमें कई घायल लोग भी शामिल थे। इसके बाद तो वहाँ के लोगों और पुलिस के बीच जमकर लड़ाई शुरू हो गयी। औरतें भी मर्दों का हाथ बंटाने के लिए बेलन और चिमटे लेकर अपने घरों से निकल आयीं; उन्होंने अपने मर्दों को पुलिस के चंगुल से छुड़ा लिया।

लोगों के इस तरह जमकर मुक़ाबला करने पर पुलिस को ताव आ गया। पहले तो उसने आँसू-गैस के गोले छोड़े और फिर तीसरे पहर लगभग तीन घंटे तक रह-रहकर गोलियाँ चलाते रहे। जब मामला क़ाबू से बाहर होने लगा तो कर्फ़्यू लगा दिया गया। इसी वक़्त बुलडोज़रों ने चढ़ाई की। लगभग 1,000 मकान ढा दिये। 150 लोग जान से मारे गये और 700 गिरफ़्तार कर लिए गये। लेकिन मामला यहीं पर ख़त्म नहीं हो गया। कर्फ़्यू पैंतालीस दिन तक लगा रहा। इस दौरान एक-एक घर में घुस-घुसकर लूटमार की गयी। नयी-नवेली दुल्हनों के जेवर छीन लिए गये। बूढ़ों और बीमारों को भी जानवरों की तरह मारा गया और उनके पास जो कुछ भी था उनसे छीन लिया गया। लोगों को इस शुबहे में पकड़ लिया गया कि उन्होंने पुलिस से टक्कर ली थी।

सेंसर ने इसके बारे में एक अक्षर भी अख़बारों में नहीं छपने दिया। लेकिन सारी दिल्ली में और धीरे-धीरे पूरे देश में तुर्कमान गेट में ढाये गये ज़ुल्मों की चर्चा होने लगी। सरकार को मजबूर होकर मानना पड़ा कि कुछ लोग मारे गये हैं, लेकिन उसने अख़बारों के लिए जो बयान जारी किया उसमें सच बात कभी नहीं बतायी गयी।

जिस वक़्त तुर्कमान गेट के इलाक़े में रहनेवालों को वहाँ से हटाया जा रहा था उस वक़्त तक डी० डी० ए० वालों को यह नहीं मालूम था कि उस जगह का वे क्या करेंगे। तीन महीने बाद वहाँ दफ़्तरों और दूकानों के लिए पचास मंज़िल की एक इमारत बनाने की योजना तैयार की गयी।

जिन लोगों को ज़बर्दस्ती उनके घरों से निकाल दिया गया था उन्हें जमुना के पार एक बंजर वियाबान में ले जाकर छोड़ दिया गया, जहाँ दूसरी सुविधाओं की बात तो दूर रही पीने के पानी तक का इन्तज़ाम नहीं था। जब कई दिन बाद शेख़ अब्दुल्ला ने उस कालोनी का मुआइना किया तो उन्होंने तुर्कमान गेट की घटना को कर्बला बताया। उन्हें सचमुच बहुत तकलीफ़ हुई और उन्होंने यह बात अधिकारियों से कही भी। वहाँ के रहनेवाले अपनी फ़रियाद लेकर संजय के पास गये—श्रीमती गांधी को फ़ुरसत नहीं थी—कि उन्हें बेहतर सुविधाएँ दी जायें तो उसने कहा, "तुम लोगों ने शेख़ साहब से झूठी शिकायतें की हैं, तुम्हें इसका मज़ा चखवाया जायेगा।" उसने कहा कि लोगों को "पुलिस पर हमला करने की सज़ा दी जायेगी।"

गन्दी बस्तियों की सफ़ाई संजय के पाँच-सूत्री कार्यक्रम में (पहले चार ही थे) शामिल नहीं थी। इस कार्यक्रम का भी उतना ही प्रचार किया गया था जितना कि श्रीमती गांधी के बीस-सूत्री कार्यक्रम का। संजय के पाँच-सूत्र थे : परिवार नियोजन, पेड़ लगाना, दहेज पर पाबन्दी, हर आदमी एक आदमी को पढ़ाये और जात-पाँत को दूर करना।

इस कार्यक्रम में ऐसी कोई ग़लत बात नहीं थी, लेकिन उसे पूरा करने के लिए जो तरीक़े अपनाये गये उनसे लोगों में गुस्सा पैदा हुआ। एक और भी वजह थी। वह जो कुछ भी करता था उस पर यह छाप होती थी कि उसके अधिकार संविधान से परे हैं।

उसके हाथ में जितनी ताक़त आ गयी थी उस पर लोगों को ऐतराज़ था और इसलिए वह जो भी क़दम उठाता था उसे लोग शुबहे की नज़र से देखते थे। हालांकि बहुत-से लोग सोलह आने उसके पक्ष में नहीं थे फिर भी वे उसकी 'काम करने की सूझ-बूझ' और 'समझदारी' की तारीफ़ करते थे। कांग्रेस के अन्दर अपना उल्लू सीधा करनेवाले सोचते थे कि चूंकि सारी ताक़त उसी के हाथ में है इसलिए उसे खुश रखना चाहिए।

संजय रौब तो बहुत जमाता था—और सिर्फ़ मारुति, पांच-सूत्री कार्यक्रम या युवक कांग्रेस के मामले में ही नहीं। जो कोई भी उसमें कोई बुराई निकालता था उसे वह धौंस देकर दबा देने या सज़ा देने की कोशिश करता था। मारुति की इमारत का एक हिस्सा बनवाते वक़्त वह किसी ठेकेदार से नाराज़ हो गया था; उसे गिरफ़्तार कर लिया गया। उस ज़माने में दिल्ली के इंस्पेक्टर जनरल ऑफ़ पुलिस राजगोपालन की बदली बार्डर सिक्योरिटी फ़ोर्स में सिर्फ़ इसलिए करवा दी गयी कि उन्होंने संजय की मर्ज़ी का काम करने से इंकार कर दिया था।

एयर मार्शल पी० सी० लाल के साथ जो कुछ हुआ उसके पीछे भी संजय का हाथ साफ़ दिखायी देता था। एयर मार्शल लाल वायु-सेना के प्रधान रह चुके थे और इंडियन एयरलाइंस के चेयरमैन बनाकर लाये गये थे। इस मामले में तो संजय के भाई राजीव[1] का भी हाथ था।

एयर मार्शल लाल 31 जुलाई 1976 को रिटायर होनेवाले थे। वह इसके सारे काग़ज़ात दाखिल करके छुट्टी लेकर चले जाना चाहते थे। लेकिन वह यह भी चाहते थे कि उनकी जगह लेने के लिए किसी को तैयार भी कर दें। उनके बाद डिप्टी मैनेजिंग डायरेक्टर सत्यमूर्ति की बारी थी। एयर मार्शल लाल ने अपने मंत्री राजबहादुर और प्रधानमंत्री से इसके बारे में सितम्बर 1975 में बातचीत की और यह सिफ़ारिश की कि उनके रिटायर हो जाने के बाद सत्यमूर्ति को मैनेजिंग डायरेटर बना दिया जाये। उन्होंने यह भी कहा कि अगर वे लोग चाहें तो वह खुद दिन में कुछ वक़्त काम के लिए दे सकते हैं और चेयरमैन बने रह सकते हैं। श्रीमती गांधी और राजबहादुर दोनों ही इस बात के लिए राज़ी हो गये कि सत्यमूर्ति को उनके बाद उनकी जगह दे दी जाये। लेकिन कहा जाता है कि राजीव सत्यमूर्ति के खिलाफ़ था।

अक्तूबर में राजबहादुर ने एयर मार्शल लाल से कहा कि प्रधानमंत्री चाहती हैं कि तीन पाइलटों को तरक़्क़ी दे दी जाये। उन्होंने जवाब दिया कि तरक़्क़ी के लिए जो शर्तें ज़रूरी हैं, उन पर ये पाइलट खरे नहीं उतरते हैं। एयर मार्शल लाल के इस तरह इंकार कर देने से प्रधानमंत्री शायद चिढ़ गयीं। इसी बीच राजबहादुर ने सत्यमूर्ति के बारे में अपनी राय बदल दी थी और एयर मार्शल लाल को बता दिया था कि सत्यमूर्ति को मैनेजिंग डायरेक्टर नहीं बनाया जायेगा। एयर मार्शल लाल प्रधानमंत्री से मिले—उनके साथ यह उनकी आखिरी मुलाक़ात थी—और उनसे कहा कि सत्यमूर्ति मैनेजिंग डायरेक्टर की हैसियत से बहुत अच्छा काम करेंगे। श्रीमती गांधी ने कहा कि उनकी राय में सत्यमूर्ति 'कुछ ख़ास ईमानदार' नहीं हैं। साथ ही उन्होंने इतना और जोड़ दिया कि "मुझे सब पता है कि इंडियन एयरलाइंस में क्या होता रहता है।"

दिसम्बर में एयर मार्शल लाल ने कई लोगों की बदली कर दी। लेकिन राजबहादुर ने कहा कि उनकी मंज़ूरी लिये बिना न किसी को नौकरी पर रखा जाये और

1. सितम्बर 1976 में कुछ लोग इण्डियन एयरलाइंस के एक बोइंग-737 हवाई जहाज़ का अपहरण करके लाहौर ले गये थे। जिन कश्मीरियों की यह हरकत थी उन्होंने समझा था कि उसे राजीव चला रहा था। राजीव उसी रूट पर जाता था लेकिन सिर्फ़ एवरो हवाई जहाज़ चलाता था।

न किसी की बदली की जाये। उन्होंने यह भी कहा कि उन्हें यह हुक्म धवन से मिला है। राजबहादुर ने जनवरी 1976 में यह वायदा किया था कि इण्डियन एयरलाइंस के जो अफ़सर बोर्ड ऑफ़ डायरेक्टर्स में हैं उन्हें बदला नहीं जायेगा। लेकिन फ़रवरी में जब नया बोर्ड बनाया गया तो सत्यमूर्ति[1] का नाम काटकर उनकी जगह उनसे बहुत छोटे एक अफ़सर को रख दिया गया। एयर मार्शल लाल ने राजबहादुर के पास जाकर इसका विरोध किया। इस पर राजबहादुर ने लाल से कहा कि आप जिस तरह इण्डियन एयरलाइंस का काम-काज चला रहे हैं उससे प्रधानमंत्री खुश नहीं हैं।

अप्रैल में लाल ने इस्तीफ़ा दे दिया और छुट्टी माँगी। राजबहादुर ने अपने एक ज्वाइंट सेक्रेटरी को भेजकर उनसे कहलवाया कि वह छुट्टी पर न जायें। लाल ने छुट्टी की अर्ज़ी वापस ले ली। लेकिन तब तक राजबहादुर को धवन से यह आदेश मिल चुका था कि लाल को छुट्टी पर जाने दिया जाये। लाल ने प्रधानमंत्री से मिलने की नाक़ामयाब कोशिश की।

13 अप्रैल को लाल ने देखा कि उनके दफ़्तर के बाहर सादी पोशाक में कुछ पुलिसवाले तैनात हैं और लॉबी में पुलिस का एक डी॰ एस॰ पी॰ बैठा है। लाल 19 अप्रैल से छुट्टी पर जाना चाहते थे लेकिन उनके मंत्रालय से पहले ही एक सर्कुलर भेजा जा चुका था कि एयर मार्शल लाल 12 अप्रैल से छुट्टी पर हैं। बाद में मंत्रालय ने एक और चिट्ठी जारी कर दी जिसमें कहा गया था कि एयर मार्शल लाल की नौकरी खत्म कर दी गयी है।

लाल ने जिन-जिन लोगों की बदली की थी उन सबको फिर उनकी पुरानी जगहों पर बहाल कर दिया गया और वह तीन पाइलट जो लाल की राय में 'इस लायक' नहीं थे, उन्हें तरक़्क़ी दे दी गयी।

इनकम-टैक्स वालों ने लाल और उनके भाई को बहुत तंग किया। बाद में लाल ने एक पिछली घटना का हवाला देते हुए बताया कि एक बार श्रीमती गांधी ने उनसे कहा था कि गुआना जैसे देश में अगर कोई अफ़सर प्रधानमंत्री को नापसन्द हो तो उसे उनके कमरे में घुसने तक नहीं दिया जाता। अब लाल की समझ में आ रहा था कि उनका क्या मतलब था।

संजय बेकार के बखेड़े खड़े करने लगा था। 11 जनवरी 1976 को वह नौ-सेना के किसी समारोह में बंसीलाल के साथ बम्बई गया। एम॰ ई॰ एस॰ के शानदार बँगले 'नुक़' में थल-सेना और वायु-सेना के प्रधानों को ठहराने का बन्दोबस्त पहले से किया जा चुका था। नौ-सेना के अफ़सरों ने संजय और बंसीलाल के ठहरने का इन्तज़ाम दूसरी जगह किया था—होटल में एक पूरा 'सुइट' और एक दो आदमियों के रहने का कमरा। बंसीलाल ने 'सुइट' तो संजय को दे दिया और खुद कमरे में ठहर गये। बंसीलाल ने नौ-सेना के प्रधान एस॰ एन॰ कोहली से कहा कि यह इन्तज़ाम उन्हें पसन्द नहीं आया।

फिर जब आलीशान डिनर हुआ तो इस बात पर बड़ी ले-दे हुई कि कौन कहाँ बैठे। बड़ी मेज़ पर राष्ट्रपति और उनकी पत्नी, गवर्नर और उनकी पत्नी, बंसीलाल और उनकी पत्नी और दो बड़े अफ़सरों के बैठने का इन्तज़ाम किया गया था। फ़ौज के प्रधानों तक के बैठने का प्रबन्ध दूसरी मेज़ों पर किया गया था जो उस बड़ी मेज़ की

1. एयर इण्डिया के डिप्टी मैनेजिंग डायरेक्टर पी॰ के॰ जी॰ अप्पू स्वामी का नाम भी हटा दिया गया, शायद इसलिए कि यह कहने को रहे कि दोनों डिप्टी मैनेजिंग डायरेक्टरों के नाम हटा दिये गये हैं।

ही तीन शाखाओं की तरह लगायी गयी थीं।

संजय की जगह इस क्रम में कुछ नीचे नौ-सेना के अफ़सरों के साथ थी। बंसीलाल चाहते थे कि संजय को बड़ी मेज़ पर जगह दी जाये। कोहली ने कहा कि यह मुमकिन नहीं है। बंसीलाल ने नौ-सेना के दूसरे अफ़सरों के सामने अोल-फ़ोल बकना शुरू कर दिया। यह उनकी हमेशा की आदत थी कि जब कोई उनकी बात नहीं मानता था तो वह गाली-गलौज पर उतर आते थे। कोहली को रिटायर होने में सिर्फ़ तीन महीने बाक़ी थे। अचानक उन्होंने कहा कि मैं फ़ौरन इस्तीफ़ा देना चाहता हूँ। बंसीलाल को यह अन्दाज़ा नहीं था कि नौबत यहाँ तक पहुँच जायेगी; उन्होंने फ़ौरन अपना लहज़ा बदल दिया। चूँकि बंसीलाल की पत्नी डिनर में नहीं आयीं इसलिए उनकी जगह संजय को दे दी गयी। इस घटना से चारों तरफ़ एक तल्ख़ी पैदा हो गयी थी। जल्दी ही इसकी गूंज सारे देश में सुनायी देने लगी। लोग नुक्ताचीनी करने लगे, दबी ज़बान से ही सही।

ऐसा नहीं है कि यह बंसीलाल के अक्खड़पन और धाँधली की पहली मिसाल थी। अभी कुछ ही दिन पहले उन्होंने दिल्ली में फ़ौज की ऑपरेशंस ब्रांच के एक कर्नल सुखजीतसिंह को सस्पेंड कर दिया था। मामला उत्तर प्रदेश में तराई के इलाक़े की किसी ज़मीन की क़ीमत का था। वह ज़मीन कर्नल साहब ने उसके मालिकों को 'वापस दिलवा दी थी'। बंसीलाल के स्पेशल असिस्टेंट आर० सी० मेठानी ने सुखजीत-सिंह को अपने दफ़्तर में बुलाकर बहुत लताड़ा। जिसको उस ज़मीन से 'बेदखल' किया गया था वह भी उस वक़्त वहीं मौजूद था। बंसीलाल तो इससे भी एक क़दम आगे बढ़ गये; उन्होंने उस अफ़सर को 'सस्पेंड' ही कर दिया। सुखजीत को मिलिटरी ऑपरेशंस ब्रांच से हटाकर दिल्ली छावनी में किसी मामूली जगह भेज दिया गया। न कोई जाँच-पड़ताल हुई और न ही दूसरे अफ़सरों ने ज़बान खोली। बंसीलाल के दबाव में आकर ऊपर से नीचे तक सबने घुटने टेक दिये। बाद में इस बिगड़ी हुई हालत को सँभालने के लिए कुछ क़दम उठाये गये। सुखजीतसिंह की ब्रिगेडियर बनने की बारी थी; उन्हें यह तरक़्क़ी देकर पूर्वी भारत में तैनात कर दिया गया।

ताक़त का नशा अकेले बंसीलाल को रहा हो, ऐसी बात नहीं थी। शुक्लाजी के भी यही तेवर थे। उनका अपना मैदान फ़िल्म जगत् था। वह डायरेक्टरों, प्रोड्यूसरों और फ़िल्मी सितारों को अपने इशारों पर नचाने के लिए तरह-तरह के हथकंडे इस्ते-माल करते थे। किशोर कुमार उनके गुस्से का निशाना इसलिए बना कि उसने दिल्ली में युवक कांग्रेस के एक तमाशे में गाना गाने में आनाकानी की थी। किशोर के सारे गाने रेडियो और टेलीविज़न पर बन्द करवा दिये गये। कितनी ही फ़िल्में सेंसर की मंज़ूरी न मिलने की वजह से अटक गयीं क्योंकि शुक्लाजी चाहते थे कि प्रोड्यूसर और फ़िल्म स्टार उनकी 'जी-हुज़ूरी' करें। सूचना मंत्रालय में काम करनेवाले एक और पुलिस अफ़सर इस मैदान में उनके ख़ास कारिन्दे थे।

ताक़त का बेजा इस्तेमाल करने की बीमारी 'घराने' के कई और लोगों को भी लग चुकी थी। श्रीमती गांधी की बड़ी बहू, राजीव की बीवी सोनिया, इटैलियन थी। उसके पास अभी तक इटैलियन पासपोर्ट ही था लेकिन उसने परदेसियों पर लागू होनेवाले क़ानून के अनुसार अभी तक अपना नाम रजिस्टर नहीं कराया था। इस क़ानून के अनुसार हर विदेशी आदमी को यहाँ पहुँचने के नब्बे दिन के अन्दर अपना नाम रजिस्टर करवाना पड़ता था। (मियाद पूरी हो जाने पर हर बार नाम फिर से रजिस्टर कराना ज़रूरी था।) किसी ज़माने में वह सरकारी लाइफ़ इंश्योरेंस कॉर्पोरेशन की एजेंट थी लेकिन अब मारुति की सलाह देनेवाली कम्पनी में काम करती थी।

श्रीमती गांधी की दूसरी बहू, संजय की बीवी मेनका ने एक पत्रिका निकाली थी सूर्य, जिसके लिए हर जगह से हर तरीक़े से इश्तहार जुटाये जाते थे।

फिर यूनुस साहब थे जिनका तक़ियाकलाम था 'पकड़ लो'। विदेशी पत्रकारों के सामने उन्होंने कहा था कि पश्चिमी जर्मन 'हिटलर के ढंग से सोचते हैं,' अंग्रेज़ 'पागल' हैं और अमरीकी 'बेहूदा' हैं। वह प्रेसीडेंट फ़ोर्ड को कहते थे "अरे, वह फ़ुटबाल का खिलाड़ी"।

लेकिन अब यूनुस अख़बारों पर सेंसरशिप कुछ ढीली कर देने के पक्ष में थे, जैसा कि विदेशी पत्रकारों के मामले में पहले ही किया जा चुका था।

बहरहाल, अख़बारों पर सेंसर के शिकंजे को अब पार्टी के और निज़ी फ़ायदे के लिए इस्तेमाल किया जा रहा था। सेंसरवाले ख़बरों को और कांग्रेस या युवक कांग्रेस के बयानों तक को छापने से सिर्फ़ इसलिए मना कर देते थे कि शुक्लाजी की मर्ज़ी नहीं होती थी, जो हरदम धवन के साथ और धवन की मार्फ़त संजय के साथ सम्पर्क बनाये रखते थे। शुक्लाजी जिस राज्य में भी जाते थे, वहाँ वह सेंसरवालों को और अख़बार वालों को ताकीद कर देते थे कि कांग्रेस के अन्दरूनी झगड़ों के बारे में कोई ख़बरें न दें। मुख्यमंत्री सेंसर का सहारा लेकर उन ख़बरों को दबवा देते थे जो उनके या उनके गुट के ख़िलाफ़ होती थीं। पंजाब में कांग्रेस के अध्यक्ष मोहिन्दरसिंह गिल को अपने बयान छपवाने में कठिनाई होती थी क्योंकि जैलसिंह ने सेंसरवालों को इसके बरख़िलाफ़ हिदायत दे रखी थी। पश्चिम बंगाल के सूचनामंत्री सुब्रत मुखर्जी ने सेंसर के दफ़्तर से कह रखा था कि उनके साथियों के ख़िलाफ़ किसी ख़बर को छपने की मंज़ूरी न दी जाये।

अँग्रेज़ी की दो पत्रिकाओं को भारत में इमर्जेंसी के क़ायदे-क़ानूनों की आलोचना करने पर अपना प्रकाशन बन्द कर देने पर मजबूर कर दिया गया था। इनमें से एक था साप्ताहिक ओपीनियन जिसे महाराष्ट्र सरकार ने इसलिए बन्द करवा दिया था कि उसने आपत्तिजनक सामग्री के प्रकाशन से सम्बन्धित क़ानून के सेंसर के नियमों को तोड़ा था।

दूसरी पत्रिका थी मासिक सेमिनार। जब 15 जुलाई को सरकार ने उसे हर चीज़ पहले सेंसर कराके छापने का आदेश दिया तो उसे मानने से इंकार करके उन्होंने ख़ुद ही अख़बार छापना बन्द कर दिया। इस पत्रिका के दिलेर संपादक रमेश और उनकी बीवी राज ने सेमिनार के उस आख़िरी अंक में लिखा था कि सेमिनार "अपनी ईमानदारी और आज़ादी के साथ विचार व्यक्त करने के अधिकार को इस तरह से छोड़ने को तैयार नहीं है।" सेमिनार और ओपीनियन बन्द होने की ख़बर किसी अख़बार में नहीं छपी।

राजनीतिक मक़सद से मीसा का इस्तेमाल अब एक आम बात थी जिसे सभी जानते थे। जिन लोगों को आत्मा के गवाही न देने की वजह से किसी काम के करने में एतराज़ होता था, वे भी एक धमकी से सही रास्ते पर आ जाते थे। मिसाल के लिए, केरल में विपक्ष के मुस्लिम लीग के कई नेताओं को महज़ इसलिए नज़रबन्द कर दिया गया कि वे शासक गुट से अलग हो गये थे और सरकार के ख़िलाफ़ हो गये थे। नज़रबन्दी के दौरान उन्हें लालच दिया गया कि अगर वे शासक गुट के साथ आ जायें तो उन्हें रिहा कर दिया जायेगा, लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला।

केरल कांग्रस के नेताओं को भी गिरफ़्तारी और क़ैद की धमकी देकर ही मार्क्सवादी मोर्चा छोड़ने और शासक मोर्चे के साथ आ जाने के लिए मजबूर किया गया था। सच तो यह है कि केरल कांग्रेस इमरजेंसी की आलोचना करने में बहुत मुखर

थी। लेकिन ओम मेहता के इशारे पर, खुफ़िया विभाग के लोगों ने केरल कांग्रेस के के० एम० जार्ज और उनके साथियों को दिल्ली जाने पर मजबूर किया, जहाँ उनसे दोटूक कह दिया गया कि या तो वे शासक मोर्चे में शामिल हो जायें या जेल जाने को तैयार रहें। उनसे वायदा किया गया कि अगर वे शासक मोर्चे में शामिल हो जायेंगे तो उनके कुछ लोगों को मंत्री बना दिया जायेगा।

हरियाणा में बंसीलाल ने मीसा का सहारा लेकर एक फ़ैक्टरी के मैनेजर को इसलिए पकड़वा दिया कि उसने बंसीलाल के एक आदमी को ग़बन के जुर्म में इस्तीफ़ा देने पर मजबूर कर दिया था। इसकी शिकायत श्रीमती गांधी तक पहुँचायी गयीं, पर उन्होंने कुछ किया नहीं। सबको अपने-अपने मैदान में खुली छूट थी।

मीसा के बेजा इस्तेमाल के बावजूद, जहाँ-तहाँ लोग अब भी अपनी मर्ज़ी से गिरफ़्तार हो रहे थे। गुजरात के जनता मोर्चे ने 15 अगस्त 1976 को अहमदाबाद से दण्डी तक की पदयात्रा संगठित की। 1930 में जब महात्मा गांधी ने दक्षिणी गुजरात के बलसार ज़िले में ऐसी ही एक पदयात्रा की थी तो वह भी दण्डी तक गये थे। हालाँकि सरदार पटेल की बहन कुमारी मणिबेन पटेल इस 'यात्रा' की अगुवाई कर रही थीं, लेकिन उन्हें गिरफ़्तार नहीं किया गया; उनके बाक़ी सब साथी गिरफ़्तार कर लिये गये। दिल्ली से खास ताक़ीद कर दी गयी थी कि उन्हें गिरफ़्तार न किया जाये। बाईस दिन बाद वह दण्डी पहुँचीं।

अगस्त के महीने में ही बाबूभाई पटेल भी, जो गुजरात के मुख्यमंत्री रह चुके थे, मीसा में पकड़ लिये गये।

इस तरह की गिरफ़्तारियों से विदेशों में लोगों को उम्मीद बँधी कि अब भी कुछ हिन्दुस्तानी ऐसे हैं जो जनतान्त्रिक आदर्शों के लिए लड़ सकते हैं। कुछ विदेशी अखबारों ने इन घटनाओं का सहारा लेकर श्रीमती गांधी पर हमला किया। इस आलोचना से उनको बहुत चोट पहुँची। इमर्जेंसी के दौरान कुछ लोग विदेशों में लोगों को यह बताने के लिए भारत छोड़कर चले गये कि इस देश में किस तरह धीरे-धीरे बाक़ायदा आज़ादी की जड़ें खोखली की जा रही हैं।

अमरीका ने 24 अगस्त को भारत की बार कौंसिल के अध्यक्ष राम जेठमलानी को राजनीतिक शरण दी। केरल में सरकार के खिलाफ़ एक भाषण देने की वजह से जेठमलानी को डर था कि उन्हें गिरफ़्तार कर लिया जायेगा। 28 अप्रैल को वह हवाई जहाज़ से भारत से कनाडा में मांट्रियल के लिए रवाना हो गये और मई में अमरीका पहुँचे।

जेठमलानी ने वेन स्टेट यूनिवर्सिटी से, जहाँ वह तुलनात्मक संविधान क़ानून के अतिथि प्रोफ़ेसर की हैसियत से गये थे, बार कौंसिल के वाइस-चेयरमैन को लिखा : "मैं नहीं मान सकता कि तुम्हारी आत्मा इतनी मर चुकी है कि तुम तानाशाही और घोर अत्याचार में भी खूबियाँ ढूंढने लगे हो। मुझे यह न बताओ कि तुम्हारे ऊपर उन कामयाबियों का बहुत रौब पड़ा है जिनका कि श्रीमती गांधी दावा करती हैं। मुसोलिनी और हिटलर दोनों ही के पास अपने देशवालों को दिखाने के लिए उससे कहीं ज्यादा कामयाबियाँ थीं जितनी कि श्रीमती गांधी दिखा सकती हैं।...मैं तुम्हें यक़ीन दिलाता हूँ कि मैं यहाँ से भारत की आज़ादी के लिए उससे कहीं ज्यादा काम कर रहा हूँ जितना मैं श्रीमती गांधी की जेलों में बैठकर कर पाता। किसी दिन तुम्हें पूरी सच्चाई का पता चलेगा। मुझे इसमें ज़रा भी शक नहीं है कि उनका अत्याचारी शासन हमेशा नहीं बना रहेगा और जब उसका खात्मा होगा तो तुममें से हर एक को, जिसने या तो चुप रहकर बदी के आगे सर झुका दिया है या आगे बढ़कर उसका साथ दिया है, अपराधी

ठहराया जायेगा। हिसाब चुकाने का दिन अब दूर नहीं है।"

राज्यसभा में जनसंघ के सदस्य सुब्रह्मण्यम स्वामी पर भी सरकार के खिलाफ़ काम करने और क़ानून के चंगुल से और देश से भाग निकलने का आरोप था। उनके खिलाफ़ गिरफ़्तारी का वारंट जारी कर दिया गया था। उनका पासपोर्ट ज़ब्त कर लिया गया था। दिल्ली में उनके घरवालों को सताया जा रहा था। राज्यसभा ने 2 सितम्बर को उनके मामले की छानबीन करने के लिए कमेटी बनाने का फ़ैसला किया। अगर वह लगातार छः महीने तक सदन से ग़ैरहाज़िर रहते तो उनकी सदस्यता खत्म हो जाती। उसे बरक़रार रखने के लिए वह पुलिस की मिलीभगत से अगस्त में सदन में आये, लेकिन जितने रहस्यमय ढंग से वह आये उतने ही रहस्यमय ढंग से फिर देश के बाहर भी निकल गये। बाद में उनकी राज्यसभा की सदस्यता खत्म कर दी गयी।

स्वामी के इस तरह ग़ायब हो जाने से श्रीमती गांधी की सरकार की बड़ी बदनामी हुई। लेकिन 24 सितम्बर को अंडरग्राउंड नेता जार्ज फ़र्नांडीज़ और चौबीस दूसरे लोगों पर नई दिल्ली के एक मजिस्ट्रेट की अदालत में सरकार के खिलाफ़ साज़िश करने का आरोप लगाकर उनकी सरकार ने अपनी नाक ऊँची रखने की कोशिश की।

इन लोगों का अपराध यह बताया गया था कि इन्होंने बड़ौदा (गुजरात) से टनों डायनामाइट दूसरी जगहों को भेजा था और वे "रेल-व्यवस्था में बहुत बड़े पैमाने पर तोड़-फोड़ मचाकर सारे देश में उथल-पुथल पैदा कर देना चाहते थे।"

असल में 'बड़ौदा डायनामाइट कांड' के लोगों के बारे में श्रीमती गांधी को खबर चिमनभाई ने दी थी जो गुजरात के मुख्यमंत्री रह चुके थे। वह श्रीमती गांधी से समझौता कर लेना चाहते थे, क्योंकि 1974 में श्रीमती गांधी ने ही उन्हें मुख्यमंत्री के पद से इस्तीफ़ा देने पर मजबूर कर दिया था।

श्रीमती गांधी को जो खबरें मिली थीं उनमें कहा गया था कि गुजरात में पूरा सरकारी ढाँचा बहुत ढीला-ढाला था और उस पर अभी तक जनता मोर्चे की सरकार का 'नशा' छाया हुआ था। उन्होंने तेल तथा रसायन मंत्री पी० सी० सेठी को वहाँ से असली खबर लाने के लिए भेजा।

अहमदाबाद के हवाई अड्डे पर उतरते ही सेठी ने इस बात का जवाब तलब किया कि उनको सलामी देने का इन्तज़ाम क्यों नहीं किया गया था। पुलिस कमिश्नर ने जल्दी-जल्दी वहाँ पर तैनात कुछ पुलिसवालों को जमा करके जैसी-तैसी सलामी का बन्दोबस्त करा दिया। सेठी को यह बात पसन्द नहीं आयी और उन्होंने पुलिस कमिश्नर को बर्खास्त कर देने का हुक्म दे दिया। उनके चले आने के बाद गुजरात के अधिकारियों ने बर्खास्तगी के इस हुक्म की तामील करने से इंकार कर दिया क्योंकि वे जानते थे कि पुलिस कमिश्नर बहुत ही अच्छा अफ़सर है। अन्दाज़ा लगाया जाता है दिल्ली के लिए रवाना होने के वक़्त तक सेठीजी ने अहमदाबाद और बड़ौदा में बीसियों पुलिस अफ़सरों और दूसरे सरकारी अफ़सरों को 'बर्खास्त' कर दिया था।

अहमदाबाद की एक मज़दूर बस्ती में वहाँ के म्युनिसिपल कार्पोरेशन की तरफ़ से जो एक मीटिंग की गयी उसमें सेठीजी अँग्रेज़ी में बोलने लगे। एक मुसलमान मज़दूर ने बीच में खड़े होकर सुझाव दिया कि मंत्रीजी हिन्दी में बोलें। इस पर सेठीजी भड़क उठे और बोले, "इस आदमी को गिरफ़्तार क्यों नहीं कर लेते? क्या मैं यहाँ अपनी बेइज़्ज़ती कराने आया हूँ?" इतना कहकर वह मंच पर से उतर आये और हितेन्द्र देसाई और वहाँ के मेयर वाडीलाल कामदार हक्का-बक्का देखते रह गये। मेयर ने सेठीजी को समझाने की कोशिश की कि किसी का इरादा उनकी बेइज़्ज़ती करने का नहीं था। लेकिन सेठीजी ने सड़क पर लड़नेवाले लोगों की तरह अहमदाबाद

के प्रथम नागरिक को ढकेल दिया। प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष की हैसियत से हितेन्द्र देसाई सेठीजी की मोटर में घुसने ही वाले थे कि उन्होंने चिल्लाकर कहा, "आपसे किसने कहा कि मेरे साथ चलिये ? चले जाइये यहाँ से।"

दिल्ली लौटकर सेठीजी ने श्रीमती गांधी को बताया कि गुजरात में इमर्जेंसी का कहीं नामो-निशान नहीं है। इसके बाद ओम मेहता अहमदाबाद भेजे गये और वहाँ गिरफ़्तारियों का दौर शुरू हो गया। राष्ट्रपति के सलाहकारों की राय में इन गिरफ़्तारियों की कोई ज़रूरत नहीं थी।

गुजरात में गिरफ़्तारियों की नयी लहर से ऐसा लगा कि इमर्जेंसी एक ऐसी सुरंग है जिसका कोई छोर नहीं है। बहुत-से लोग लाचार महसूस करते थे और चुपचाप सब-कुछ बर्दाश्त कर लेते थे। लेकिन सर्वोदय आन्दोलन के 65 वर्ष बूढ़े कार्यकर्त्ता और विनोबा भावे के साथी प्रभाकर शर्मा ने, श्रीमती गांधी के नादिरशाही शासन के खिलाफ़ अपनी आवाज उठाने के लिए 11 अक्तूबर को महाराष्ट्र के वर्धा शहर के बाहर सुरगाँव में अपने-आपको जलाकर प्राण दे दिये।

आत्मदाह करने से पहले शर्मा ने श्रीमती गांधी को एक पत्र लिखकर ऐसा करने का कारण बताया। इस पत्र में उन्होंने लिखा था : "भगवान् और इंसान को भूलकर और अपने-आपको हर तरह की अत्याचारी ताक़त से लैस करके सरकार ने अखबारों से उनकी आज़ादी छीन ली और भारतीय जीवन की हर उस खूबी पर हमला किया जो भली, महान् और उदात्त हो सकती है। इस साल उसने बड़ी बेशर्मी से राष्ट्र की आत्मिक और अहिंसक सभ्यता पर हमला किया है।

"आपका मीसा का क़ानून सरकारी अफ़सरों को पिशाच और लोगों को कायर बना देता है। जो निडर होकर अपना काम करता है उसे हमेशा के लिए जेल में डाल दिया जाता है। न्याय कहीं नहीं मिलेगा। जज आपके गुर्गे हैं। ऐसी हालत में जेल जाना दमन को स्वीकार कर लेना होगा। मैं इसे कभी बर्दाश्त नहीं करूंगा कि आप मुझे सूअरों की तरह डरा-धमकाकर रखें।" गांधीजी के अखबार यंग इंडिया का हवाला देते हुए पत्र में लिखा गया था : "अगर हम आज़ाद मर्द या औरत की तरह न रह सकें तो हमें मरकर सन्तोष पाना चाहिए।" शर्मा ने यह भी लिखा : "मैं जानता हूँ कि इस तरह का पत्र लिखना भी अपराध है। इसलिए मैं आपके इस पापी शासन में जीना नहीं चाहता।"

विनोबा ने शर्मा से कहलवाया था कि वह आकर उनसे मिलें, लेकिन यह हो न सका। विनोबा को श्रीमती गांधी से हमदर्दी ज़रूर थी लेकिन वह ख़ुद बहुत निराश थे। पुलिस ने और खुफ़िया विभागवालों ने 9 जून को उनके आश्रम पर छापा मारा था और उनकी हिन्दी पत्रिका मैत्री के उस अंक की 4,200 कापियाँ ज़ब्त कर ली थीं जिसमें यह ऐलान छपा था कि अगर गो-वध पर पाबन्दी न लगायी गयी तो वह 11 सितम्बर से अनशन शुरू कर देंगे। (बाद में सरकार ने यह पाबन्दी लगा भी दी थी।)

ज्यादतियों के क़िस्से सुन-सुनकर और यह महसूस करके कि इस हंगामे का कोई अन्त नहीं है, वे लोग भी, जो कभी इमर्जेंसी में कुछ अच्छाइयाँ देखते थे, अब उसके खिलाफ़ हो गये। उन्हें इस निरंकुश शासन से या एक चांडाल चौकड़ी की मनमानी सरकार से छुटकारे का कोई रास्ता नहीं दिखायी देता था।

दो बातों की वजह से सरकार और जनता के बीच की दूरी और बढ़ गयी—संविधान में संशोधन और चुनावों का एक बार फिर टल जाना। कांग्रेस ने 27 फ़रवरी 1976 को स्वर्णसिंह की अध्यक्षता में जो एक बहुत शक्तिशाली कमेटी बनायी थी उसने अपनी रिपोर्ट तैयार करके दे दी जिसे सरकार ने लगभग ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर

लिया। स्वर्णसिंह ने मुझे बताया, "अगर मैं न होता तो इससे भी बदतर हालत होती।" उन्होंने कहा, "हम लोगों ने राष्ट्रपति प्रणाली को हमेशा के लिए दफ़न कर दिया।"

संविधान में संशोधनों का जो सुझाव रखा गया था उससे हर तरफ़ गुस्से की लहर दौड़ गयी। श्रीमती गांधी ने वचन दिया कि संसदीय प्रणाली नष्ट नहीं की जायेगी और यह कि संविधान में बस कुछ 'छोटे-मोटे हेर-फेर' किये जायेंगे। लेकिन इससे लोगों की आशंकाएँ दूर नहीं हुईं और यह माँग की गयी, ख़ास तौर पर बुद्धि-जीवियों की तरफ़ से, कि नये चुनाव हो जाने से पहले संविधान में कोई संशोधन न किये जायें। सुप्रीम कोर्ट के बार एसोसिएशन ने भी ऐसी ही माँग उठायी।

शिक्षा, कला और साहित्य के क्षेत्रों के लगभग 300 जाने-माने लोगों के हस्ताक्षर से श्रीमती गांधी को एक अर्ज़ी दी गयी जिसमें ज़ोर देकर कहा गया कि "मौजूदा संसद को संविधान में बुनियादी परिवर्तन करने का न कोई राजनीतिक अधिकार है न नैतिक अधिकार।" ग़ैर-कम्युनिस्ट विपक्ष और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी संविधान में किये जानेवाले संशोधनों के बारे में कांग्रेस दल की कमेटी के साथ कोई बातचीत करने को तैयार नहीं थे और उन्होंने इसके बारे में आवश्यक बिल पास करने के लिए 25 अक्तूबर को बुलाये गये संसद के विशेष अधिवेशन का बॉयकाट कर दिया।

संसद ने 2 नवम्बर को 59 धाराओं वाले संविधान (42वाँ संशोधन) बिल को 4 के ख़िलाफ 366 वोटों से पास कर दिया। आधे राज्यों की विधानसभाओं ने जब इस बिल पर अपनी मुहर लगा दी और 18 दिसम्बर को जब राष्ट्रपति ने भी अपनी मंज़ूरी दे दी तो यह बिल अधिनियम बन गया। संविधान में बताये गये निदेशक सिद्धान्तों को इसमें मूल अधिकारों से ऊँचा स्थान दिया गया था, नागरिकों के दस बुनियादी कर्त्तव्य बताये गये थे, जिनमें अनिवार्य राष्ट्रीय सेवा का कर्त्तव्य भी शामिल था, लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं की अवधि पाँच साल से बढ़ाकर छः साल कर दी गयी थी, क़ानून और व्यवस्था में किसी 'संगीन' स्थिति से निबटने के लिए केन्द्रीय सशस्त्र सेना को किसी भी राज्य में तैनात कर देने का अधिकार दे दिया गया था और राष्ट्रपति को मंत्रिमण्डल की सलाह को मानने के लिए बाध्य कर दिया गया था, 'राष्ट्र-विरोधी हरक़तों' पर पाबन्दी लगा दी गयी थी और राष्ट्रपति को दो साल के लिए इन संशोधनों के रास्ते में आनेवाली किसी भी रुकावट को दूर करने के लिए आदेश जारी करने का अधिकार दे दिया गया था। यह भी तय कर दिया गया था कि संविधान के किसी संशोधन के ख़िलाफ़ किसी भी अदालत में कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती और इसके बाद से केन्द्र या राज्यों के बनाये हुए किसी भी क़ानून को तब तक असांविधानिक नहीं ठहराया जा सकता जब तक कि कम-से-कम सात जजों में से दो-तिहाई का बहुमत ऐसा फ़ैसला न कर दे। संविधान की प्रस्तावना को बदल दिया गया : 'सार्वभौम लोकतान्त्रिक गणराज्य' को बदलकर 'सार्वभौम समाजवादी गणराज्य' कर दिया गया और 'राष्ट्र की एकता' की जगह 'राष्ट्र की एकता और अखंडता' कर दिया गया।

बरुआ ने कहा कि विचार प्रकट करने की आज़ादी के साथ उसके दुरुपयोग का दण्ड भी मिलना चाहिए और 'दुरुपयोग' क्या है, क्या नहीं, इसका फ़ैसला सरकार करेगी। संविधान में कुछ और संशोधनों का सुझाव ऐन वक़्त पर टाल दिया गया। सिद्धार्थ बाबू चाहते थे कि राष्ट्रपति को कोई सलाह देने से पहले प्रधानमंत्री के लिए मंत्रिमण्डल से मशविरा करना ज़रूरी न समझा जाये।

जिन-जिन लोगों को श्रीमती गांधी के शासन से फ़ायदा हुआ था उन सभी को इन संशोधनों को उचित साबित करने के काम पर लगा दिया गया। जब भी श्रीमती

गांधी के सामने कोई समस्या होती थी तब वह ऐसा ही करती थीं।

भारत के भूतपूर्व चीफ़ जस्टिस और लॉ कमीशन के अध्यक्ष पी० बी० गजेन्द्र गडकर ने इन संशोधनों की पैरवी करते हुए कहा, "जब भारतीय जनतन्त्र नागरिकों की न्यायोचित पर बढ़ती हुई आशाओं और आकांक्षाओं को पूरा करने और सामाजिक बराबरी और आर्थिक न्याय के आधार पर एक नयी समाज-व्यवस्थता स्थापित करने के अपने ध्येयों को पूरा करने का बीड़ा उठायेगा, तो मुमकिन है कि इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उसे समय-समय पर मुनासिब क़ानून बनाने पड़ें।"

विपक्ष के नेता अशोक मेहता ने इस बात की निन्दा की कि सरकार "इमर्जेंसी की स्थिति को (जो जून 1975 में लागू की गयी थी) क़ानूनी जामा पहना रही है और (प्रधानमंत्री इन्दिरा) गांधी के हाथों में सारी ताक़त समेट लेने को क़ानून का सहारा दे रही है।"

जब संविधान में परिवर्तन करने के सवाल पर विचार करने के लिए 25 अक्तूबर को संसद की बैठक हुई तो विपक्ष के ज़्यादातर सदस्यों ने उस बैठक में भाग नहीं लिया। विपक्ष की चार पार्टियों ने मिलकर एक बयान दिया जिसमें कहा गया था कि ये संशोधन "संविधान में जिन अंकुशों और सन्तुलनों की व्यवस्था की गयी है उसकी पूरी प्रणाली को ख़त्म कर देंगे और नागरिकों के हित के खिलाफ़ सत्ता के मन-माने उपयोग को ही बाक़ी रहने देंगे।"

श्रीमती गांधी इस बिल का विरोध करनेवालों पर बरस पड़ीं और बहस के दौरान उन्होंने कहा कि "जो लोग क़ानून को एक ऐसे शिकंजे में कस देना चाहते हैं जिसे कभी बदला न जा सके, उन्हें नये भारत की सच्ची भावना का कुछ भी पता नहीं है।"

यह आलोचना की गयी कि सरकार ने जो क़दम उठाये थे उनका संविधान के बुनियादी ढांचे पर असर पड़ता है। सुप्रीम कोर्ट के एक बहुमत फ़ैसले के अनुसार संसद को ऐसा करने का अधिकार नहीं था। श्रीमती गांधी ने कहा कि संविधान के "बुनियादी ढांचे के उस जड़ विचार को हम नहीं मानते," जो जजों की 'गढ़ी हुई' बात है। सरकार का साथ देनेवाले संविधान के विशेषज्ञों ने कहा कि जजों ने कभी भी साफ़-साफ़ शब्दों में यह नहीं बताया कि बुनियादी ढांचा है क्या। संविधान के बुनियादी लक्षण गिनाना कोई ऐसा कठिन काम नहीं था। इनमें से कुछ तो बिलकुल बुनियादी थ—स्वतन्त्र और निष्पक्ष चुनाव, जनता के सामने सरकार की जवाबदेही, स्वतन्त्र जजों के सामने अदालतों में विचार, क़ानून का शासन जिसका मतलब यह था कि क़ानूनी कार्रवाई पूरी किये बिना किसी भी आदमी से उसकी जान, आज़ादी या जाय-दाद नहीं छीनी जा सकती, क़ानून की नज़र में सभी की बराबरी, स्वतन्त्र अख़बार, धर्म-निरपेक्षता जिसका मतलब था धर्म की आज़ादी और धर्म के आधार पर किसी भी तरह का भेदभाव न किया जाना और सामाजिक न्याय।

श्रीमती गांधी को या उनको घेरे रहनेवालों को जो चीज़ परेशान कर रही थी वह संविधान का बुनियादी ढांचा नहीं था। उनको असली परेशानी इस बात की थी कि बाक़ी सब लोग तो सीधे रास्ते पर आ गये थे लेकिन जज लोग अभी तक नहीं आये थे। कुछ जज अब भी स्वतन्त्र ढंग से काम करते थे और उनके जो फ़ैसले सरकार के खिलाफ़ होते थे वे प्रशासन के लिए हमेशा एक 'समस्या' खड़ी कर देते थे। वे परेशानी की जड़ थे; उन्हें एक जगह से बदलकर दूसरी जगह भेजना पड़ेगा; और यह दूसरों के लिए भी एक सबक़ होगा।

सोलह जजों को बदलकर दूसरी जगहों पर भेज दिया गया : एस० ग्रोवल

रेड्डी को आन्ध्र प्रदेश से गुजरात; सी० कोंडिया को आन्ध्र प्रदेश से मध्य प्रदेश; ओ० चिनप्पा रेड्डी को आन्ध्र प्रदेश से पंजाब; ए० पी० सेन को मध्य प्रदेश से राजस्थान; सी० एम० लोढा को राजस्थान से मध्य प्रदेश; ए० डी० कोशल को पंजाब से मद्रास; डी० एस० त्वेतिया को पंजाब से कर्नाटक; डी० बी० लाल को हिमाचल प्रदेश से कर्नाटक; बी० जे० दीवान को गुजरात से आन्ध्र प्रदेश; जे० एम० शेठ को गुजरात से आन्ध्र प्रदेश; टी० यू० मेहता को गुजरात से हिमाचल प्रदेश; डी० एम० चन्द्रशेखर को कर्नाटक से इलाहाबाद; एम० सदानन्द स्वामी को कर्नाटक से गौहाटी; जे० एल० विमदलाल को महाराष्ट्र से आन्ध्र प्रदेश (रिटायर हो गये); जी० आई० रंगराजन को दिल्ली से गौहाटी; आर० सच्चर को दिल्ली से राजस्थान। इन तबादलों की फ़ाइल श्रीमती गांधी ने खुद देखी थी।

क़ानूनी तौर पर तो इन जजों को एक जगह से बदलकर दूसरी जगह भेजा जा सकता था, लेकिन 1974 में अपने वार्षिक सम्मेलन में चीफ़ जस्टिसों ने खुद यह सिफ़ारिश की थी कि किसी जज का तबादला तभी किया जाना चाहिये जब वह इसके लिए राज़ी हो। लेकिन ये तबादले तो सज़ा देने के लिए किये गये थे और इसलिए जजों से उनकी रजामंदी लेने का कोई सवाल ही नहीं था।

दिल्ली हाईकोर्ट के एडीशनल जज जे० एल० अग्रवाल को, जिन्होंने नज़रबन्दी के कई मामलों में सरकार के खिलाफ़ फ़ैसला दिया था, फिर सेशन जज बना दिया गया। क़ानूनमंत्री गोखले और चीफ़ जस्टिस रे दोनों ही ने सिफ़ारिश की थी कि अग्रवाल को इस पद पर पक्का कर दिया जाये। लेकिन श्रीमती गांधी ने यह सुझाव नहीं माना। ओम मेहता ने उनसे कहा था कि जिन जजों का तबादला किया गया था उन्हीं की तरह अग्रवाल को भी सज़ा देना ज़रूरी है।

गोखले ने मुझे बताया कि जब से ओम मेहता गृह-मंत्रालय में आये थे तब से उन्होंने जजों के मामले में टाँग अड़ाना शुरू कर दिया था। चूंकि गृह-मंत्रालय का सेक्रेटरी न्याय विभाग का भी—जो क़ानून मंत्रालय को सौंप दिया गया था—सेक्रेटरी होता था, इसलिए ओम मेहता बड़ी आसानी से कुछ फ़ैसलों को अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ मोड़ सकते थे।

जजों के तबादलों का अदालतों पर कुछ असर ज़रूर पड़ा; अब फ़ैसले सरकार के पक्ष में ज्यादा होने लगे। गुजरात हाईकोर्ट के एक जज ने अपने तबादले का विरोध किया; इससे चवालीस और जजों के तबादले रुक गये।

अखबारों और अदालतों के 'क़ाबू में आ जाने' के बाद अब संजय को चुनाव टलवाने की धुन सवार थी। उसने संविधान सभा बुलाने का सुझाव रखा। मौजूदा संसद को ही संविधान सभा में बदला जा सकता था। इस तरह चुनावों को दो-तीन साल के लिए टाल देने का एक अच्छा बहाना भी मिल जाता।

श्रीमती गांधी ने ज़बानी हामी भर ली। पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश की विधानसभाओं ने तो प्रस्ताव भी पास कर दिये कि संविधान के हर पहलू पर 'भरपूर' बहस करने के लिए संविधान सभा ज़रूरी है।

श्रीमती गांधी ने गोखले से पूछा लेकिन वह इस विचार के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने श्रीमती गांधी को बताया कि इससे बहुत-से सवालों पर फिर से बहस छिड़ जायेगी, जैसे सरकारी भाषा और राज्यों के अधिकार-क्षेत्र में आनेवाले विषयों आदि के सवाल और स्वयं उस संघीय ढाँचे का सवाल जिसकी बदौलत संसद को संविधान में संशोधन करने का अधिकार मिला हुआ है।

सारे देश में विरोध की एक लहर दौड़ गयी थी। सरकार का साथ देने वाली

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी तक ने इस विचार का विरोध किया। विपक्ष की पार्टियाँ संविधान सभा के तो पक्ष में थीं लेकिन वे चाहती थीं कि उसके सदस्य बालिग़ मताधिकार की बुनियाद पर सीधे चुने जायें। उनकी दलील यह थी कि मौजूदा संसद और राज्यों की विधानसभाएँ जितने दिन के लिए चुनी गयी थीं उससे ज़्यादा वक़्त तक वे काम कर चुकी हैं, इसलिए अब वे मतदाताओं की प्रतिनिधि नहीं रह गयी हैं। संविधान सभा के विचार को और आगे नहीं बढ़ाया गया।

लोकसभा ने, जो शुरू में पाँच साल के लिए चुनी गयी थी, 5 नवम्बर को अपनी अवधि एक साल के लिए और बढ़ा ली। नतीजा यह हुआ कि जो चुनाव मार्च 1976 में हो जाने चाहिए थे वे अब 1978 तक के लिए टल गये।

अब संसद में कोई मधु लिमये या शरद यादव तो था नहीं जो लोकसभा से इस्तीफ़ा दे देता, जिस तरह इन दोनों ने उस वक़्त इस्तीफ़ा दे दिया था जब लोकसभा ने पहले अपनी अवधि बढ़ायी थी। मधु ने स्पीकर को लिखा था: "मेरी राय में मौजूदा लोकसभा की अवधि को बढ़ाना सरासर अनैतिक और बेईमानी की बात है। मेरा पक्का विश्वास है कि इस सरकार को अपने पक्ष में मतदाताओं का फ़ैसला लिये बिना 18 मार्च 1976 के बाद शासन की बागडोर अपने हाथ में रखने का कोई अधिकार नहीं है।" श्रीमती गांधी के नाम एक पत्र में उन्होंने उस वक़्त लिखा था: "मैं कहता हूँ, लोगों को नज़रबन्द करने के बाद आपने अपने हाथ क्यों रोक लिये? जो कुछ आप करना चाहती हैं सब कर देखिये। गणराज्य का यह सारा ढोंग छोड़कर आप राजतन्त्र का या साम्राज्यशाही का संविधान क्यों नहीं बनवा लेतीं ताकि इस बात का पक्का यक़ीन हो जाये कि आपके बाद आपका बेटा और उसके बाद उसका बेटा राज्य करेगा, क्योंकि ऐसा लगता है कि आपकी दिली तमन्ना यही है? शायद पश्चिमी देशों के फ़ासिस्टों को इस बात पर खुशी होगी कि हमारे बारे में उनकी यह पुरानी राय सच निकली कि एशिया और अफ्रीका की 'घटिया नस्लों' के हम लोग इस लायक़ नहीं हैं कि नागरिक स्वतन्त्रता और जनतन्त्र के वरदानों का सुख भोग सकें।"

सरकार ने लोकसभा की अवधि बढ़ाने को इस बुनियाद पर सही ठहराया कि इमर्जेंसी से जो 'फ़ायदे' हुए हैं उन्हें अभी पक्का करना है। दुबारा अवधि बढ़ाने के बिल का विरोध विपक्ष की लगभग सभी पार्टियों ने किया लेकिन वह 34 के खिलाफ़ 180 वोटों से पास हो गया। श्रीमती गांधी ने चुनाव टलवाने के पक्ष में यह दलील दी कि "हमें झगड़ों से या किसी भी ऐसी चीज़ से परे रहना चाहिए जो गड़बड़ी के हालात पैदा कर सके।"

चुनाव का काँटा रास्ते से हट जाने के बाद अब श्रीमती गांधी को इस बात की फ़िक्र थी कि संजय ने जितनी बड़ी-बड़ी ज़िम्मेदारियाँ सँभालने का बीड़ा उठा लिया है उनके लायक़ उसे कैसे बनाया जाये। संजय अभी से कैबिनेट के काग़ज़ात देखने लगा था; बड़े-बड़े अफ़सर उससे बातचीत करने आते थे; खुफ़िया रिपोर्टें उसी की मार्फ़त प्रधानमंत्री के पास तक पहुँचती थीं। (विद्याचरण शुक्ला की हरकतों के बारे में जो भी जानकारी होती थी उसे वह अकसर रोक लेता था क्योंकि श्रीमती गांधी इन मंत्री महोदय को चेतावनी दे चुकी थीं।) केन्द्र के ज़्यादातर मंत्री या तो खुद संजय से सलाह लेते थे या इस काम के लिए अपने सेक्रेटरियों को भेजते थे। एक बार शिक्षामंत्री नूरुल हसन ने किसी सुझाव के सिलसिले में अपने सेक्रेटरी से संजय की राय मालूम कर लेने को कहा था। राज्यों के मुख्यमंत्री ही नहीं बल्कि चीफ़ सेक्रेटरी तक उसकी मर्ज़ी जानने के लिए उसके दरबार में हाथ बाँधे खड़े रहते थे।

लेकिन यह सारा सिलसिला तो कामचलाऊ था, किसी वक़्त भी टूट सकता

था। श्रीमती गांधी ने सोचा कि इसे क़ानूनी रूप देना होगा। कुछ लोगों ने सुझाव दिया था कि उसे राज्यसभा के रास्ते संसद में ले आया जाये। लेकिन वह इसके लिए तैयार नहीं हुईं; यह तो इतना खुला तरीक़ा होगा कि अंधा भी देख लेगा।

फ़िलहाल सबसे अच्छा तरीक़ा शायद यही होगा, उन्होंने सोचा, कि युवक कांग्रेस को मज़बूत किया जाये और संजय को हमलों से बचाया जाये। अब तो कांग्रेस पार्टी के अन्दर भी लोग खुलेआम उसकी आलोचना करने लगे थे। श्रीमती गांधी ने सबसे पहले भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी पर हमला किया जिसने संजय की आलोचना की थी।

संजय कम्युनिस्टों और उनकी पॉलिसियों से नफ़रत करता था, यह बात उसने कभी छिपायी नहीं थी। वह कई बार कह चुका था कि दूसरी लड़ाई के दौरान सोवियत संघ, अँग्रेज़ों और दूसरी मित्र ताक़तों का साथ देकर कम्युनिस्टों ने अगस्त 1942 में राष्ट्रीय आंदोलन के साथ ग़द्दारी की थी। इस आलोचना से चिढ़कर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के जनरल-सेक्रेटरी सी० राजेश्वर राव ने कहा कि कांग्रस के अन्दर 'एक प्रतिक्रियावादी चांडाल चौकड़ी' काम कर रही है।

कांग्रेस के लोगों में भी, जिनमें इस वक़्त अपनी वफ़ादारी साबित करने में कोई भी किसी से पीछे नही रहना चाहता था, इस बयान पर एक तूफ़ान खड़ा हो गया और उन लोगों ने कहा कि यह बयान कांग्रेस के अन्दरूनी मामलात में खुला हस्तक्षेप है। श्रीमती गांधी ने भी यही रवैया अपनाया।

कई साल में पहली बार 23 दिसम्बर को उन्होंने नाम लेकर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी पर हमला किया। उन्होंने कहा, "कम्युनिस्ट कहते हैं कि वे मेरे साथ हैं, लेकिन मेरे लिए इससे बड़े अपमान की कोई दूसरी बात नहीं हो सकती कि यह कहा जाये कि मैं प्रतिक्रियावादियों के या किसी दूसरे के दबाव में आ सकती हूं।" अपने बेटे की सफ़ाई देते हुए उन्होंने कहा कि "वह तो बहुत ही मामूली आदमी है, बहुत ही छोटा आदमी है; वह न प्रधानमंत्री बननेवाला है न राष्ट्रपति और न ही कुछ और। वह तो बस कांग्रेस का कार्यकर्त्ता बन सकता है। इसलिए मैं समझती हूँ कि यह हमला सीधे मेरे ऊपर है।"

गौहाटी में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में भी 20 नवम्बर को श्रीमती गांधी ने संजय की तरफ़ से और उसकी युवक कांग्रेस की तरफ़ से सफ़ाई पेश की। उन्होंने कहा कि संजय ने जो पाँच-सूत्री कार्यक्रम शुरू किया है वह सरकार के बीस-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम के साथ जुड़ा हुआ है और उससे देश का आर्थिक नक़्शा बदल देने में मदद मिलेगी। उन्होंने यह विश्वास ज़ाहिर किया कि भारत का भविष्य उसके नौजवानों के हाथ में सुरक्षित है, जिन्होंने कुछ कर दिखाने की भावना के साथ अपनी जिम्मेदारी सँभाल ली है।

गौहाटी अधिवेशन में सच पूछा जाये तो संजय का ही बोलबाला रहा। एक-एक करके जो भी प्रतिनिधि बोलने के लिए उठा उसने संजय की ही तारीफ़ के पुल बाँधे। बरुआ ने तो उसकी तुलना भारत के महान सन्त स्वामी विवेकानन्द से की। केरल प्रदेश कांग्रेस के नौजवान और ईमानदार अध्यक्ष ए० के० ऐंटोनी ही अकेले ऐसे आदमी थे जिन्होंने इससे हटकर बात कही, और इस बात पर ज़ोर दिया कि कांग्रेसजनों को अपने-आपको 'सुधारना' चाहिये, उन्हें अपने ऊपर कोई कलंक नहीं लगने देना चाहिए और राजनीति की अखाड़ेबाज़ी से दूर रहना चाहिये।

सब लोग सुर-में-सुर मिलाकर उनकी और उनके बेटे की महिमा का बखान कर रहे थे लेकिन इसके बावजूद गौहाटी अधिवेशन में श्रीमती गांधी कुछ चिंतित हो उठीं।

एक तरह का 'मूक असहयोग' उन्होंने वहाँ देखा। उन्होंने देखा कि कांग्रेस के डेलीगेटों में एक तरह की निराशा और अविश्वास है। वही लोग, जिन्होंने अभी एक ही साल पहले चंडीगढ़ में इमर्जेंसी को चुपचाप मान लिया था, उन्हीं लोगों के चेहरे अब बुझे-बुझे थे। श्रीमती गांधी अनमने समर्थकों का सहारा नहीं लेना चाहती थीं। इससे कहीं अच्छा होगा समर्थकों की नयी पौध तैयार की जाये। उन्हें पूरा विश्वास था कि देश उनके साथ है।

वह अगर नौजवानों का सहारा लेना चाहती थीं तो इसकी एक और वजह भी थी। वह चाहती थीं कि संजय खुद अपने पाँवों पर मजबूती से खड़ा हो जाये। उसका एहसान माननेवालों में सिर्फ़ नये और नौजवान लोग होंगे।

आगे चलकर जब कभी वह प्रधानमंत्री का पद छोड़ेंगी, शायद कांग्रेस की अध्यक्ष बन जाने के लिए, तो उस वक़्त पार्टी में संजय की इतनी ताक़त होनी चाहिए कि वह उनकी जगह ले सके। ज्यादातर राज्यों के मुख्यमंत्री तो इस वक़्त भी उनके साथ थे—बिहार में मिश्रा, उत्तर प्रदेश में तिवारी, पंजाब में जैलसिंह, हरियाणा में बनारसीदास गुप्ता, राजस्थान में हरिदेव जोशी, मध्य प्रदेश में श्यामाचरण शुक्ला, आन्ध्र प्रदेश में वेंगलराव, महाराष्ट्र में एस० बी० चह्वाण और गुजरात में माधवसिंह सोलंकी।

तीन मुख्यमंत्री जो संजय के 'वफ़ादार' नहीं थे, वे थे उड़ीसा की नन्दिनी सत्पथी, पश्चिम बंगाल के सिद्धार्थशंकर रे और कर्नाटक के देवराज अर्स। इनमें से पहले दो के बारे में तो यह समझा जाता था कि उन्हें संजय से बैर है। संजय भी उनको पसन्द नहीं करता था क्योंकि वह उन्हें कम्युनिस्ट समझता था।

श्रीमती गांधी का इशारा इन्हीं लोगों की तरफ़ था जब उन्होंने गौहाटी में कहा था : "जिस तरह हर केन्द्रीय मंत्री ने अपना अलग एक साम्राज्य बना रखा है, उसी तरह हम देखते हैं कि मुख्यमंत्रियों के भी अलग-अलग अपने साम्राज्य हैं और उन्हें दूसरे साम्राज्यों के साथ अपने साम्राज्य के टकराव की भी कोई परवाह नहीं है।"

इन लोगों से इनके साम्राज्य छीनकर उन्हें यह बता देना ज़रूरी था कि उनकी औक़ात क्या है। सबसे पहले नन्दिनी सत्पथी की बारी थी। उड़ीसा के गवर्नर अकबर अली ने, जिन्होंने जयप्रकाश की तारीफ़ की थी और इस वजह से उन्हें अपने पद से इस्तीफ़ा भी देना पड़ा था, श्रीमती गांधी को कई खत लिखे थे जिनमें उन्होंने मुख्यमंत्री पर भ्रष्टाचार और सरकार के काम-काज में गड़बड़ी के कई आरोप लगाये थे। उन्होंने प्रधानमंत्री का ध्यान उस आलीशान कोठी की तरफ़ भी दिलाया था जो नन्दिनी सत्पथी ने भुवनेश्वर में 7,00,000 रुपये की लागत से बनवायी थी। अकबर अली ने यह भी आरोप लगाया था कि कोठी बनवाने का काम पी० डब्ल्यू० डी० के इंजीनियरों की निगरानी में हुआ था और उसके लिए बहुत-सा सरकारी सामान इस्तेमाल किया गया था।

उड़ीसा के एक मंत्री विनायक आचार्य के ज़रिये संजय ने नन्दिनी सत्पथी का तख्ता उलटने की सारी तैयारी पहले से कर ली थी। यह भी शिकायतें मिली थीं कि सरकारी काम-काज में उनका लड़का हद से ज्यादा टाँग अड़ाता है और संजय को वह लड़का कभी भी पसन्द नहीं था। इस तरह की शिकायतें भी दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही थीं कि नन्दिनी सत्पथी सरकार के काम-काज की तरफ़ और उड़ीसा में अकाल की वजह से जो हालत पैदा हो गयी थी उसकी तरफ़ पूरा ध्यान नहीं देती हैं।

कुछ लोगों ने नन्दिनी सत्पथी को बताया भी कि श्रीमती गांधी उनके खिलाफ़ हैं लेकिन उन्होंने इन बातों पर ध्यान नहीं दिया। देना चाहती भी नहीं थीं क्योंकि वह हमेशा श्रीमती गांधी की वफ़ादार रही थीं।

ए० आई० सी० सी० के जनरल सेक्रेटरी ए० आर० अंतुले नन्दिनी सत्पथी से इस्तीफ़ा दिलवाने के लिए उड़ीसा भेजे गये थे। उन्होंने वहाँ जाकर कहा, "हमारी सर्वोच्च नेता श्रीमती गांधी को यह फ़ैसला करने का पूरा-पूरा जनतांत्रिक अधिकार है कि कौन उनका वफ़ादार है और कौन नहीं। वफ़ादारी को अलग-अलग टुकड़ों में बाँटा नहीं जा सकता।"

और श्रीमती गांधी की इतनी हिम्मत नहीं पड़ी कि जब नन्दिनी सत्पथी अपने राज्य की हालत के बारे में बताने के लिए हवाई जहाज़ से दिल्ली आयीं तो वह उनसे इस्तीफ़ा देने को कहतीं। जैसे ही नन्दिनी सत्पथी अपने राज्य की राजधानी में वापिस पहुँचीं और उन्होंने कुछ दिन की छुट्टी ले ली, उसी वक़्त उन्हें तार मिला जिसमें उनसे इस्तीफ़ा देने को कहा गया था। हालाँकि सदन में नन्दिनी का बहुमत था, उन्हें मजबूरन 16 दिसम्बर को इस्तीफ़ा दे देना पड़ा।

पश्चिम बंगाल में मुख्यमंत्री सिद्धार्थशंकर रे ने पहले ही किसी व्यापार-मण्डल के समारोह में संजय को अपनी वफ़ादारी का वचन दिया था और उसे यह भी याद दिलाया था कि वह तो उसके परिवार के मित्र हैं, फिर भी उनकी वफ़ादारी पर शक किया जाता था। वह कांग्रेस के एक गुट को दूसरे से लड़वाकर अब तक बाल-बाल बचते आये थे। जिस दिन से वह राज्य के मुख्यमंत्री बने थे तभी से उनकी ताक़त का सारा दारोमदार इसी पर रहा था। श्रीमती गांधी और संजय दोनों ही ने उनका नाम उन लोगों की फ़ेहरिस्त में शामिल कर रखा था जिन्हें हटाया जाना था। इस बात का ढिंढोरा पीटकर कि वह नई दिल्ली की सरकार से भी टक्कर ले सकते हैं उन्होंने पश्चिम बंगाल में अपने पाँव मज़बूती से जमा लिये थे—इस खूबी से बंगाली बहुत खुश होते हैं।

सिद्धार्थशंकर रे के ग्रुप ने खुलेआम नेहरू परिवार पर यह इलज़ाम लगाया कि उसने कभी बंगाल के नेताओं को पनपने का मौक़ा ही नहीं दिया। रे के विरोधी ग्रुप ने सिद्धार्थ बाबू पर यह इलज़ाम लगाया कि वह बंगाल को भी बंगला देश के रास्ते पर ले जाना चाहते हैं।

सिद्धार्थ बाबू आपस के लोगों में यह कहते थे कि केन्द्रीय सरकार उन्हें निकम्मा साबित करने के लिए हिन्दू-मुस्लिम दंगे या कोई दूसरे उपद्रव कराने की कोशिश कर सकती है। उनकी दलील यह थी कि हितेन्द्र देसाई का पत्ता काटने के लिए 1969 में अहमदाबाद में हिन्दू-मुस्लिम दंगा कराया गया था; कमलापति त्रिपाठी को हटाने के लिए उत्तर प्रदेश में पुलिस की बग़ावत करायी गयी थी; और अब उनकी बारी थी।

श्रीमती गांधी ने सिद्धार्थशंकर रे को हटाया नहीं, और न ही वह देवराज अर्स को हाथ लगाना चाहती थीं। इस वक़्त तक उनका दिमाग़ किसी दूसरे ही ढर्रे पर काम करने लगा था।

अगर संजय को सहारा देकर खड़ा करना था और किसी दिन प्रधानमंत्री बनने के लिए तैयार करना था तो मुख्यमंत्रियों की वफ़ादारी ही इसके लिए काफ़ी नहीं थी। श्रीमती गांधी उन संसद-सदस्यों की बुनियाद पर सोच रही थीं जिनको इमर्जेंसी के बारे में किसी तरह का संकोच नहीं होगा और जिनके लिए जैसी वह थीं वैसा ही संजय होगा।

ख़ुफ़िया विभाग और 'रॉ' दोनों ही का यह अन्दाज़ा था कि अगर वह अभी फ़ौरन चुनाव करा लें तो उनको 350 से ज़्यादा सीटें मिल जायेंगी। सिर्फ़ सी० बी० आई० के डायरेक्टर डी० सेन की राय इससे अलग थी; श्रीमती गांधी उन्हें अपने आलोचकों के घरों पर छापे डलवाने के लिए इस्तेमाल करती थीं। सेन ने इस बात पर ज़ोर दिया था कि नज़रबन्दों की रिहाई और चुनावों के बीच छः महीने का वक़्त

रहना चाहिये ताकि जेल में रहने की वजह से उनकी जो धूम होगी वह कुछ ठंडी पड़ जाये।

श्रीमती गांधी के अपने सेक्रेटरी धर पूरी तरह चुनावों के पक्ष में थे क्योंकि इमर्जेंसी से जो नुक़सान थे उन्हें दूर करने का यही एक तरीक़ा था। शेर पर सवार हो जाना आसान होता है पर उस पर से उतरना लगभग नामुमकिन होता है। इसकी क्या तरकीब हो सकती है? धर को यह भी यक़ीन था कि इमर्जेंसी का असर अब उलटा पड़ने लगा है और यह कि आर्थिक समस्याएँ एक बार फिर उभरने लगेंगी।

बीस-सूत्री कार्यक्रम के कुछ अच्छे नतीजे निकले थे। जुलाई 1975 से दिसम्बर 1975 तक सिर्फ़ 45 लाख दिहाड़ियों के काम का नुक़सान हुआ था जबकि 1974 में यही नुक़सान 4 करोड़ 3 लाख दिहाड़ियों का था। पब्लिक सेक्टर में इमर्जेंसी से पहले 16 लाख 20 हज़ार दिहाड़ियों का नुक़सान हुआ था, जबकि इमर्जेंसी के दौरान कुल 1 लाख 20 हज़ार दिहाड़ियों का नुक़सान हुआ। 1975-76 में मुद्रा-स्फीति की रफ़्तार सिर्फ़ 3.3 प्रतिशत थी जबकि 1974-75 में इसकी रफ़्तार 23.4 प्रतिशत थी।

लेकिन जाड़ों की बारिश न होने की वजह से खेती-बाड़ी की हालत बहुत गम्भीर थी, जिसका असर पूरे अर्थतन्त्र पर पड़ता। (इसी वक़्त सरकार ने 42 लाख टन अनाज बाहर से मँगाने का फ़ैसला किया जिसमें से कुछ तो यूरोप के देशों के साझा बाज़ार से और अमरीका के 'शान्ति के लिए अन्न' कार्यक्रम के तहत मिला था।) मज़दूरों में बेचैनी बढ़ रही थी और पैदावार बढ़ाने का पहलेवाला जोश भी अब कुछ ठंडा पड़ रहा था।

ख़बर मिली थी कि फ़ौजी छावनियों में, ख़ास तौर पर छोटे अफ़सरों के बीच, खाने के समय इमर्जेंसी के बारे में और संजय के संविधान के बाहर के अधिकारों के बारे में खुलेआम चर्चा होती थी। जवानों के बीच नसबन्दियों के सिलसिले में की गयी ज़्यादतियों को चर्चा होती थी।

भुट्टो के बारे में बड़ी तारीफ़ के साथ कहा जाता था कि उन्होंने पाकिस्तान में चुनाव कराने का ऐलान कर दिया।[1] और अगर श्रीमती गांधी ने चुनाव कराने का ऐलान न किया तो उनके ऊपर यह कहकर हमला किया जायेगा कि वह जनतान्त्रिक नहीं हैं।

और फिर अब भी इतना डर बाक़ी था कि लोग अपना वोट डालने मतदान केन्द्रों तक जाने से घबरायेंगे। इमर्जेंसी उठायी नहीं जायेगी, उसमें बस थोड़ी-सी ढील दी जायेगी। श्रीमती गांधी ने पक्का इरादा कर लिया था कि विपक्ष की पार्टियों के कार्यकर्त्ताओं को सबसे बाद में छोड़ा जायेगा।

विपक्ष की पार्टियों में एकता भी तो अभी नहीं दिखायी देती थी। यह सच है कि उन्होंने 16-17 दिसम्बर को सबको मिलाकर भारतीय जनता कांग्रेस के नाम से एक ही पार्टी बना लेने का फ़ैसला किया था और अपना एक मिला-जुला निशान भी चुन लिया था—चक्र, हल और चर्खा। लेकिन नेता कौन होगा, इसका फ़ैसला होना अभी बाक़ी था। श्रीमती गांधी ने सोचा था कि इसका फ़ैसला कभी हो ही नहीं पायेगा।

दरअसल, विपक्ष की पार्टियाँ श्रीमती गांधी के साथ बातचीत करना चाहती थीं। वे करुणानिधि के 15 दिसम्बर के इस सुझाव को मान लेने पर तैयार हो गयी थीं कि प्रधानमंत्री के साथ बातचीत शुरू की जाये और देश की राजनीतिक स्थिति को

1. जब भारत सरकार ने चुनाव कराने का ऐलान किया तो भुट्टो ने कहा था कि भारत की जनता को उन्हें दुआएँ देनी चाहियें।

सम पर लाने के लिए कोई हल निकाला जाये। विपक्ष की पार्टियों ने एक बयान निकाला था जिसका शीर्षक था 'यह हमारा विश्वास है'; इस बयान में उन्होंने अहिंसा, धर्म-निरपेक्षता और जनतान्त्रिक प्रणाली में अपनी आस्था पर ज़ोर दिया था।

दूसरी ओर विदेशों में होनेवाली आलोचना से भी उन्हें बहुत झुँझलाहट होती थी। पश्चिमवाले उन्हें 'ग़ैर-क़ानूनी' शासक समझते थे। इसकी उन्हें काट करनी थी। इसके लिए उन्होंने फ्रांस को चुना और पश्चिमवालों के साथ एक पश्चिमी देश से 'बात करने' के लिए उन्होंने मई में विदेश-यात्रा का बन्दोबस्त किया। उस वक़्त तक वह इन लोगों पर यह साबित कर चुकी होंगी कि जनता उनके, तथा जो कुछ वह करती हैं उसके, साथ है। सवाल क़ानूनी या ग़ैर-क़ानूनी होने का नहीं था; सवाल यह साबित करने का था कि इस बात पर किसी तरह का सन्देह नहीं किया जा सकता कि जनता उनकी मुट्ठी में है।

संजय और बंसीलाल दोनों ही की यह राय थी कि कागज़ पर तो ये सारी दलीलें बहुत अच्छी लगती हैं लेकिन यह व्यावहारिक राजनीति नहीं थी। वे दोनों चुनाव कराने के सख़्त ख़िलाफ़ थे। संजय समझता था कि यह 'खब्त' उसकी माँ के दिमाग़ में कम्युनिस्टों ने बिठाया है। उसका ऐसा समझना बहुत ग़लत भी नहीं था क्योंकि बरुआ चुनाव के पक्ष में थे।

श्रीमती गांधी ने सोचा कि संजय, बंसीलाल और दूसरे लोग तो बिना वजह परेशान हो रहे हैं। संविधान में इस तरह हेर-फेर कर दिये गये थे कि इमर्जेंसी कमो-बेश हमेशा की चीज़ हो गयी थी। कुछ महीने पहले, 2 फरवरी को, संसद ने इमर्जेंसी उठने के बाद भी अख़बारों पर हमेशा सेंसरशिप लगाये रखने की मंज़ूरी दे दी थी। कुछ जजों का तबादला हो जाने के बाद से अदालतें भी हकीक़त को समझने लगी थीं। और फिर गोखले संविधान में कुछ इस तरह का हेर-फेर करने की तैयारी कर रहे थे कि दोनों सदनों के दो-तिहाई बहुमत से किसी जज पर महा-अभियोग लगाने का प्रस्ताव पास कराने के बजाय सरकार को जजों को बर्ख़ास्त कर देने का अधिकार दे दिया जाये।

संजय के विरोध करने पर श्रीमती गांधी ने एक बार फिर इस बात पर ग़ौर किया। जो मुख्यमंत्री उनसे मिलने आते थे उनसे भी उन्होंने इसके बारे में बातचीत की, लेकिन उन लोगों की यह कहने की हिम्मत नहीं होती थी कि वे चुनाव जीत नहीं सकते। अगर इन्हीं दो बातों में से एक को चुनना था कि चुनाव अभी हों या एक साल बाद हों, तब तो यही बेहतर था कि चुनाव अभी करा लिये जायें। बाद में शायद उन्हें 'लोगों को क़ाबू में रखने' के लिए ज़्यादा कोशिश करनी पड़े।

वह यह भी जानती थीं कि अण्डरग्राउण्ड संगठन की ताक़त को नज़रअन्दाज नहीं किया जा सकता। उनके नेता लगभग रोज़ ही गुप्त भाषा में और फ़र्ज़ी नामों से आपस में टेलीफोन पर बात करते थे। जब शहरों के आसानी से पकड़ में आ जानेवाले प्रेसों को ज़ब्त कर लिया गया, तो चोरी-छिपे साइक्लोस्टाइल अख़बार निकाले जाने लगे।

उन्होंने ख़ुफ़िया विभागवालों से एक बार फिर इस बात की थाह लेने के लिए कहा कि जनता के तेवर क्या हैं। पहले की तरह वे इस बार भी उसी नतीजे पर पहुँचे कि वह आराम से काफ़ी बड़े बहुमत से जीतेंगी। इस बार इन लोगों ने उन्हें 320 सीटें दी थीं, पहली बार से 30 कम। संजय अब भी चुनाव कराने के ख़िलाफ़ था, लेकिन श्रीमती गांधी चुनाव कराने की ठान चुकी थीं।

उन्होंने कई संसद-सदस्यों से भी सलाह-मशविरा किया, लेकिन उनमें से कोई

भी अपने इलाक़े के मतदाताओं के सामने जाने को तैयार नहीं था। इमर्जेंसी ने उनकी सारी साख मिट्टी में मिला दी थी। श्रीमती गांधी पर सबसे ज्यादा असर नई दिल्ली की इंस्टीच्यूट ऑफ़ पॉलिसी रिसर्च (नीति शोध संस्थान) की ओर से करायी गयी एक छानबीन की रिपोर्ट का पड़ा, जिसकी ओर धर ने उनका ध्यान दिलाया था। इस रिपोर्ट में कहा गया था कि इस समय श्रीमती गांधी के पक्ष में जनमत अपने शिखर पर है। ऐसा लगता था कि इससे अच्छा मौक़ा उनके हाथ नहीं लगनेवाला है।

वह कितनी ग़लत साबित हुई। अब तक उन्होंने जो भी क़दम उठाया था वह बिलकुल ठीक वक़्त पर उठाया था, लेकिन अब उनका हर हिसाब गड़बड़ होने लगा था क्योंकि जनता के साथ उनका सम्पर्क नहीं रह गया था। उनको जितनी भी जानकारी थी वह सारी-की-सारी खुफ़िया विभागवालों की उन रिपोर्टों से मिली थी जो उन्हें खुश रखने के लिए तैयार की गयी थीं। उनके चारों ओर जो खुशामदी और चापलूस जमा थे वे उनसे हरदम यही कहते रहते थे कि इमर्जेंसी ने तो कमाल कर दिया है और जनता अब से पहले कभी इतनी सुखी नहीं थी।

सबसे पहले उन्होंने खुफ़िया विभागवालों को ही बताया कि वह मार्च के आखिर में या अप्रैल के शुरू में चुनाव करायेंगी और वे इसके लिए 'तैयार' रहें। वह समझती थीं कि वह कोई ख़तरा नहीं मोल ले रही हैं क्योंकि वह जानती थीं कि जीत उन्हीं की होगी।

श्रीमती गांधी की मजबूरियाँ कुछ भी रही हों, लेकिन चुनाव कराने का फ़ैसला करके उन्होंने यह बात मान ली थी कि कोई भी शासन-प्रणाली जनता की मर्ज़ी और उसकी मंज़ूरी के बिना नहीं चल सकती। एक तरह से वह जनता के धीरज और उसकी मुसीबतें झेलने की क्षमता का लोहा मान रही थीं। क्योंकि आखिरकार जीत तो उसी की हुई—जीत उन लोगों की हुई जो अनपढ़ थे, ग़रीब थे और पिछड़े हुए थे।

फ़ैसला

मोरारजी अपनी आदत के अनुसार 18 जनवरी 1977 को भी बहुत सवेरे उठे थे। सुबह उठकर वह टहलने गये। पिछले कई महीनों से यही उनका दस्तूर था। वह दिन भी दूसरे दिनों जैसा ही लग रहा था।

दिनचर्या नीरस ज़रूर थी, पर उससे तो अच्छी ही थी जैसी कि सोना में थी, जहाँ वह शुरू-शुरू में नज़रबन्द किये गये थे। उस वक़्त तो उन्हें एक छोटी-सी अँधेरी कोठरी में क़ैद कर दिया गया था, जिसकी खिड़कियाँ हमेशा बन्द रहती थीं। बहुत शोर मचाने पर उन्हें रात होने के बाद बाहर अहाते में टहलने की इजाज़त दे दी गयी थी। अहाते में साँप-बिच्छू बहुत थे इसलिए उन्होंने व्यायाम के लिए अपनी चारपाई के चारों ओर टहलने का फ़ैसला किया। उन्हें सचमुच अँधेरे में रखा गया था और उन्हें इसकी कोई ख़बर नहीं थी कि बाहर दुनिया में क्या हो रहा है। उन्हेंपढ़ने को अख़बार तक नहीं दिया जाता था।

जब उन्हें वहाँ से हटाकर सोना के पास ही एक नहर की कोठी में रख दिया गया था तो उन्हें अख़बार मँगाने की और बाद में मुलाक़ातों की भी इजाज़त दे दी गयी थी। उस दिन, 18 जनवरी को, उन्होंने इण्डियन एक्सप्रेस में एक ख़बर पढ़ी थी कि लोकसभा के चुनाव मार्च के अन्त तक होंगे। उन्होंने इस ख़बर पर विश्वास नहीं किया; उन्हें इसके बारे में शक़ था।

जब उनके कमरे में, जहां ठीक से बैठने के लिए भी कुछ न था, पुलिस के कुछ पुराने अफ़सर आये तो मोरारजी ने उनमें कोई ख़ास दिलचस्पी नहीं दिखायी। इन लोगों ने उन्हें बताया कि उन्हें बिना किसी शर्त के रिहा किया जा रहा है और वे उन्हें डूप्ले रोड पर उनके बँगले ले जाने के लिए आये हैं। वे लोग मोटर भी साथ लाये थे।

तब तक विपक्ष के नेता और ज़्यादातर दूसरे लोग छोड़े जा चुके थे। नज़र-बन्दों की संख्या, जो किसी समय 1,00,000 तक पहुँच गयी थी, अब घटकर लगभग 10,000 रह गयी थी।

घर पहुँचकर मोरारजी ने सुना कि श्रीमती गांधी ने लोकसभा बर्ख़ास्त करके नये चुनाव कराने का फ़ैसला किया है। उन्हें कोई ताज्जुब नहीं हुआ। उन्होंने मुझे बाद में बताया, "मैं हमेशा से जानता था कि वह मुझे उसी वक़्त रिहा करेंगी जब वह चुनाव कराने का फ़ैसला करेंगी।"

लेकिन ऐसे लोग भी थे जिन्हें ताज्जुब हुआ। इनमें कैबिनेट के कई मंत्री भी थे। उनको इस फ़ैसले का पता उस दिन तीसरे वक़्त तब चला जब उन्हें जल्दी-जल्दी बुलाकर इसकी सूचना दी गयी। श्रीमती गांधी ने उनसे कहा कि जनतान्त्रिक प्रणाली में सरकार को थोड़े-थोड़े समय के बाद मतदाताओं का सामना करना ही पड़ता है। उन्होंने यह माना कि वह एक जोखिम उठाने जा रही हैं।

किसी भी मंत्री ने कुछ नहीं कहा। बंसीलाल को पहले से इसकी खबर थी और वह परेशान थे; जगजीवनराम और चह्वाण बिलकुल मौन साधे रहे। जिस तरह इमर्जेंसी लागू करने के बारे में उनसे सलाह-मशविरा नहीं किया गया था, उसी तरह चुनावों के बारे में भी उनसे कोई सलाह नहीं ली गयी थी। लेकिन दूसरे मंत्रियों की तरह उनको भी कुछ-कुछ शक़ था कि चुनाव होने वाले हैं; खासतौर पर उसके बाद से जब संजय ने दो ही दिन पहले बम्बई की एक पब्लिक मीटिंग में कहा था कि चुनाव जल्दी ही होनेवाले हैं। इतने दिनों में वे यह मानने लगे थे कि संजय को हर बात का पक्का पता रहता है।

जो बात इन लोगों को नहीं मालूम थी वह यह थी कि उनमें से ज़्यादातर का पत्ता साफ़ कर दिया गया था। श्रीमती गांधी के घर में सब लोग यही कहते थे कि चुनाव के बाद जगजीवनराम को मंत्री नहीं बनाया जाना चाहिए। संसद में किसे भेजा जाना चाहिए और किसे नहीं इसके बारे में संजय के अपने विचार थे। उस वक़्त तक उसने उन लोगों की फ़ेहरिस्त भी तैयार कर ली थी जिन्हें कांग्रेस का टिकट दिया जाने वाला था—और संसद के ज़्यादातर मौजूदा सदस्य उसमें नहीं थे। इन लोगों के लिए बग़ावत करके अपने बल पर खड़ा होना भी बेकार था।

हालाँकि कांग्रेस के हाई कमांड ने रस्म पूरी करने के लिए अपनी प्रदेश कमेटियों को आदेश दिया कि वे अपने-अपने उम्मीदवारों की फ़ेहरिस्तें तैयार कर लें, लेकिन ज़्यादातर लोग जानते थे कि यह सब महज़ दिखावे के लिए है। संजय ने ज़्यादातर नाम पक्के कर रखे थे और श्रीमती गांधी ने हमेशा की तरह उसके फ़ैसले को मंज़ूरी भी दे दी थी।

विपक्ष की पार्टियों को चुनाव होने की तो खुशी थी लेकिन वे जानती थीं कि उनके सामने कुछ भयानक कठिनाइयाँ भी हैं। उनके सारे नेता अभी कुछ ही दिन पहले तक जेल में थे और जनता से उनका कोई सम्पर्क नहीं रहा था। उनके बहुत-से कार्यकर्त्ता अभी तक रिहा नहीं किये गये थे। उनके पास समय भी बहुत कम था।

लेकिन वे अब और अधिक समय नहीं खोना चाहते थे। जिस दिन मोरारजी देसाई रिहा हुए उसी दिन उनके घर पर संगठन कांग्रेस, जनसंघ, भारतीय लोकदल और सोशलिस्ट पार्टी के नेताओं की मीटिंग हुई। उस दिन तो बस थाह लेने के लिए मोटी-मोटी बातों पर बातचीत हुई। अगले दिन ये लोग फिर मिले। इस समय तक श्रीमती गांधी रेडियो पर राष्ट्र के नाम अपने संदेश में चुनावों के बारे में और 'जनता की ताक़त का एक बार फिर सबूत देने' के अवसर के बारे में बता चुकी थीं।

विपक्ष के नेताओं के सामने जयप्रकाश का एक पत्र था, जिसे सोशलिस्ट नेता एस० एम० जोशी पटना से लाये थे। जयप्रकाश ने कहा था कि अगर उन सबने मिलकर एक ही पार्टी न बना ली तो वह चुनाव से कोई सम्बन्ध नहीं रखेंगे। यही बात वह टेलीफोन पर पहले कह चुके थे।

विपक्ष की पार्टियों के सामने समस्या एक में मिल जाने की नहीं थी। उनके नेता जेल में इस समस्या पर एक बार नहीं कई बार बहस कर चुके थे और इसी नतीजे पर पहुँचे थे कि कांग्रेस की विशाल ताक़त का मुक़ाबला करने के लिए एक पार्टी बनाने के अलावा और कोई रास्ता नहीं है। अलग-अलग और साथ मिलकर विपक्ष के नेताओं में जो बातचीत हुई उसमें भी वे इसी नतीजे पर पहुँचे थे। सच तो यह है कि सभी पार्टियों को एक में मिला देने की बातचीत से चरणसिंह इतनी बुरी तरह निराश थे कि उन्होंने बहुत पहले 14 जुलाई को ही संगठन कांग्रेस के अध्यक्ष अशोक मेहता को लिख दिया था कि भारतीय लोकदल "अब तंग आ चुका है; उसकी

नीयत पर भी शुबहा किया जा रहा है। इसलिए उसने इस सिलसिले में किसी कर्त्तव्य के बोझ को अपने मन पर रखे बिना अकेले ही चुनाव लड़ने का फ़ैसला किया है—अलावा इस एक कर्त्तव्य के कि जब कभी बाक़ी तीन पार्टियाँ कमोबेश राष्ट्रपिता के बताये हुए कार्यक्रम की रूपरेखा के आधार पर एक संगठन बनाने के लिए अपने-आपको भंग कर देंगी या भंग करने का फ़ैसला कर लेंगी, भारतीय लोकदल फ़ौरन उनके साथ आ जायेगा।"

सारी पार्टियों के मिलकर एक हो जाने में बाधा दरअसल इस सवाल के कारण पड़ रही थी कि नेता कौन हो ? 16 दिसम्बर को, जब मोरारजी जेल में थे, विपक्ष के नेताओं की मीटिंग में ऐसा लगता था कि नेता चरणसिंह ही होंगे। मोरारजी जहाँ नजरबन्द थे वहाँ से उन्होंने लिखा था कि उन्हें सब पार्टियों के मिलकर एक हो जाने में दिलचस्पी है, इस बात में नहीं कि नेता कौन होगा।

लेकिन अब, चुनाव का ऐलान हो जाने के बाद विपक्ष के नेताओं की मीटिंग में जिस तरह मोरारजी ने सारी बहस को सँभाल रखा था उससे तो अब शक़ ही नहीं रह गया था कि नेता कौन होगा। सभी पार्टियाँ उन्हें चेयरमैन और चरणसिंह को डिप्टी-चेयरमैन बनाने पर राज़ी हो गयीं।

अपने-आपको ज़िंदा रखने की सहज भावना ने चारों पार्टियों को मजबूर कर दिया था कि वे चुनाव लड़ने के लिए एक ही पार्टी, एक संयुक्त मोर्चा बना लें—जनता पार्टी, जिसका एक ही चुनाव का निशान हो और एक ही झंडा हो। सभी पार्टियों की अलग-अलग मीटिंगें किये बिना यह मुमकिन नहीं था कि उनकी अलग-अलग हैसियत को ख़त्म कर दिया जाये, लेकिन इसमें वक़्त लगता और वक़्त उनके पास था नहीं। ये पार्टियाँ जानती थीं कि अगर उनकी बुरी तरह हार हुई तो श्रीमती गांधी और उनका बेटा यह समझ लेंगे कि उन्हें डिक्टेटरशिप क़ायम करने के लिए जनता की तरफ़ से छूट मिल गयी है। लेकिन अगर उनके काफ़ी लोग जीत जाते हैं और संसद में उनका एक ख़ासा बड़ा ग्रुप बन जाता है तो फिर श्रीमती गांधी यह दावा नहीं कर सकेंगी कि उन्हें जनता का पक्का समर्थन मिल गया है।

एक साथ मिलकर चुनाव लड़ने से इस बात का तो यक़ीन हो जायेगा कि विपक्ष के वोट कई टुकड़ों में बँटने नहीं पायेंगे। अब तक यही होता आया था कि वोट बँट जाने की वजह से ही कांग्रेस जीत जाती थी, हालाँकि उसे कभी भी आधे से ज़्यादा वोट नहीं मिले थे। 1971 तक में जब उसने बाक़ी सबका सफ़ाया कर दिया था, उस वक़्त भी उसे सिर्फ़ 46·2 प्रतिशत वोट मिले थे।

जयप्रकाश ने पार्टियों के एक में मिल जाने को अपना आशीर्वाद दिया और जनता से कहा कि वह दो चीज़ों में से किसी एक को चुन ले : जनतन्त्र या डिक्टेटर-शिप, आज़ादी या ग़ुलामी। उन्होंने कहा कि श्रीमती गांधी की जीत का मतलब होगा डिक्टेटरशिप की जीत। और संयुक्त मोर्चे ने भी आर्थिक समस्याओं के बजाय इसी बात पर ज़ोर दिया।

श्रीमती गांधी ने जनता से कहा कि चुनाव कराने के मेरे फ़ैसले ही से यह बात ग़लत साबित हो गयी है कि मैं डिक्टेटर हूँ विपक्ष की जिन पार्टियों ने अब मिलकर 'दक़ियानूसी ताक़तों' की एक पार्टी बनायी है वही चुनावों के टलने के लिए सबसे ज़्यादा ज़िम्मेदार हैं—उन्होंने देश में जो ऊधम मचा रखा था उसी की वजह से मजबूर होकर उन्हें चुनाव टलवाना पड़ा था।

विपक्ष की पार्टियों ने इस बात पर उनसे कोई झगड़ा नहीं किया। 23 जनवरी को उन्होंने बाक़ायदा जनता पार्टी के बन जाने का ऐलान कर दिया। फ़ैसले लेनेवाली

सबसे ऊँची संस्था के रूप में 27 सदस्यों की एक राष्ट्रीय समिति बनायी गयी। इन अलग-अलग पार्टियों को,[1] जिनके हितों में और जिनकी विचारधाराओं में टकराव था, एक साथ लाने के लिए जयप्रकाश को बड़ी मेहनत करनी पड़ी। अलग-अलग नेताओं को यह समझाना पड़ा कि राष्ट्र के हित में उन्हें अपने मतभेदों को भुला देना चाहिए।

विपक्ष की पार्टियों को ऐसे लोगों की ज़रूरत थी जो यह संदेश जनता तक पहुँचा सकें। लेकिन उनके सबसे सक्रिय कार्यकर्त्ता अभी तक जेल में थे। उनके नेता नज़रबन्दों को जल्द रिहा कराने की माँग पर ज़ोर देने के लिए पहले ओम मेहता से और उसके बाद श्रीमती गांधी से मिले। दोनों ही ने वायदा किया कि नज़रबन्दों को रिहा कर दिया जायेगा। लेकिन राज्यों को जो आदेश भेजे गये थे उनमें यह बात साफ़ कर दी गयी थी कि इस काम में जल्दी करने की कोई ज़रूरत नहीं है—यह आम रिहाई नहीं है और हर आदमी के मामले पर अलग-अलग विचार किया जाना चाहिए; फ़ैसले पर अमल करने से पहले उसे मंजूरी के लिए केन्द्र के पास भेजा जाना चाहिए।

सरकार चाहती यह थी कि जहाँ तक मुमकिन हो विपक्ष के ज़्यादा-से-ज़्यादा कार्यकर्ताओं को ज़्यादा-से-ज़्यादा दिन तक जेल में बन्द रखा जाये और यह भी न मालूम हो कि चुनाव जीतने के लिए किसी बेजा हथकंडे का सहारा लिया जा रहा है।

इमर्जेंसी और अख़बारों की सेंसरशिप में ढील देने का काम भी बड़े अनमनेपन से किया जा रहा था। सरकार इस बात को साफ़ कर देना चाहती थी कि तलवार नीची भले ही कर ली गयी हो पर अभी म्यान में नहीं रखी गयी थी; वह चाहती थी कि लोग उसे देखें और डरते रहें। और कुछ दिन तक तो यह हाल रहा भी कि लोग तलवार को देखते भी थे और डरते भी थे। अभी तक चारों तरफ़ इतना आतंक छाया हुआ था कि जनसंघ ने तो यहाँ तक कह दिया कि अगर इमर्जेंसी फ़ौरन ख़त्म न की गयी, नज़रबन्दों को रिहा न किया गया और अख़बारों पर से सेंसरशिप पूरी तरह उठा न ली गयी तो उसे मजबूरन चुनाव का बॉयकाट करना पड़ेगा।

श्रीमती गांधी के घर पर इमर्जेंसी और अख़बारों पर सेंसरशिप के सवाल पर एक अन्तहीन बहस छिड़ी हुई थी। इस पर तो सभी की राय एक थी कि उन्हें बिल्कुल हटा लेने का तो कोई सवाल ही पैदा नहीं होता। चुनाव के दौरान इनकी वजह से बहुत-से लोग वोट देने नहीं जायेंगे, जो कांग्रेस के लिए अच्छा ही होगा, और अख़बार खुलकर आलोचना भी नहीं कर सकेंगे। और चुनाव हो जाने के बाद, जिसमें कांग्रेस का जीतना यक़ीनी है, इमर्जेंसी और सेंसरशिप को फिर से लागू किया जा सकता है। इस वक़्त उन्हें हटाने का मतलब यह होगा कि दोनों सदनों में बहस करने, वोट लेने और राष्ट्रपति की मंजूरी लेने का पूरा चक्कर फिर से चलाना पड़ेगा, तब कहीं जाकर इन्हें दुबारा लागू किया जा सकेगा।

अख़बारों पर सेंसरशिप में ढील का मतलब यह नहीं था कि अख़बारों को जो भी उनका जी चाहे छापने की छूट मिल गयी थी। उनके सिर पर आपत्तिजनक सामग्री छापने से सम्बन्धित ऑर्डिनेंस की तलवार लटकती रहती थी। शुक्लाजी ने सेंसरशिप का जो जाल फैला रखा था उसे अभी समेटा नहीं था। उसके अफ़सरों से कहा गया कि वे सारे देश का दौरा करके सम्पादकों से जाकर मिलें और उन्हें चेतावनी दे दें कि

1. अलग-अलग इलाक़ाई पार्टियों को मिलाकर चुनाव लड़ने के लिए एक ही पार्टी बनाने का विचार सबसे पहले प्रसिद्ध कार्टूनिस्ट राजेन्द्र पुरी ने पेश किया था; शुरू में वही पार्टी के एक जनरल सेक्रेटरी बनाये गये थे।

शराफ़त से रहें। ज़्यादातर अखबार शराफ़त के साथ काम करते रहें।

पटना से दिल्ली आने पर जयप्रकाश नारायण ने मोरारजी के घर पर जो पहली प्रेस कान्फ्रेंस की थी उसमें उन्होंने अपने भाषण में कहा था कि उन्हें ऐसा लगता है कि जीतेगी तो कांग्रेस ही, इसलिए नहीं कि वह बहुत लोकप्रिय है बल्कि इसलिए कि विपक्ष की पार्टियों को अपने कार्यकर्त्ताओं को फिर से संगठित करने के लिए, पैसा जमा करने के लिए और जनता को यह बताने के लिए कि इस चुनाव में क्या-क्या दाँव पर लगा हुआ है, बहुत कम समय दिया गया था। इसमें तो शक नहीं कि देश में कांग्रेस की जगह ले सकनेवाली एक दूसरी जानदार पार्टी के बारे में जयप्रकाश का सपना तो ऐसा लगता था कि पूरा हो गया है। लेकिन उन्हें चुनाव में उसकी कामयाबी का इतना भरोसा नहीं था।

जनता पार्टी ने पंजाब में अकालियों की टोह लेने की कोशिश की और देखा कि वे उसके साथ मिलकर चलने को तैयार हैं। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने कहा कि वह नयी पार्टी में शामिल तो नहीं होगी लेकिन उसके साथ चुनाव लड़ने का समझौता ज़रूर कर लेगी क्योंकि नागरिक स्वतन्त्रताओं के बिना कोई आर्थिक कार्यक्रम चलाना मुमकिन नहीं है।

कांग्रेस के लोगों के साथ, जो किसी ज़माने में उनके साथी थे, मार्क्सवादियों के साथ और दूसरे लोगों के साथ अपनी बातचीत के दौरान चन्द्रशेखर ने यही रुख अपनाया था। एक पत्र में उन्होंने लिखा, "हमारे सामने चुनने के लिए जो रास्ते हैं वे बहुत सीमित हैं। या तो हम उसी (कांग्रेस की) भेड़चाल में शामिल हो जायें और छोटी-मोटी निजी रिआयतें हासिल करके अपनी भुलावों की दुनिया में मगन रहें और समाज में जो कुछ हो रहा है उसे हाथ-पर-हाथ धरे देखते रहें, या उन ताक़तों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर लड़ने का रास्ता अपनायें, जिन्होंने बुनियादी आज़ादी और नागरिक अधिकारों को अपना अटल सिद्धान्त बना लिया है।"

तमिलनाडु में डी० एम० के० ने संगठन कांग्रेस के साथ ताल-मेल रखने पर अपनी रज़ामंदी ज़ाहिर की। लेकिन चूंकि चुनाव कमीशन ने जनता पार्टी को चुनाव का नया निशान देने से इंकार कर दिया था इसलिए सभी पार्टियाँ अपने-अपने पुराने निशान रखकर चुनाव लड़ना चाहती थीं, भारतीय लोकदल का निशान—एक पहिये के अन्दर कंधे पर हल रखे हुए आदमी वाला निशान—रखकर नहीं।

कांग्रेस भी साथियों की खोज में थी। उसे दो साथी मिले, एक भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और दूसरा तमिलनाडु में अन्ना डी० एम० के०। संजय भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के साथ कोई सरोकार नहीं रखना चाहता था, जिसके खिलाफ़ उसने कुछ ही दिन पहले 'समाचार' के ज़रिये, जिसके कर्त्ता-धर्त्ता यूनुस थे, अखबारों में एक ज़बर्दस्त मुहिम चलायी थी। लेकिन श्रीमती गांधी ने उसे यक़ीन दिला दिया कि यह समझौता कांग्रेस की शर्तों पर होगा।

हालांकि कांग्रेस को किसी की मदद की दरअसल ज़रूरत नहीं थी क्योंकि उसे अपनी जीत का पूरा यक़ीन था, फिर भी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्त्ताओं से कुछ तो मदद मिल ही सकती थी। बीस महीने के दौरान लोगों के दिलों में जो दहशत बिठा दी गयी थी वह दो-तीन महीने में तो दूर नहीं की जा सकती थी। वे उसी को वोट देंगे जिसे वोट देने के लिए कहा जायेगा, क्योंकि जो लोग उस पार्टी के खिलाफ़ सिर उठाने की कोशिश करेंगे जिसके हाथ में सरकार की पूरी मशीन थी, उनको जल्द ही इसका मज़ा चखा दिया जायेगा।

लेकिन जल्द ही इस तरह की खबरें आने लगीं जिनसे कांग्रेस को परेशानी

होने लगी। लोगों का डर दूर होता जा रहा था, वे इमर्जेंसी के खिलाफ़ बातें करने लगे थे और उन्हें इस बात का भी डर नहीं था कि उन्हें ताक लिया जायेगा। महात्मा गांधी के बलिदान-दिवस 30 जनवरी को जनता पार्टी ने जब अपना चुनाव का प्रचार शुरू किया तो उसका लोगों ने जिस उत्साह से स्वागत किया उससे यह साफ़ पता चलता था कि हवा कांग्रेस के खिलाफ़ है। दिल्ली, पटना, जयपुर, कानपुर और कई दूसरी जगहों पर इतनी बड़ी-बड़ी मीटिंगें हुईं कि जनता पार्टी के नेताओं को खुद इतनी उम्मीद नहीं थी। आम जनता के इस उत्साह पर अधिकारियों को भी इतना ही ताज्जुब हुआ।

दिल्ली में जो मीटिंग हुई उसमें 1,00,000 से ज़्यादा लोग मौजूद थे जबकि सरकारी अफ़सरों का अन्दाज़ा था कि 10,000 या हद-से-हद 20,000 से ज़्यादा लोग नहीं आयेंगे। इस मीटिंग में मोरारजी ने भाषण दिया। यह मीटिंग उसी रामलीला मैदान में हुई थी जहाँ 25 जून 1975 को नेताओं की गिरफ़्तारी और इमर्जेंसी के ऐलान से कुछ ही घंटे पहले, जयप्रकाश ने एक और बहुत बड़ी मीटिंग में भाषण दिया था। वह गर्मियों के दिनों की बात थी; आज जनवरी की ठिठुरती हुई और भीगी हुई शाम को लोग बिलकुल चुपचाप बैठे जनता पार्टी के नेताओं के भाषण सुन रहे थे और बाद में कितने ही लोग जनता पार्टी के चुनाव-फ़ण्ड में पैसा देने के लिए लाइन बाँधकर बड़ी देर तक खड़े रहे।

पटना में जयप्रकाश ने एक बहुत बड़ी भीड़ को शपथ दिलायी कि वे नागरिकों के बुनियादी अधिकारों और उनकी शहरी स्वतन्त्रताओं की रक्षा करने के लिए किसी भी कुर्बानी को बहुत बड़ा नहीं समझेंगे। दिल्ली में जूनवाली मीटिंग के बाद वह पहली बार किसी पब्लिक मीटिंग में भाषण दे रहे थे। यह शपथ लेने के लिए जब हज़ारों लोगों ने अपने हाथ उठा दिये तो जयप्रकाश की आँखों में खुशी के आँसू छलक आये।

चरणसिंह ने कानपुर में और चन्द्रशेखर ने जयपुर में जनता पार्टी की चुनाव की मुहिम की शुरुआत की। बेहद बड़ी-बड़ी भीड़ें जमा हुईं। अगले दिन सुबह जब श्रीमती गांधी के पास खुफ़िया विभागवालों ने इन मीटिंगों की रिपोर्टें भेजीं तो उन्हें पढ़कर वह खुश नहीं हुईं। वह बहुत परेशान हो उठीं हालाँकि इन रिपोर्टों में इतनी बड़ी-बड़ी भीड़ें जमा होने का कोई ख़ास महत्त्व नहीं था। उनका कहना था कि इमर्जेंसी के भयानक दौर के बाद, जब सिर्फ़ उन बड़ी मीटिंगों की इजाज़त दी जाती थी जो संजय गांधी की जय-जयकार करने के लिए की जायें यह स्वाभाविक था कि लोग 'सैर-तफ़रीह' के इन मौक़ों का फ़ायदा उठायें। श्रीमती गांधी ने सुझाव दिया कि जवाबी मीटिंगें की जायें।

उन्होंने यह भी सोचा कि उनकी पार्टी में जो 'बूढ़े खूसट' लोग थे उनका असर अपने इलाक़ों में कम होता जा रहा है। वक़्त आ गया है कि उनसे छुटकारा पा लिया जाये, क्योंकि संसद के जितने सदस्यों को वह जानती थीं उनमें से ज़्यादातर उनके साथ वफ़ादारी से ज़्यादा डर की वजह से थे। इस तरह संजय को भी राजनीतिक के मैदान में अपने पाँव जमाने में मदद मिलेगी क्योंकि तब उसे अपने भरोसे के लोगों का सहारा रहेगा। युवक कांग्रेस ने खुलेआम कहा कि उसे उम्मीद है कि उसके 150 से 200 तक मेंबरों को चुनाव लड़ने के लिए टिकट दिये जायेंगे। अंबिका सोनी ने कहा कि युवक कांग्रेस ही असली कांग्रेस है।

श्रीमती गांधी ने यह इशारा दिया कि उन्हें सारे उम्मीदवारों को चुनने की खुली छूट होनी चाहिए। एक-एक करके सभी प्रदेश कांग्रेस कमेटियों ने और उनके

संसदीय बोर्डों ने एकमत होकर प्रस्ताव स्वीकृत कर दिये और प्रधानमंत्री को पूरा अधिकार दे दिया कि उनकी तरफ़ से वही उम्मीदवार चुन लें।

संजय ने फ़ेहरिस्तें तैयार करना शुरू किया। जितने लोग उसकी चौखट पर या उन लोगों की चौखट पर आने लगे जिनकी उस तक पहुँच थी उतने प्रधानमंत्री की चौखट पर भी नहीं जाते थे। वह हर उम्मीदवार के बारे में यह पता लगाने के लिए कि अपने इलाक़े में उसका कितना असर है खुफ़िया विभागवालों से सलाह-मशविरा करने लगा। इस तरह इन लोगों पर अपना शिकंजा कसे रखने के लिए उसे बहुत-सा मसाला भी मिल गया। संसद की 542 सीटों में से हर एक के लिए औसतन दो-दो सौ उम्मीदवार थे।

संजय ने बंसीलाल की तैयार की हुई हरियाणा के उम्मीदवारों की फ़ेहरिस्त की छानबीन करके उसे अपनी मंजूरी दे दी। महाराष्ट्र के उम्मीदवारों के नामों का भी ऐलान कर दिया गया। ऐसा लगता था कि सब-कुछ संजय की योजना के अनुसार ठीक-ठाक चल रहा है।

अचानक सारा बना-बनाया खेल बिगड़ गया। जगजीवनराम ने 2 फरवरी को कांग्रेस से और सरकार से इस्तीफ़ा दे दिया। कांग्रेस में कोई भी इसके लिए तैयार नहीं था।

तीन दिन पहले खुफ़िया विभागवालों ने ओम मेहता को इस अफ़वाह की खबर दी थी कि जगजीवनराम बग़ावत करने के मंसूबे बना रहे हैं। लेकिन इस पर किसी ने गम्भीरता से विचार नहीं किया। अभी एक ही दिन पहले तो जगजीवनराम प्रधानमंत्री से मिले थे और उस वक़्त उन्होंने इस बात का कोई ज़िक्र नहीं किया था। उन्होंने श्रीमती गांधी को बस इतना बताया था कि वह इमर्जेंसी लागू रखने के ख़िलाफ़ हैं। बाद में उन्होंने अपने दोस्तों को बताया कि अगर उन्होंने पार्टी छोड़ने के बारे में उनसे कुछ कहा होता तो उन्हें गिरफ़्तार कर लिया जाता। जिस दिन जगजीवनराम ने इस्तीफ़ा दिया था, उसी दिन अपनी कोठी के लम्बे-चौड़े लॉन में उन्होंने एक बहुत बड़ी प्रेस कान्फ्रेंस में कहा कि वह चाहते थे कि सभी कांग्रेसी उनके साथ मिलकर इमर्जेंसी को और 'तानाशाही और निरंकुशता की उन प्रवृत्तियों' को खत्म करने के लिए उनका साथ दें 'जो इधर-उधर कुछ अरसे से धीरे-धीरे देश की राजनीति में पैदा हो गयी हैं।' उन्होंने कहा कि कांग्रेस संगठन के अन्दर सभी स्तरों पर जनतान्त्रिक ढंग से काम करने के तरीक़े में न सिर्फ़ कतर-ब्योंत कर दी गयी थी बल्कि उसे लगभग बिलकुल खत्म कर दिया गया था। "कांग्रेस के संगठन वाले और संसदीय दोनों ही हिस्सों के अन्दर अनुशासनहीनता को न सिर्फ़ बर्दाश्त किया गया है बल्कि उसे ऊपर से उकसाया गया है और बढ़ावा दिया गया है।"

जगजीवनराम के एक तरफ़ हेमवती नन्दन बहुगुणा बैठे थे, जिन्हें उत्तर प्रदेश में मुख्यमंत्री के पद से हटा दिया गया था, और दूसरी तरफ़ नन्दिनी सत्पथी बैठी थीं, जिन्हें उड़ीसा के मुख्यमंत्री के पद से हटने पर मजबूर कर दिया गया था। इन दोनों ने भी कांग्रेस छोड़ देने का ऐलान किया। भूतपूर्व मंत्री के० आर० गणेश ने भी ऐसा ही ऐलान किया। इन सभी ने कहा, "हम नई कांग्रेस नहीं हैं। हम अब भी वही पुरानी कांग्रेस पार्टी हैं।" दिसम्बर 1969 में जब श्रीमती गांधी और उनके साथियों ने अपनी अलग कांग्रेस पार्टी बनायी थी उस वक़्त उन्होंने भी लगभग यही शब्द इस्तेमाल किये थे।

जब मैंने जगजीवनराम से पूछा कि उन्होंने इस्तीफ़ा क्यों दिया था तो उन्होंने जवाब दिया कि यह बहुत-सी बातों का नतीजा था जो पिछले कई महीनों के दौरान

होती रही थीं; उन 'सबका मिलकर यह नतीजा' हुआ था। उन्होंने यह भी कहा, "मैं बहुत तनाव का शिकार था।" बहुत दिन से श्रीमती गांधी और उनका बेटा हर वह काम करते आये थे जो उन्हें नापसन्द था और वह उनका साथ नहीं देते रह सकते थे।

शायद यह सच हो लेकिन चन्द्रशेखर और बहुगुणा ने उन्हें यह क़दम उठाने पर राज़ी करने के लिए कई दिन खर्च किये थे। ऐसा लगता है कि दिल्ली में चुनाव के सिलसिले में जनता पार्टी की जो पहली मीटिंग हुई थी उससे उनकी यह राय पक्की हो गयी थी कि कई राज्यों में जनता कांग्रेस का तख़्ता उलट देगी।

अख़बारों ने (लेकिन 'वफ़ादार' अख़बारों ने नहीं) इस ख़बर को उछालने के लिए सप्लीमेंट निकाले, और कांग्रेसियों ने जगजीवनराम के खिलाफ़ और उन लोगों के खिलाफ़ जो उनके साथ कांग्रेस छोड़कर चले गये थे, खूब कीचड़ उछाली।

कांग्रेस की वर्किंग कमेटी ने सर्वसम्मति से जगजीवनराम के कांग्रेस छोड़ देने की निन्दा करते हुए प्रस्ताव पास किया। बरुआ ने इसे 'एक आदमी' की ग़द्दारी कहा। श्रीमती गांधी ने कहा कि बड़ी अजीब बात है कि वह इतने महीनों तक चुप क्यों रहे। ख़बरें देनेवाले सरकारी माध्यमों ने, जिनमें 'समाचार' एजेंसी भी शामिल थी, उनके इस्तीफ़े को दल बदलने की हरकत कहा।

कांग्रेसी नेताओं ने यह जताने की कोशिश की जैसे कुछ हुआ ही न हो। श्रीमती गांधी बहुत परेशान थीं। बरसों से उनका यह तरीक़ा रहा था कि अचानक अपने साथियों के सामने कोई फ़ैसला लाकर रख देती थीं; इस बार जगजीवनराम ने उनको ऐसी चोट पहुँचायी थी कि वह भी उमर भर याद रखतीं। चुनाव का ऐलान करते वक़्त उन्हें यह तो मालूम था कि ग़ैर-कम्युनिस्ट पार्टियाँ आपस में गठजोड़ बना सकती हैं, लेकिन जगजीवनराम का इस तरह साथ छोड़कर चले जाना उनके लिए बहुत बड़ा आघात था। उनकी पार्टी कांग्रेस फ़ॉर डेमोक्रेसी (सी० एफ़० डी०) श्रीमती गांधी की पार्टी में से सभी असन्तुष्ट लोगों को खींचकर ले जा सकती थी और श्रीमती गांधी जानती थीं कि उनकी अपनी पार्टी में इस तरह के बहुत-से लोग थे।

उन्हें इस तरह की ख़बरें मिली थीं कि उनकी पार्टी के बहुत-से लोग इमर्जेंसी के नाम पर जो कुछ हो रहा था और उनके बेटे और उनकी युवक कांग्रेस की धाँधली से बहुत नाखुश थे। डर की वजह से और कोई दूसरा मंच न होने की वजह से ही वे अब तक कांग्रेस में बने हुए थे। श्रीमती गांधी को डर था कि जगजीवनराम के बाद अब और भी बहुत-से लोग कांग्रेस छोड़कर चले जायेंगे। इस वक़्त जो भी संसद या विधानसभा का मेम्बर है उसे अगर टिकट न दिया गया तो उसके लिए कांग्रेस छोड़ देने का यह काफ़ी बहाना होगा।

वह अब 'बूढ़े खूसटों' से छुटकारा पाने की हिम्मत नहीं कर सकती थीं। उन्हें अब जाने-पहचाने और परखे हुए लोगों का ही सहारा था। संजय गांधी ने ज फ़ेहरिस्तें बनायी थीं उन्हें रद्द कर देना पड़ा। जगजीवनराम के कांग्रेस छोड़ देने का पहला शिकार युवक कांग्रेस हुई। कांग्रेस के जितने लोग उस समय संसद या विधानसभा के मेम्बर थे उनमें से ज़्यादातर को टिकट मिल गया। अब नारा यह बन गया था: 'पुराने को पकड़े रहो!' एक मज़ाक बार-बार दोहराया जा रहा था कि इन सभी लोगों ने अपने घरों पर जगजीवनराम की एक-एक तसवीर लगा ली थी जिसके सामने वे बड़ी श्रद्धा से सर झुकाते थे।

अब असरदार मेम्बरों को खुश रखने के लिए पूरा ज़ोर लगाया जा रहा था ताकि वे पार्टी छोड़कर न चले जायें। जिस तरह सिद्धार्थ बाबू ने, जो अभी कुछ ही दिन पहले तक दुतकारे हुए लोगों में थे, फिर अपना पासा पलट लिया, वह इसकी एक

बहुत अच्छी मिसाल थी। उन्होंने उम्मीदवारों की जो फ़ेहरिस्त बनायी थी उसे न तो राज्य के मंत्रिमण्डल में उनके साथी मानने को तैयार थे और न प्रदेश कांग्रेस कमेटी में उनके साथी। लेकिन उन्होंने यह धमकी देकर अपनी बात मनवा ली कि अगर उन्हें उम्मीदवारों के बारे में फ़ैसला करने का भी अधिकार नहीं होगा तो वह मुख्यमंत्री भी नहीं बने रहना चाहेंगे।

पार्टी के अन्दर जो 'चौधरापा' क़ायम था, उस पर जगजीवनराम के हमले से भी कांग्रेस हाई कमाण्ड बहुत झल्लाया हुआ था। अब इस आरोप को ग़लत साबित करने की हर मुमकिन कोशिश की जा रही थी। कांग्रेस पार्टी के अन्दर अब एक बार फिर बहस और सलाह-मशविरे का दिखावा तो किया जाने लगा था। चह्वाण, सुब्रह्मण्यम और स्वर्णसिंह जैसे लोगों की एक बार फिर पूछ होने लगी थी।

उम्मीदवारों की हर फ़ेहरिस्त का ऐलान होने के बाद कांग्रेस की तरफ़ से बोलने वाला जो भी आदमी होता था वह ख़ास तौर पर इस बात पर ज़रूर ज़ोर देता था कि इन उम्मीदवारों को केन्द्रीय चुनाव कमेटी ने चुना है। एक दिन ए० आई० सी० सी० की सेक्रेटेरियट ने बड़ी जल्दी में दिल्ली के पत्रकारों की एक मीटिंग यह बताने के लिए बुलायी कि यह कहना ग़लत है कि उम्मीदवारों को चुनने का काम प्रधानमंत्री पर छोड़ दिया गया है, जैसा कि राज्यों से आनेवाली ख़बरों से पता चलता है।

जगजीवनराम के चले जाने से कांग्रेस को पैसा जमा करने में भी कठिनाई का सामना करना पड़ा। अचानक, शासक पार्टी को यह बात चुभने लगी, क्योंकि वह जिसका भी दरवाजा खटखटाती उसी के बारे में पता चलता कि 'हैं नहीं' और यह कहा जाता था कि वे सबके सब 'विदेश' गये हुए हैं।

एक तरह से कांग्रेस को कोई ख़ास परेशानी नहीं थी। उसने पार्टी की तरफ़ से स्मारिकाएँ (सूवनिअर) छाप-छापकर 30 करोड़ रुपये जमा कर रखे थे; सभी बड़े-बड़ सेठों और व्यापारियों ने उसमें विज्ञापन दिये थे। इसके अलावा प्राइवेट कम्पनियों और व्यापारियों ने 20 करोड़ रुपये और दिये थे जिनको किसी हिसाब में दिखाया नहीं गया था। विज्ञापनों के भुगतान के चैक और नक़द चन्दा दोनों ही या तो पी० सी० सेठी के हाथ में दिये गये थे या 1 सफ़दरजंग रोड में श्रीमती गांधी की कोठी पर।

विज्ञापन जमा करने में उस गश्ती चिट्ठी (नं० 203) से बहुत आसानी हो गयी जो सेण्ट्रल बोर्ड ऑफ़ डायरेक्ट टैक्सेज़ के सेक्रेटरी टी० पी० झुनझुनवाला ने 16 जुलाई 1976 को इनकम-टैक्स के सभी कमिश्नरों को भेजी थी और जिसकी नक़लें हर चैम्बर ऑफ़ कामर्स को भेज दी गयी थीं। इस गश्ती चिट्ठी में कहा गया था, "यह सवाल उठाया गया है कि क्या कोई इनकम-टैक्स देनेवाला एक ही संस्था/संगठन की ओर से प्रकाशित होनेवाली एक से अधिक स्मारिकाओं में अपना प्रचार करा सकता है। कोई भी व्यापारी एक से अधिक अख़बारों या पत्रिकाओं में या एक ही अख़बार या पत्रिका के एक से अधिक अंकों में विज्ञापन दे सकता है। इस प्रकार के विज्ञापनों पर ख़र्च की गयी रक़म पर इनकम-टैक्स में छूट पाने का अधिकार होगा।

स्मारिकाओं में बेहद ऊँची दर पर विज्ञापन छापकर पैसा बटोरने की तरकीब कांग्रेस को सबसे पहले 1973 में सूझी थी। इस तरह उस क़ानून की गिरफ़्त से भी बचा जा सकता था जिसमें कम्पनियों पर यह पाबन्दी लगा दी गयी है कि वे राजनीतिक चन्दे नहीं दे सकतीं। यह योजना यशपाल कपूर और धवन ने तैयार की थी। इन स्मारिकाओं के सिलसिले में दिलचस्प बात यह है कि विज्ञापन देनेवालों के अलावा, जिन्हें क़ानूनी धोखे की टट्टी खड़ी करने के लिए नमूने की कुछ प्रतियाँ भेज दी गयी थीं, किसी ने उनकी सूरत तक नहीं देखी।

कांग्रेस समझती थी कि उसकी लोकप्रियता में जो कमी हुई है उसकी कसर उसके साधनों से पूरी कर ली जायेगी। कांग्रेस खुद देख चुकी थी कि 1971 में किस तरह श्रीमती गांधी के 'ग़रीबी हटाओ' के नारे के खिलाफ़ थैलीशाहों की एक नहीं चलने पायी थी। अब कांग्रेस के सामने इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं था कि वह जनता को अपनी ओर लाने के लिए पैसा इस्तेमाल करे। पार्टी के खज़ांची पी० सी० सेठी ने नई दिल्ली में 2 कौशिक रोड पर अपना दफ़्तर खोल लिया, जहाँ बदलकर गौहाटी भेजे जाने से पहले जस्टिस रंगराजन रहते थे। सेठी ने हर उम्मीदवार को 1,00,000 रुपये के अलावा दो-दो जीपें दीं।

उधर जनता पार्टी पैसे की तंगी की परवाह न करके और पार्टी की ओर से छपवाये गये चुनाव फ़ंड के कूपनों का सहारा लेकर चुनाव के मैदान में कूद पड़ी। सी० एफ़० डी० की आवाज़ भी जनता पार्टी के साथ थी—जयप्रकाश ने उन दोनों को एक ही झंडे के नीचे और एक ही निशान पर साथ मिलकर चुनाव लड़ने के लिए राज़ी कर लिया था।

जामा मस्जिद के शाही इमाम मौलाना सैयद अब्दुल्ला बुखारी ने भी, जो मुसलमानों में बहुत लोकप्रिय थे, अपना पूरा ज़ोर विपक्ष की ओर से लगा दिया।

लेकिन जिस बात से जनता-सी-एफ़० डी० का हौसला सबसे ज़्यादा बढ़ा वह 12 फ़रवरी को हुई जब नेहरू की बहन और श्रीमती गांधी की बुआ श्रीमती विजय-लक्ष्मी पंडित भी अपनी भतीजी के खिलाफ़ ज़ोर लगाने के लिए मैदान में उतर आयीं। उन्होंने कहा : "आज़ादी के वर्षों के दौरान हमने जितनी भी जनतान्त्रिक संस्थाएँ बनायी थीं, उन सभी को एक-एक करके कुचल दिया गया और नष्ट कर दिया गया। क़ानून के शासन की जड़ें खोखली कर दी गयीं और अदालतों की आज़ादी खत्म कर दी गयी। अखबारों पर सेंसरशिप लागू कर दी गयी।" उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि वक़्त का बुनियादी तक़ाज़ा यह है कि जनतन्त्र को फिर से पटरी पर लाया जाये। "हमारे चिरपोषित आदर्शों को खोखला करते जाने का यह सिलसिला बन्द होना चाहिए और हमें एक बार उन्हीं आदर्शों पर वापस लौट जाना चाहिये जिनका पालन करने के लिए हम वचनबद्ध हैं।"

सच तो यह है कि इधर कुछ समय से श्रीमती गांधी और श्रीमती पंडित तथा उनके परिवार के सम्बन्ध धीरे-धीरे बिगड़ते गये थे। अभी कुछ ही दिन पहले श्रीमती पंडित की बेटी तारा ने मुझे बताया था "कि एक ज़माना था जब मामा के घर पर हमारे कुत्ते तक का स्वागत होता था, और अब हम लोगों का भी जाना गवारा नहीं किया जाता।"

श्रीमती गांधी को इन सब बातों से बहुत परेशानी हुई। हालाँकि खुफ़िया रिपोर्टों में अब भी यही कहा जाता था कि जीत कांग्रेस की ही होगी, लेकिन वह कितनी सीटें जीतेगी इसका अन्दाज़ा अब बहुत घट गया था। इन रिपोर्टों में यह भी कहा गया था कि बुद्धिजीवी वर्ग इस बात से भी बहुत नाराज़ हो गया है कि हालाँकि बारी जस्टिस हंसराज खन्ना की थी, लेकिन उन्हें न बनाकर उनसे जूनियर जज जस्टिस एम० एच० बेग को तरक़्क़ी देकर भारत का चीफ़ जस्टिस बना दिया गया था। गोखले ने मुझे बताया कि उन्होंने श्रीमती गांधी को बहुत समझाने की कोशिश की थी कि जस्टिस खन्ना का हक़ न मारें लेकिन वह नहीं मानीं। जस्टिस खन्ना को इस बात की क़ीमत चुकानी पड़ी कि मीसा वाले मुक़दमे में उन्होंने सरकार के खिलाफ़ अपना फ़ैसला दिया था।

चूँकि हवा का रुख कांग्रेस के खिलाफ़ था इसलिए अफ़वाहें यह उड़ने लगीं कि

चुनाव टाल दिये जायेंगे। इन अफ़वाहों ने इतना ज़ोर पकड़ा कि चुनावों की तारीखों का ऐलान करते हुए एक सूचना जारी करनी पड़ी। चुनाव 16 से 20 मार्च तक किये जाने का फ़ैसला किया गया था।

श्रीमती गांधी अब भी समझती थीं कि कांग्रेस खींच-तानकर 280 सीटें जीत ही जायेगी; खुफ़िया विभागवालों की भी यही राय थी। लेकिन अब श्रीमती गांधी को खतरा दिखायी देने लगा था। अपने भाषणों में उन्होंने देश के लिए भीतरी और बाहरी खतरों का राग अलापना शुरू कर दिया था। उन्होंने कहा कि विपक्ष के गिरोह एक बार फिर अस्थिरता की हालत पैदा करने की कोशिश कर रहे हैं—इस बात में एक बहुत ही खतरनाक गूंज थी। उन्होंने इमर्जेंसी की पैरवी में कहा कि उसकी बदौलत देश ने सभी क्षेत्रों में 'तरक्क़ी की है'। लेकिन आम जनता के विफरे हुए तेवर और अपनी मीटिंगों में बहुत थोड़े लोगों को देखकर उन्होंने सफ़ाई देने का रवैया अपनाया : "इसमें शक नहीं कि कभी-कभी ग़लतियाँ की गयी हैं और इसके लिए हमने उन अफ़सरों को मुअत्तिल कर दिया है जो इन ज़्यादतियों के लिए ज़िम्मेदार थे।"

एक ग़लती नहीं थी; ग़लतियों का एक पूरा सिलसिला था। अब उन पर से लोगों का भरोसा उठ चुका था। नौबत यहाँ तक पहुँच चुकी थी कि जब दिल का दौरा पड़ने से 11 फरवरी, 1977 को राष्ट्रपति फ़खरुद्दीन अली अहमद की मौत हो गयी, तो चारों तरफ़ यह अफ़वाह फैल गयी कि श्रीमती गांधी रात को दो बजे राष्ट्रपति भवन गयी थीं और उन्होंने राष्ट्रपति पर दबाव डाला था कि वह इस ऑर्डिनेंस पर दस्तखत कर दें कि मीसा के नज़रबन्दों को चुनाव लड़ने का अधिकार नहीं होगा और इसी वजह से उनको दिल का वह दौरा पड़ा था जिसने उनकी जान ले ली। मैंने इसके बारे में बेगम अहमद से पूछा तो उन्होंने बताया कि उस रात श्रीमती गांधी राष्ट्रपति भवन आयी ही नहीं थीं; प्रधानमंत्री की सुरक्षा के लिए तैनात सिक्योरिटीवालों ने भी यही कहा। लेकिन उस रात श्रीमती गांधी ने राष्ट्रपति अहमद को टेलीफोन ज़रूर किया था। श्रीमती गांधी ने भी किसी तरह के उकसावे के बिना ही इस बात से इंकार किया कि उनके और राष्ट्रपति के बीच कोई मतभेद थे।

उन पर से लोगों का भरोसा उठ जाना तो बुरी बात थी ही, लेकिन इससे भी बुरी बात यह थी कि लोगों के मन में यह बात बैठ गयी थी कि वह संजय को प्रधानमंत्री बनाना चाहती थीं। वह कहती तो यही थीं कि उसकी कोई 'राजनीतिक तमन्ना' नहीं है, लेकिन लोग कुछ और ही समझते थे। जब उन्होंने रायबरेली में अपनी सीट से मिली हुई अमेठी की सीट से संजय को कांग्रेस का उम्मीदवार बना दिया तो लोगों का यह शक और पक्का हो गया। इस तरह उनके खिलाफ़ 'डिक्टेटरशिप या जनतन्त्र' के नारे के साथ ही एक नारा और जुड़ गया : 'कुनबाशाही या जनतन्त्र'।

दरअसल, चुनाव की पूरी मुहिम के दौरान श्रीमती गांधी को निरंकुशता के आरोप का सामना करना पड़ा। पहले तो उन्होंने इस इलज़ाम को सुनकर भी अनसुना कर दिया, लेकिन जब इसी बात को बार-बार दोहराया जाने लगा तो उन्होंने कहा कि "कांग्रेस कभी भी एक आदमी के बल पर चलनेवाली पार्टी नहीं रही है।" उन्होंने कहा, "मैं अपने-आपको जनता की सबसे बड़ी सेविका के अलावा और कुछ भी नहीं समझती हूं।" लेकिन निरंकुशता का आरोप तो उन पर चिपक गया और विपक्ष लगातार इसी एक बात पर ज़ोर देता रहा। वह कहती थीं कि विपक्ष के पास सिर्फ़ एक-सूत्री कार्यक्रम है: मुझे हटाने का। यही बात उन्होंने 1971 के चुनाव के वक़्त भी कही थी और लोकसभा में दो-तिहाई बहुमत पा लिया था। लेकिन अब उनकी साख बिलकुल उठ चुकी थी और आर्थिक क्षेत्र में भी उनका कारनामा कुछ इससे बेहतर नहीं था।

कांग्रेस के 500 शब्द के मैनिफ़ेस्टो में, जिसे श्रीमती गांधी ने खुद जारी किया था, कहा गया था कि कांग्रेस की मंज़िल समाजवाद है और 'ग़रीबी, असमानता और सामाजिक अन्याय के ख़िलाफ़ वह अपनी लड़ाई' और तेज़ कर देगी।

जनता पार्टी के मैनिफ़ेस्टो में खास ज़ोर इस बात पर दिया गया था कि अर्थ-तन्त्र का ढाँचा नये सिरे से बनाने के लिए वह गांधीवादी सिद्धान्तों और नीतियों का सहारा लेगी ताकि ध्यान खेती-बाड़ी की प्रगति, बेरोज़गारी को दूर करने और राज-नीतिक तथा आर्थिक शक्ति के एक ही जगह सिमटने न देने पर केन्द्रित रहे। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के मैनिफ़ेस्टो में कहा गया था कि पार्टी आर्थिक विकास के लिए टिकाऊ परिस्थितियाँ पैदा करने के लिए जनतन्त्र की 'रक्षा करेगी और उसे बढ़ायेगी'। सी० एफ़० डी० ने कहा कि वह पब्लिक सेक्टर को 'सबसे ऊंचा स्थान' देने, और इजारेदार घरानों पर अंकुश लगाने, सभी ज़रूरी चीज़ें आम आदमी की पहुँच के अन्दर बँधी हुई और स्थिर क़ीमतों पर दिलाने का प्रबन्ध करने, उद्योगों की हर अवस्था के काम में मज़दूरों को उसमें पूरी तरह भाग लेने का अवसर देने और कम-से-कम समय में भूमि-सुधार लागू करने आदि के पक्ष में है।

लेकिन चुनाव की मीटिंगों में किसी भी मैनिफ़ेस्टो पर विचार ही कब हुआ। पार्टियाँ उनका हवाला भी कभी-कभार ही देती थीं। सिर्फ़ दो ही नारों की गूंज सुनायी देती थी। विपक्ष कहता था कि हमें दो रास्तों में से एक को चुनना है : 'डिक्टेटरशिप या जनतन्त्र'; कांग्रेस का भी नारा यही था कि 'जनतन्त्र या अराजकता'।

दोनों पक्ष एक-दूसरे पर जाती हमले भी करते थे। श्रीमती गांधी ने कहा कि विपक्ष "मुझे घेरकर मेरे छुरा भोंकना चाहता है।" मोरारजी ने जवाब दिया, "छुरा तो हमारे भी भोंका गया है।" जगजीवनराम ने कहा कि कांग्रेस में और सरकार में काम करने के जनतान्त्रिक ढंग में कतर-ब्योंत की गयी। चह्वाण ने जवाबी वार किया कि कुछ नेता ऐसे हैं जो आम लोगों के साथ क़दम-से-क़दम मिलाकर नहीं चल सकते हैं; ऐसे लोग इसी लायक़ हैं कि उनको नज़रअन्दाज़ कर दिया जाये।

आपस की इस तू-तू मैं-मैं के वातावरण में आर्थिक समस्याएँ, या सच पूछा जाये तो दूसरी सभी समस्याएँ पीछे ढकेल दी गयीं। चुनाव का प्रचार चाहे जिस ढंग का रहा हो, लेकिन ऐसा लगता था कि देश में पहली बार चुनाव हो रहे हैं। ज़्यादातर सीटों पर दो ही उम्मीदवारों की टक्कर थी—एक कांग्रेस का, दूसरा विपक्ष का। कांग्रेस ने 492 सीटों के लिए अपने उम्मीदवार खड़े किए थे और बाक़ी 50 सीटें अपने समर्थकों के लिए छोड़ दी थीं—केरल, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, और तमिलनाडु में अन्ना डी० एम० के०। जनता पार्टी ने 391 उम्मीदवार अपने खड़े किये थे और 147 सीटें सी० एफ़० डी०, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी, और पंजाब में अकाली दल तथा तमिलनाडु में डी० एम० के० के लिए छोड़ दी थीं।

1967 के चुनाव में कांग्रेस को 40.7 प्रतिशत वोट मिले थे और उसने 283 सीटें जीती थीं। 1971 में सिर्फ़ 3 प्रतिशत बढ़ जाने से, 43.6 प्रतिशत वोटों पर कांग्रेस को 350 सीटें मिल गयीं, लोकसभा में दो-तिहाई का बहुमत। इस बार विपक्ष को उम्मीद थी कि वह ये वोट अपनी तरफ़ खींच लायेगा और कांग्रेस को हरा देगा।

सबसे बड़ी बात यह थी कि इस बार कोई इन्दिरा लहर नहीं थी। सच तो यह है कि इस बार लहर उलटी ही थी। जून 1975 में इमर्जेंसी लागू होने के बाद जो दमनचक्र चलाया गया था उससे सरकार बदनाम हो गयी थी। गाँवों में लोग 'रोटी भी और आज़ादी भी' और 'आज़ादी से पहले रोटी' के बारीक अन्तर को भले ही न

समझते हों लेकिन जिस तरह से सरकार के कुछ कार्यक्रम, ख़ास तौर पर नसबन्दी का कार्यक्रम, चलाये गये थे उससे वह नाराज़ थी। देहातों में पुलिस ने डण्डे का इस्तेमाल ज़रूरत से ज़्यादा बार और ज़रूरत से ज़्यादा अन्धाधुन्ध तरीक़े से किया था।

गृह-मंत्रालय में जो ख़ुफ़िया रिपोर्टें आयी थीं उनमें कहा गया था कि पुलिस के छोटे अफ़सर गाँववालों को यह धमकी देकर उनसे पैसा ऐंठ रहे थे कि अगर वे पैसा नहीं देंगे तो उन्हें मीसा में पकड़ लिया जायेगा। सैकड़ों गाँवों के जिन रहनेवालों ने नसबन्दी करनेवालों से बचने के लिए कितनी ही रातें खेतों और जंगलों में काटी थीं, उन्होंने पकड़े जाने से बचने के लिए पुलिस को भी 'ख़रीद लिया' था।

श्रीमती गांधी ने दिल्ली में चुनाव-प्रचार की मुहिम शुरू करते वक़्त लोगों के मन से इस ग़लतफ़हमी को दूर कर देने की कोशिश की थी। उन्होंने यह बात मान ली थी कि उनकी सरकार ने नसबन्दी के कार्यक्रम को पूरा करने और लोगों को गन्दी बस्तियों से हटाकर नयी जगहों में ले जाकर बसा देने के सिलसिले में ग़लतियाँ की थीं। लेकिन इसके जवाब में लोग बड़े तिरस्कार के साथ हँस दिये और शोर मचाने लगे।

ऐसा लगता था कि अब उनकी बात का कोई मान नहीं रह गया है। यह सच है कि उन्होंने लगभग एक महीने तक एक-एक दिन में बीस-बीस मीटिंगों में भाषण दिये लेकिन असर बहुत कम हुआ।

मैं इलाहाबाद ज़िले के फूलपुर इलाक़े में उनके चुनाव-प्रचार की ख़बरें भेजने के लिए गया था। प्रधानमंत्री हेलिकोप्टर से आयीं। 1974 में उत्तर प्रदेश विधानसभा के चुनावों के दौरान इसी जगह उन्होंने जिस मीटिंग में भाषण दिया था उसके मुक़ाबले में इस बार सुननेवालों की भीड़ बहुत कम थी। ज़ाहिर है कि मीटिंग का बन्दोबस्त करनेवालों को इससे ज़्यादा लोगों के आने की उम्मीद थी क्योंकि उन्होंने वहाँ से 40 किलोमीटर दूर इलाहाबाद तक से और आस-पास के इलाक़ों से लोगों को मीटिंग में लाने के लिए बसों वग़ैरह का पूरा प्रबन्ध किया था। लेकिन मैदान के बहुत-से हिस्से, जिन्हें चारों ओर बल्लियाँ लगाकर घेर दिया गया था, ख़ाली पड़े थे और पन्द्रह मीटर ऊँचे मंच पर से जो नारे दिये जाते थे उनका जवाब भी बहुत कमज़ोर आवाज़ में मिलता था।

अपने पन्द्रह मिनट के भाषण में श्रीमती गांधी ने बीच-बीच में बहुत-सी निजी बातों का हवाला दिया। उन्होंने कहा, "नेहरू परिवार के हम लोगों का क़ुर्बानियों का इतिहास बहुत लम्बा है। मेरे दादा ने एक मकान बनवाया था, स्वराज्य भवन, जो मेरे बाप ने देश को भेंट कर दिया। फिर हम लोगों ने एक और मकान बनवाया, आनन्द भवन, जिसे मैंने जनता के नाम अर्पित कर दिया। हम लोगों को अपने लिए कुछ नहीं चाहिए। अगर कुछ लोग हमारा विरोध भी करें, तब भी हम देश की सेवा करते रहना चाहते हैं। हमारा परिवार आगे भी ऐसा ही करता रहेगा।"

श्रीमती गांधी ने जो एक और बात निजी ढंग से कही वह यह थी कि "ऐसे लोगों को संसद में भेजिये जो मेरा साथ दें, न कि मेरी पीठ में छुरा भोंकें।"

प्रधानमंत्री ने इस बात को एक बार फिर दोहराया कि उन पर डिक्टेटर होने का आरोप महज़ बैर निकालने के लिए लगाया जाता है। क्योंकि अगर मैं डिक्टेटर होती तो न ये चुनाव होते, और न विपक्ष के लोगों को वह सब-कुछ कहने का मौक़ा मिलता जो वे इन दिनों कह रहे हैं।

श्रीमती गांधी का भाषण ख़त्म हो जाने के बाद भी भीड़ तब तक वहीं रुकी रही जब तक कि उनका हेलिकोप्टर उड़ नहीं गया। देश के इस भाग में वह एक अजूबा

चीज़ थी।

इससे ज़्यादा लोग तो जनता पार्टी के या सी० एफ़० डी० के स्थानीय नेताओं का भाषण सुनने के लिए जमा हो जाते थे। लोग उन्हें सुनने के लिए घंटों आधी-आधी रात तक इन्तज़ार करते थे। अगर ये नेता देर से भी आते थे तो लोग बुरा नहीं मानते थे; दूसरी मीटिंगें चलती रहती थीं और मोटर से, रेल से आने-जाने में कहीं-न-कहीं देर हो ही जाती थी। विपक्ष का समर्थन करनेवाले रातों-रात न जाने कितने संगठन खड़े हो गये; वालंटियरों और चंदे के लिए जो अपीलें की गयीं उनका लोगों ने तुरन्त तन-मन-धन से जवाब दिया। कम-से-कम सिंधु गंगा के मैदान में तो जो वातावरण था उससे आज़ादी से पहले के दिनों की याद ताज़ा हो जाती थी। उन दिनों जो कुछ कांग्रेस कह देती थी उसे जोश के साथ पूरा किया जाता था; अब लोग जनता पार्टी की लल-कार पर कुछ भी करने को तैयार थे।

कम-से-कम उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान और मध्य प्रदेश में तो यह हाल था कि जनता पार्टी ने जिसे भी खड़ा कर दिया उसे जीता हुआ ही समझिये। मज़ाक में यहाँ तक कहा जाता था कि जनता पार्टी अगर खम्भे को भी खड़ा कर दे तो वह भी जीत जायेगा। उम्मीदवार के क्या गुण हैं, वह कितना लोकप्रिय है इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता था; असल सवाल यह होता था कि उम्मीदवार जनता पार्टी और उसके साथियों का है या नहीं।

जनता लहर जल्द ही ज़ोर पकड़ गयी। उन्नीस महीने के निरंकुश शासन पर आम लोगों में जो गुस्सा था उसकी वजह से उनका इरादा और पक्का हो गया था। सरकार के नेताओं ने कितनी ही बार इस बात को माना कि कुछ ग़लतियाँ हो गयी हैं फिर भी लोगों का गुस्सा शान्त नहीं हुआ। ऐसा लगता है कि चुनावों का ऐलान होने से पहले ही वे तय कर चुके थे कि वोट किसे देना है।

विपक्ष के नेताओं ने जनता को यह बताकर कि जेल में उन लोगों ने अलग-अलग और पूरे देश ने मिलकर इमर्जेंसी के दौरान क्या-क्या मुसीबतें झेली हैं, उनका गुस्सा और भड़का दिया। जबरी नसबन्दी, गन्दी बस्तियों की सफ़ाई और ज़ोर-ज़ुल्म की कितनी ही घटनाएं रोज़ सामने आने लगीं। जो अखबार आम तौर पर सरकार और इमर्जेंसी की तरफ़ से बोलने लगे थे, अब एक-दूसरे से होड़ लगाकर इमर्जेंसी के दौरान की भयानक घटनाओं को उछाल रहे थे। लोग इस बात का पक्का बन्दोबस्त कर देना चाहते थे कि 'वे भयानक दिन' फिर लौटकर न आने पायें और ऐसा कांग्रेस को हराकर ही किया जा सकता था।

खुफ़िया विभागवाले और सरकारी नौकर पहले विपक्ष से इसलिए कतराते थे कि वह कांग्रेस को हराकर उसकी जगह नहीं ले सकता था; लेकिन अब यही लोग सोलह आने कांग्रेस के खिलाफ़ हो गये। इस दलील में कोई दम नहीं रह गया था कि विपक्ष एक पँचमेल जमघट है। शासक पार्टी ने जो 'स्थायित्व' दिया था उसके मुक़ाबले में वे अस्थायित्व को भी पसन्द करने को तैयार थे। इस घुटन में और आज़ादी न रह जाने पर केवल मशीनी आदमी ही पैदा हो सकते थे। और वे मशीनें बनने को तैयार नहीं थे।

सचमुच, कांग्रेस का बहुत बुरा हाल था। 'महल' से मुख्यमंत्रियों को सन्देश भेजा गया कि वे आम जनता को अपनी ओर लाने के लिए तरह-तरह की रिआयतों का ऐलान करें। मुख्यमंत्री तो तिजोरियों का मुंह खोले ही बैठे थे; ज्यादातर राज्य यों भी रिज़र्व बैंक से कर्ज़ लेकर अपना काम चला रहे थे। राज्यों की सरकारों ने तरह-तरह से 2 अरब 50 करोड़ रुपया बाँट दिया—लगान और खेती की आमदनी पर इनकम-

टैक्स कम कर दिया गया, सिंचाई-कर घटा दिया गया, बिजली की दर में कटौती हुई, मकान के किराये में छूट दी गयी, और महँगाई-भत्ता और किराया बढ़ा दिया गया, दवा-दारू की बेहतर सुविधाएँ दी गयीं।

लगता है कि इन रिग्रायतों का कोई असर नहीं हुआ। खुफ़िया रिपोर्टों से पता चलता था कि विपक्ष के हाथ में इमर्जेंसी सबसे बड़ा तुरुप का पत्ता था। चुनाव से कुछ दिन पहले श्रीमती गांधी ने इस बात पर विचार करने के लिए कैबिनेट की मीटिंग की कि अगर इमर्जेंसी उठा ली जाये तो उससे क्या फ़ायदा होगा और क्या नुकसान। आम राय इसके खिलाफ़ थी। उसे हटाने का मतलब विपक्ष की जीत भी समझी जा सकती थी। बहरहाल, कई लोगों की राय थी अगर उसे उठा भी लिया जाये तो अब इस क़दम का फ़ायदा उठाने के लिए समय ही कहाँ रह गया था।

लोगों को सिर्फ़ इमर्जेंसी से नफ़रत रही हो, ऐसी बात नहीं थी; इससे भी ज्यादा नफ़रत उन्हें संजय से थी, बंसीलाल से थी और कई मामलों में खुद श्रीमती गांधी से थी। वह निराश तो बहुत थीं पर अभी हार मानने को तैयार नहीं थीं।

ज्यादातर लोग यह समझते थे, और अखबारवाले उनसे अलग नहीं थे, कि चुनाव में बहुत काँटे की टक्कर रहेगी, श्रीमती गांधी का पलड़ा विपक्ष के मुकाबले में कुछ भारी रहेगा। यह बात तो कोई सोच भी मुश्किल से ही सकता था कि नेहरू की बेटी, या कांग्रेस हार जायेगी, जिसके हाथ में आज़ादी के बाद से सत्ता की बागडोर रही थी।

पश्चिमी देशों में यही आम राय थी। स्कैंडीनेविया के छोटे-छोटे देशों को तो अब भी उम्मीद थी कि भारत की जनता एक बार फिर जनतन्त्र में अपनी आस्था का सबूत देगी, लेकिन बड़े-बड़े देश श्रीमती गांधी के पक्ष में थे। एक वक़्त ऐसा था जब पश्चिमी जर्मनी ने भारत को चेतावनी दी थी कि अगर एक भी जर्मन संवाददाता नई दिल्ली से निकाला गया तो भारत को मदद देना बन्द कर दिया जायेगा। अब पश्चिमी जर्मनी का रवैया दूसरा ही था; नई दिल्ली में उसके राजदूत को पूरा यक़ीन था कि भारत के लिए श्रीमती गांधी से अच्छा नेता कोई दूसरा हो नहीं सकता। आपस की बातचीत में वह दलील यह देते थे कि अगर सभी पश्चिमी देश श्रीमती गांधी के खिलाफ़ हो जायेंगे तो वह सोवियत संघ की तरफ़ चली जायेंगी।

श्रीमती गांधी ने जिस दिन से अमरीकी राजदूत विलियम सैक्सबी के निजी डिनर में आने का निमन्त्रण स्वीकार किया था उस दिन से वह पूरी तरह से उनके पक्ष में हो गये थे। उन्होंने अपनी सरकार को बताया कि भारत को घोर उथल-पुथल के रास्ते पर जाने से अगर कोई रोके हुए है तो वह श्रीमती गांधी ही हैं। अमरीकी राजदूत की संजय से भी बड़ी दोस्ती थी, जो व्यापार और कारोबार की खुली छूट के पक्ष में था। मारुति और अमरीकी कम्पनी इंटरनेशनल हार्वेस्टर के बीच सहयोग की बात सैक्सबी ने ही पक्की करायी थी।

बड़े देशों में सोवियत संघ ही अकेला ऐसा देश था जिसे श्रीमती गांधी के जीतने की बहुत उम्मीद नहीं थी। रूसी अफ़सरों ने मास्को में भारत के दूतावास को बताया था कि हवा का रुख़ उनके पक्ष में नहीं मालूम होता। उन लोगों को इस बात से बड़ी चिन्ता थी।

चुनाव के पूरे प्रचार के दौरान कोई खास घटना नहीं हुई। बस एक दिन 'समाचार' ने आधी रात के बहुत बाद, जब अख़बारवाले ख़बर के बारे में कोई छान-बीन भी नहीं कर सकते थे, यह ख़बर दी कि संजय पर उसके मतदान-क्षेत्र अमेठी में गोली चलायी गयी पर उसे चोट नहीं आयी। जयप्रकाश समेत सभी नेताओं ने इस घटना की निन्दा की हालांकि उनमें से कुछ को यह शक ज़रूर था कि कहीं यह वोटरों

की हमदर्दी हासिल करने का हथकंडा तो नहीं है।

श्रीमती गांधी 18 मार्च को लौटकर नई दिल्ली आयीं। उस वक़्त तक ज़्यादातर जगह वोट पड़ चुके थे। आसार अच्छे नहीं दिखायी दे रहे थे। उनके घर पर दो मीटिंगें हुईं—एक 18 को और दूसरी 19 को। इनमें संजय, धवन, बंसीलाल और ओम मेहता मौजूद थे। बड़े अफ़सरों में गृह-मंत्रालय के सेक्रेटरी और दिल्ली के इंस्पेक्टर-जनरल पुलिस मौजूद थे। इन लोगों को बताया गया कि प्रधानमंत्री की कोठी की 'हर क़ीमत पर हिफ़ाजत' करनी होगी।

उनको यह भी हिदायत दी गयी कि कोठी की रक्षा करने के लिए उधर से गुज़रनेवाली सारी सड़कों की नाकेबन्दी कर देनी होगी और ज़रूरत पड़ने पर 'कार्रवाई करने और हिफ़ाजत करने' के लिए बॉर्डर सिक्योरिटी फ़ोर्स के जवान तैनात रहेंगे। 'रॉ' के पास इस्तेमाल के लिए जो ए० एन० 12 रूसी हवाई जहाज़ थे उन पर अलग-अलग केन्द्रों से दस बटालियन (6,000 सिपाही) पहले ही लाये जा चुके थे।

इंस्पेक्टर-जनरल पुलिस ने फिर अपने यहाँ के अफ़सरों को इस हुक्म के बारे में बताने के लिए उनकी एक मीटिंग की। एक डी० आई० जी० ने पूछा कि 'हर क़ीमत पर हिफ़ाजत करने' का क्या मतलब है ? आई० जी० ने कहा कि इसका सीधा-सादा मतलब है 'हर क़ीमत पर', ज़रूरत पड़ी तो लोगों को गोली से उड़ा भी देना होगा। डी० आई० जी० ने अपना यह डर उनसे ज़ाहिर किया कि उन्हें इस बात का यक़ीन नहीं था कि अगर ऐसी ज़रूरत पड़ ही गयी तो उनके आदमी जनता पर गोली चलायेंगे।

यह अफ़वाह भी ज़ोरों पर थी कि श्रीमती गांधी यह भी सोच रही थीं कि अगर चुनाव में फ़ैसला उनके ख़िलाफ़ हुआ तो वह मार्शल लॉ लागू कर देंगी—पहले बॉर्डर सिक्योरिटी फ़ोर्स की मदद से और फिर तीनों सेनाओं के प्रधान सेनापतियों की मदद से। क़ानून मंत्रालय ने कहा था कि फ़ौज को बुलाये बिना भी मार्शल लॉ लागू किया जा सकता है। इस बात का कभी पक्का पता नहीं लग सका और शायद पक्का पता लगना मुमकिन भी नहीं था।

लेकिन यह सच है कि मार्च के शुरू में दिल्ली में सेना के कमांडरों और नौ-सेना के सबसे ऊँचे अफ़सरों की कान्फ्रेंसें हुई थीं। फ़ौज के ख़ुफ़िया विभाग के सबसे बड़े अफ़सर मन्ने सिन्हा को हटाकर उनकी जगह टी० एन० कौल के भाई हृदयनारायण कौल को तैनात कर दिया गया था।

रौटरी क्लब की एक मीटिंग में थल-सेना के प्रधान सेनापति जनरल टी० एन० रैना ने जब यह बात कही[1] कि सेना का राजनीति से कोई मतलब नहीं है तो इस

1. अमरीकी पत्रिका 'नेशन' ने अपने मई के अंक में लिखा था कि 5 और 7 मार्च के बीच गोखले ने अपने मंत्रालय में चुनावों को टलवा देने के लिए संविधान का सहारा लेने का कोई क़ानूनी पैंतरा ढूंढ निकालने के सिलसिले में काफ़ी 'सर खपाया था'। 'नेशन' के अनुसार लगभग इसी समय श्रीमती गांधी कुछ मतदान-क्षेत्रों में फ़ौज तैनात कर देने के बारे में रैना के विचार मालूम करने की कोशिश कर रही थीं, इस बुनियाद पर कि उन इलाक़ों में सार्वजनिक सुव्यवस्था बनाये रखने के लिए यह ज़रूरी था। कहा जाता है कि रैना ने ऐसा करने से इंकार कर दिया था। इस पर उन्हें कैबिनेट की ओर से हुक्म दिया गया कि उनसे जैसा कहा गया है उसके मुताबिक़ अपनी फ़ौजें तैनात कर दें। रैना ने इस हुक्म को पूरा करने का दिखावा तो किया लेकिन उन्होंने जो कुछ किया उससे श्रीमती गांधी का काम नहीं बना।

मैंने 27 मई को गोखले से पूछा कि चुनाव टलवाने के लिए 'सर खपाने' वाली बात कहाँ तक सच है। उन्होंने कहा, "इसमें कोई सच्चाई नहीं है।"

अफ़वाह पर लोगों को और ज़्यादा यक़ीन हो गया कि श्रीमती गांधी ने उनसे कहा था कि वह 'उन्हें शासन करने में मदद दें' लेकिन उन्होंने इंकार कर दिया था।

श्रीमती गांधी को चिन्ता इस बात की नहीं थी कि चुनाव के नतीजे निकलने के बाद कोई दंगा या उपद्रव भड़क उठेगा। न उन्हें इस बात का डर था कि अगर कांग्रेस हार गयी तो लोग उनकी कोठी के सामने जुलूस लाकर नारे लगायेंगे। उनके दिमाग़ में कुछ और ही बात थी।

वह समझती थीं कि उन्हें 542 में से 200 से 220 तक सीटें मिल जायेंगी और उन्हें उम्मीद थी कि कुछ लोगों को वह खरीद लेंगी। वह समझती थीं कि कार्यवाहक राष्ट्रपति बी० डी० जत्ती की मदद से, जो खुलेआम श्रीमती गांधी का राजनीतिक आभार मानते थे, वह सरकार बना लेंगी। शासन की बागडोर उन्हीं के हाथों में रहनी होगी और अगर सरकार बनाने की उनकी योजना का विरोध किया गया तो शायद ताक़त का सहारा लेना ज़रूरी हो जाये।

उनकी योजनाएँ कुछ भी रही हों पर जब उत्तर प्रदेश में रायबरेली के मतदान-क्षेत्र से, जो इससे पहले के सभी चुनावों में उनका गढ़ रहा था, उनके पुराने प्रतिद्वन्द्वी राजनारायण ने उन्हें हरा दिया तो सारी योजनाओं पर पानी फिर गया।

जब यह ख़बर और संजय के हारने की ख़बर अख़बारों के दफ़्तरों के बाहर मोटे-मोटे अक्षरों में लगायी गयी तो हज़ारों लोग, जिनमें औरतें भी शामिल थीं, ढोलकों की ताल पर नाच उठे। एक जगह एक दर्शक जो भी उधर से गुज़रता था उसे तन्दूरी मुर्ग़ खिला रहा था। एक ज़माना था कि यही औरत अपने गौरव के शिखर पर थी और आज 'अनपढ़' जनता ने उसे नीचा दिखा दिया था।

श्रीमती गांधी के चले जाने से एक युग का अन्त हो गया, जो न तो पूरी तरह स्वर्ण-युग था न पूरी तरह अंधकार-युग था।

देश को धर्म-निरपेक्ष बनाये रखने और एकता के सूत्र में बाँधे रखने के सिल-सिले में उनकी कोशिशें कोई मामूली योगदान नहीं थीं। उन्होंने पाखंड के ख़िलाफ़ और लकीर के फ़कीर बने रहने के ख़िलाफ़ साहस का परिचय दिया, और राजनीतिक मामलों में भी उन्होंने वह रास्ता अपनाया जिस पर चलने पर ज़्यादातर दूसरे लोग घबराते।

लेकिन अच्छे कामों या उन्हें पूरा करने के लिए इस्तेमाल किये जानेवाले तरीक़ों की कमी को साहस से नहीं पूरा किया जा सकता था। ग्यारह साल तक प्रधानमंत्री के पद का भार सँभालने के दौरान यही श्रीमती गांधी की सबसे बड़ी ताक़त भी थी और उनकी सबसे बड़ी कमज़ोरी भी। उनके लिए तरीक़ों की कोई अहमियत नहीं थी, नतीजों की अहमियत थी।

चाहे वह 1969 में कांग्रेस के दो टुकड़े कर देने का सवाल रहा हो या जून 1975 में देश में भीतरी इमर्जेंसी लागू करने का, इन बातों ने साबित कर दिया था कि वह अपनी जीत के लिए कोई भी हथियार इस्तेमाल करने को तैयार थीं। उन्हें बस कामयाबी हासिल करने से मतलब था, इस बात से नहीं कि वह कैसे हासिल की जाये।

यह सच है कि वह ऐसे कार्यक्रम में विश्वास रखती थीं जिसमें बीच के रास्ते में कुछ वामपंथ की ओर झुकाव हो, लेकिन विचारधारा उनके लिए बुनियादी तौर पर किसी लक्ष्य को प्राप्त करने का एक साधन-मात्र था। 1969 में उन्होंने बैंकों का कारोबार सरकार के हाथ में ले लेने का जो क़दम उठाया था वह एक सराहनीय क़दम था, लेकिन बुनियादी तौर पर वह मोरारजी को एक रेले में हटा देने के लिए उठाया गया था। विचारधारा की वजह से उन पर प्रगतिशील होने की छाप लग जाती थी

और आम जनता इसको अच्छा समझती थी। जितने दिन उन्होंने शासन किया उसके दौरान 16 करोड़ और लोग दरिद्रता की सीमा से भी नीचे पहुँच गये और इस तरह हमारे देश की 68 प्रतिशत आबादी दरिद्रता के रसातल में पहुँच गयी थी।

और जैसे-जैसे दिन बीतते गये, उनको यह विश्वास होता गया कि देश के लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा यह वही जानती हैं, केवल वही। इससे उनके मन में यह भावना जगी कि उनके बिना देश का काम नहीं चल सकता और उन्होंने अपना एक बहुत ताक़तवर सेक्रेटेरियट बनाया जो सरकार के हर विभाग पर अपना शिकंजा कसे रखता था; उन्होंने जासूसों का एक जाल फैलाया जो उनके असली और फ़र्जी दोनों ही तरह के विरोधियों पर कड़ी नज़र रखता था।

इस तरह उन्हें कोई सलाह देनेवाला नहीं रह गया, क्योंकि जो भी जानकारी उनके पास तक पहुँचायी जाती थी वह इस तरह काट-छाँटकर तैयार की जाती थी कि उनके मन में यह बात और अच्छी तरह बैठ जाये कि उनके बिना काम नहीं चल सकता। अगर कोई उनके सामने दूसरा दृष्टिकोण रखता तो वह अपने मन को यह कहकर बहला लेतीं कि वह उनकी गद्दी छीनना चाहता है।

कैबिनेट की मीटिंगों में वह ऐसा बरताव करती थीं जैसे स्कूल में बच्चों को पढ़ा रही हों। ज़्यादातर मंत्री उनकी नाराज़गी के डर से उनके सामने ज़बान भी नहीं खोलते थे। वही सरकार थीं। और इसके बारे में उन्होंने किसी के मन में किसी तरह का शक बाक़ी नहीं रहने दिया।

उन्हें इस बात का कोई डर नहीं था कि इस तरह सारी ताक़त एक जगह समेट लेने से उन पर डिक्टेटर बनने का इलज़ाम लगाया जा सकता है। वह बस इतना जानती थीं कि ताक़त उनके हाथ में है और वह उसे इस्तेमाल करने के लिए तैयार थीं। उनकी नज़रों में विपक्ष का एक ही इस्तेमाल था कि उसे कुर्बानी का बकरा बना दिया जाये—उनकी सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों में जो भी गड़बड़ी हो वह उसके मत्थे मढ़ दी जाये। वह हर क्षेत्र को पूरी तरह अपनी मुट्ठी में रखना चाहती थीं, चाहे खुलेआम चाहे ढके-छिपे ढंग से।

हर काम के लिए वह किसी ऐसे आदमी को चुन लेती थीं जो उस काम को पूरा करने के सारे दाँव-पेंच जानता हो। लेकिन काम बन जाने पर उसे दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक दिया जाता था। उनका कोई बँधा हुआ सलाहकार नहीं था। वह किसी पर भरोसा ही नहीं करती थीं।

ऐसे माहौल में वही आदमी पनप सकता था जिसे इस बात से कोई मतलब न हो कि क्या अच्छा है क्या बुरा, क्या सही है या ग़लत, जैसे बंसीलाल, या फिर वह जिस पर उन्हें सबसे ज़्यादा भरोसा हो जैसे उनका बेटा संजय। ये लोग कोई ग़लती नहीं कर सकते थे क्योंकि यही वे लोग थे जिन पर उन्हें भरोसा था। बड़े दुख की बात थी कि ऐसे साहसी व्यक्ति को ऐसी फटीचर बैसाखियों का सहारा लेना पड़ा। लेकिन श्रीमती गांधी को पूरा भरोसा था कि वह जब भी चाहेंगी उनसे छुटकारा पा लेंगी। दुर्भाग्य से ऐसा हो नहीं पाया।

और जब उन्होंने चुनाव कराने का आदेश दिया, जो उनकी तबाही का कारण बन गये, उस वक़्त उन्होंने सोचा कि इन बातों को उनसे बेहतर कोई नहीं जानता है, न उनका बेटा, न बंसीलाल; ये दोनों ही चाहते थे कि चुनाव आने वाले कई बरसों के लिए टाल दिये जायें। उनको ऐसा लगता था कि वह जीत जायेंगी और सबको दिखा देंगी कि वह कुछ भी करें पर जनता उनके साथ है। इससे एक बार फिर यह साबित हो जायेगा कि जनता के साथ उनका सम्पर्क अभी टूटा नहीं है और यह कि उनमें

अभी तक साहस बाक़ी है।

वह यह नहीं समझ पायीं कि इतने दिन से सबसे अलग रहते-रहते जनता के साथ उनका सम्पर्क टूट चुका है! उन्हें एक सन्तोष तो मिल ही सकता था—जो लोग उनकी तुलना हिटलर और मुसोलिनी से करते हैं वे ग़लत साबित हो जायेंगे। हिटलर और मुसोलिनी ने कभी स्वतन्त्र चुनाव नहीं कराये थे, उन्होंने कम-से-कम यह तो किया।

श्रीमती गांधी को कभी यह डर नहीं था कि वह हार जायेंगी। जिस तरह रायबरेली के रिटर्निंग अफ़सर विनोद मल्होत्रा पर दबाव डाला गया—दो बार ओम मेहता ने और तीन बार धवन ने दिल्ली से टेलीफोन किया—कि वह दुबारा वोट डलवाने का या कम-से-कम दुबारा वोट गिनवाने का आदेश दे दें, उससे यह तो पता चलता ही है कि वह कम-से-कम यह तो चाहती ही थीं कि उनके हारने की ख़बर का ऐलान जितनी देर में हो सके किया जाये। शायद वह सोचती थीं कि अगर कांग्रेस को काफ़ी सीटें मिल गयीं तो वह बाद में किसी उप-चुनाव में जीतकर आ जायेंगी।

लेकिन उत्तरी भारत के सभी राज्यों ने कांग्रेस का पत्ता बिलकुल ही साफ़ कर दिया। उन्होंने अपनी ताक़त के बल पर अपनी निजी आज़ादी और उन्नीस महीनों में जो कुछ भी खोया वह सब फिर से वापस ले लिया। उनका विद्रोह सिर्फ़ जबरी नसबन्दी के खिलाफ़ नहीं था, बल्कि उस पूरी व्यवस्था के ख़िलाफ़ था जिसमें उनके लिए कोई रास्ता ही नहीं छोड़ा गया था कि अगर उनके साथ कोई अन्याय हो तो वे उसके खिलाफ़ कोई फ़रियाद भी कर सकें—पुलिस उनकी रिपोर्ट दर्ज करने से इंकार करती थी, अख़बार उनकी शिकायतें नहीं छापते थे, अदालतें उनकी अर्ज़ियों की सुनवाई नहीं करती थीं और डर के मारे पड़ोसी तक उनकी मदद को नहीं आते थे।

कांग्रेस की सचमुच बहुत करारी हार हुई थी। वह जैसे-तैसे करके सिर्फ़ 153 सीटें जीत सकी जबकि 1971 के चुनाव में उसने 350 सीटें जीती थीं। जनता पार्टी और उसके साथी सी० एफ़० डी० ने मिलकर 299 सीटें जीतीं। उत्तर प्रदेश की 84, बिहार की 54, पंजाब की 13, हरियाणा की 11 और दिल्ली की 7 सीटों में से कांग्रेस एक भी सीट नहीं जीत पायी। वह मध्य प्रदेश में 1, राजस्थान में 1, पश्चिम बंगाल में 3, उड़ीसा में 4 और असम तथा गुजरात में 10-10 सीटें ही जीत पायी।

अलग-अलग राज्यों में उसे जितने प्रतिशत वोट मिले उसका ब्यौरा इस प्रकार है (ब्रैकेट में 1971 का प्रतिशत दिया गया है) : पश्चिम बंगाल 29.39 (28.23), उत्तर प्रदेश 25.04 (48.56), तमिलनाडु 22.28 (12.51), राजस्थान 30.56 (45.96), पंजाब 35.87 (45.96), उड़ीसा 38.18 (38.46), मणिपुर 45.71 (30.02), महाराष्ट्र 46.93 (63.18), मध्य प्रदेश 32.5 (45.6), केरल 29.12 (19.75), कर्नाटक 56.74 (70.87), हिमाचल प्रदेश 38.3 (75.79), हरियाणा 17.95 (52.56), गुजरात 46.92 (44.85), बिहार 22.90 (40 06), असम 50.56 (56 98) और आन्ध्र प्रदेश 57.36 (55.73)।

उत्तर में तो जनता पार्टी ने पूरा सफ़ाया कर दिया, लेकिन दक्षिण में उसका बुरा हाल रहा। बस आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक में उसे एक-एक और तमिलनाडु में दो सीटें मिलीं। ज़ाहिर है कि जनता लहर विन्ध्याचल पर्वत को पार नहीं कर पायी थी। यह भी ज़ाहिर था कि दक्षिण भारत में ज्यादतियाँ भी कम हुई थीं और यातनाओं की कहानियाँ अभी सामने नहीं आयी थीं।

जनता पार्टी और सी० एफ़० डी० की इतनी शानदार जीत पर, जो जनतन्त्र और आज़ादी के नारे पर चुनाव लड़ी थीं, भारत के बुद्धिजीवियों और पश्चिमी देशों

के लोगों को बहुत ताज्जुब हुआ—दोनों ही का जनता से कोई सम्पर्क नहीं था। वे इतनी-सी बात नहीं समझते थे कि ग़रीब को भी अपनी आज़ादी से उतना ही प्यार होता है जितना किसी और को। हो सकता है कि उनके रवैये में बहुत बारीकियाँ न रही हों, या वह किसी ख़ास विचारधारा की कसौटी पर खरा न उतरता हो, लेकिन जिस चीज़ को वे जनतन्त्र समझते थे उस पर उनकी आस्था अडिग थी। एक वोट से उनके हाथ में यह ताक़त आ गयी थी कि वे अपनी पसन्द के आदमी को चुनें और उन्होंने इस ताक़त को यह साबित करने के लिए इस्तेमाल किया कि असली मालिक वही हैं। श्रीमती गांधी और उनकी पार्टी ने यही अधिकार उनसे छीन लिया था। इस मनमानी के ख़िलाफ़ यही उनका फ़ैसला था।

उन दिनों एक मज़ाक आम था कि जहाँ-जहाँ संजय गया वहाँ-वहाँ कांग्रेस की हार हुई। लेकिन श्रीमती गांधी ऐसा नहीं समझती थीं। एक अख़बार को दिये गये इंटरव्यू के दौरान उन्होंने कहा कि चुनाव में कांग्रेस की हार का दोष संजय के मत्थे मढ़ देना बातों को बहुत सतही ढंग से देखना है। उन्होंने कहा कि संजय का पाँच-सूत्री कार्यक्रम सरकार का कार्यक्रम था, और नेहरू के ज़माने में 1950 के बाद के वर्षों से चला आ रहा था।

उन्होंने 22 मार्च को कांग्रेस वर्किंग कमेटी की मीटिंग में भी संजय की तरफ़ से सफ़ाई पेश की। पहले तो वह इस मीटिंग में आयीं नहीं; वह यह जानना चाहती थीं कि लोगों को अब भी उनकी ज़रूरत है या नहीं। बाद में उन्होंने इस बात का मौक़ा दिया कि उन्हें मीटिंग में जाने के लिए 'समझा-बुझाकर राज़ी कर लिया जाये।' जब सिद्धार्थशंकर रे ने बंसीलाल को छः साल के लिए कांग्रेस से निकाल देने और संजय की चांडाल चौकड़ी के दूसरे लोगों के ख़िलाफ़ कड़ी कार्रवाई करने की माँग की तो वह चीखकर बोलीं : "मुझे निकाल दो! मुझे निकाल दो!"

श्रीमती गांधी बिना किसी ख़तरे के इस तरह की बात कह सकती थीं। वह जानती थीं कि 5 राजेन्द्रप्रसाद रोड पर उनके चारों ओर जो लोग बैठे हुए थे वे उनके ख़िलाफ़ कुछ भी नहीं कर सकते थे। इन लोगों में कोई हिम्मत नहीं थी, कोई दम नहीं था। ग्यारह साल तक वे चूँ भी किये बिना उनका हुक्म बजाते आये थे और उनके गुण गाते रहे थे। फिर इसमें ताज्जुब ही क्या है कि कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने एक बार फिर उनके नेतृत्व के बारे में अपना विश्वास प्रकट करके विस्तार के साथ बहस करने का काम 12 अप्रैल के लिए टाल दिया। इस तरह श्रीमती गांधी को अपना ख़ास मक़सद पूरा करने के लिए—पार्टी पर अपना कब्ज़ा बनाये रखने और जिन लोगों ने उनका साथ दिया था उन्हें बचाने के लिए—अगली चाल सोचने का मौक़ा मिल गया।

इसके बाद अगले कुछ हफ़्तों तक पार्टी पर कब्ज़ा करने के लिए जबर्दस्त खींचातानी चलती रही; एक तरफ़ श्रीमती गांधी और उनके लोग थे और दूसरी ओर थे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की ओर झुकाव रखनेवाले उनके आलोचकों[1] के साथ देवकान्त बरुआ, चह्वाण और उनके साथी दम साधे दूर से तमाशा देखते रहे, जैसा कि संकट के समय ये लोग हमेशा से करते आये थे। ये लोग इस बात का इन्तज़ार कर रहे थे कि देखें आख़िर में नतीजा क्या होता है, और बीच-बीच में जब कभी ऐसा

1. जब भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की तरफ़ झुकाव रखनेवाली भूतपूर्व संसद-सदस्या श्रीमती सुभद्रा जोशी श्रीमती गांधी से मिलने गयीं तो वह बड़ी रुखाई से मिलीं। श्रीमती गांधी ने कहा कि उनके 'दग़ाबाज़ दोस्तों' ने उन्हें धोखा दिया था।

लगता था कि हालत और बिगड़ जायेगी और पार्टी में फूट पड़ जाने का खतरा है तो ये लोग भी थोड़ा-सा सहारा दे देते थे।

श्रीमती गांधी और उनके साथियों पर जो हमला हो रहा था उसका रुख़ दूसरी तरफ़ मोड़ने के लिए उनके समर्थक बरुआ के इस्तीफ़े की माँग करने लगे। उनके खिलाफ़ इल्ज़ाम यह था कि उन्होंने पार्टी को लोकसभा का चुनाव लड़ने के लिए ठीक से तैयार नहीं किया था। इसकी काट करने के लिए चन्द्रजीत यादव के घर पर संसद के हारे हुए सदस्य और राज्यों के कुछ विधायक जमा हुए और उन्होंने संजय, बंसीलाल, विद्याचरण शुक्ला और ओम मेहता को निकाले जाने की माँग की।

चालों और जवाबी चालों के इस माहौल में सिद्धार्थशंकर रे, चन्द्रजीत यादव और उनके दोस्तों ने बरुआ को कांग्रेस की वर्किंग कमेटी और पार्लियामेंटरी बोर्ड से बंसीलाल का इस्तीफ़ा माँगने पर राज़ी कर लिया। इस पर श्रीमती गांधी आगबबूला हो गयीं और उन्होंने यह बात जाहिर कर दी कि वह इस बात को क़तई बर्दाश्त नहीं करेंगी कि जो लोग उनके क़रीब थे उनमें से किसी एक को अलग करके पार्टी की हार के लिए ज़िम्मेदार ठहराया जाय। उनके ग्रुप ने बरुआ के इस्तीफ़े की माँग तेज़ करके जवाबी वार किया। उन्होंने यह भी माँग की कि कांग्रेस वर्किंग कमेटी की मीटिंग कुछ दिन के लिए टाल दी जाये और ए० आई० सी० सी० की मीटिंग की जाये जिसमें बरुआ की जगह नया अध्यक्ष चुना जाये। संकट गहरा होता गया। पार्टी फूट के रास्ते पर आगे बढ़ती जा रही थी।

एक दिन शाम को श्रीमती गांधी के घर पर एक मीटिंग हुई जिसमें उन्होंने अपने बटुए में से बंसीलाल के इस्तीफ़े का ख़त निकालकर बरुआ को नहीं बल्कि चह्वाण को दे दिया। लेकिन इससे पहले उन्होंने सबसे इस बात पर हामी भरवा ली थी कि पूरी वर्किंग कमेटी एक साथ इस्तीफ़ा देगी और सभी लोग पार्टी की हार के लिए बराबर के ज़िम्मेदार होंगे।

यह पार्टी पर फिर से कब्ज़ा करने की चाल थी। सबसे पहले चन्द्रजीत यादव ने कहा कि सब लोगों के साथ इस्तीफ़ा देने के सुझाव से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। वायलार रवि ने भी बरुआ को पत्र लिखकर अपने दस्तखत वापस ले लिये और कहा कि यह चाल इसलिए चली गयी है कि वर्किंग कमेटी चुनाव के नतीजों के बारे में छान-बीन न कर सके। सिद्धार्थ बाबू ने भी कलकत्ते से कहलवा भेजा कि सब लोगों के एक साथ इस्तीफ़ा देने की बात में अब दम नहीं रह गया है। बरुआ ने कहा कि केरल प्रदेश कांग्रेस कमेटी के प्रेसीडेंट ऐंथनी ने भी त्रिवेन्द्रम से टेलीफोन करके उनसे कहा था कि वर्किंग कमेटी चुनाव में हार की वजहों का पता लगाने की अपनी ज़िम्मेदारी से कैसे कतरा सकती है। बरुआ ने अख़बारवालों को अपने घर पर बुलाकर यह ऐलान कर दिया कि इस बीच में जो कुछ हुआ है उसे देखते हुए उन्होंने इस पूरे सवाल पर 'बिलकुल नये सिरे से विचार' किया है। उन्होंने कहा कि पार्टी की करारी हार की छानबीन करने के लिए वर्किंग कमेटी की मीटिंग पहले बतायी गयी तारीखों को ही होगी।

श्रीमती गांधी ने धमकी दी कि वह वर्किंग कमेटी की मीटिंग में नहीं आयेंगी और इस तरह एक बार फिर पार्टी के टूट जाने का ख़तरा पैदा हो गया। इसी बीच बरुआ ने मुख्यमंत्रियों और प्रदेश कांग्रेस कमेटियों के अध्यक्षों को भी बातचीत में हिस्सा लेने का बुलावा देकर वर्किंग कमेटी का दायरा और बढ़ा लिया। वर्किंग कमेटी की मीटिंग से एक दिन पहले श्रीमती गांधी ने एक और बड़ी चालाकी की चाल चली। उन्होंने कांग्रेस के अध्यक्ष और वर्किंग कमेटी के दूसरे मेम्बरों को एक पत्र लिखकर

चुनाव में पार्टी की हार की सारी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ओढ़ ली।

अपने इस खत में उन्होंने लिखा था : "सरकार के नेता की हैसियत से मैं बिना किसी संकोच के इस हार की पूरी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेती हूँ। मुझे अपने लिए बहाने या बच निकलने के रास्ते ढूँढने में कोई दिलचस्पी नहीं है। मुझे न किसी चांडाल चौकड़ी की तरफ़ से सफ़ाई पेश करनी है और न ही किसी ग्रुप के खिलाफ़ लड़ना है। मैंने कभी किसी ग्रुप के नेता की हैसियत से काम नहीं किया है।

वर्किंग कमेटी की मीटिंग 12 अप्रैल को हुई। चूँकि सारे मुख्यमंत्री और प्रदेश कांग्रेस कमेटियों के अध्यक्ष भी वहाँ मौजूद थे इसलिए वह मीटिंग सिर्फ़ पिटे हुए मोहरों का एक बहुत बड़ा जमाव था जिन्हें यह मालूम करने के लिए बुलाया गया था कि आखिर गड़बड़ी कहाँ हुई। लेकिन श्रीमती गांधी का कहीं पता नहीं था।

बिहार के उनके एक चमचे सीताराम केसरी ने पूछा, "उनके बिना मीटिंग कैसे हो सकती है?" दूसरे लोगों ने भी इसी तरह के सुझाव दिये। कुछ और लोगों ने कहा, "आइये, हम सब लोग 1 सफ़दरजंग रोड चलें और इन्दिराजी को मनाकर मीटिंग में ले आयें।" कुछ देर तक मीटिंग में गड़बड़ी मची रही। आखिरकार बरुआ, चह्वाण और कमलापति त्रिपाठी मीटिंग में से उठकर बाहर आये और लपककर एक मोटर पर बैठ गये। तीनों सीधे श्रीमती गांधी की कोठी पर गये और उन्हें अपने साथ मीटिंग में ले आये। सभी ने हाथ जोड़कर उनका स्वागत किया। वह जानती थीं कि उनका जादू अभी खत्म नहीं हुआ है।

वर्किंग कमेटी की बहस बहुत शान्त भाव से शुरू हुई, लेकिन जब हरियाणा के मीठा बोलनेवाले और नरमी का व्यवहार करनेवाले मुख्यमंत्री बनारसीदास गुप्ता ने अपने पुराने गुरु बंसीलाल के खिलाफ़ तरह-तरह के इलज़ाम लगाकर अपने मन का बोझ हल्का करना शुरू किया तो लोगों के कान खड़े हुए। बनारसीदास गुप्ता ने कहा कि उनके राज्य की सरकार दिल्ली में बैठकर बंसीलाल चलाते थे। उनका अपना काम इतना था कि बंसीलाल के लिए, जो तब रक्षामंत्री थे, बड़ी-बड़ी मीटिंगों का बन्दोबस्त करायें। उन्हें हुक्म था कि जिस मीटिंग में भी बंसीलाल बोलें उसके लिए ट्रकों, बसों और दूसरे तरीक़ों से 1,00,000 आदमी जुटाये जायें। और हर बार जब बंसीलाल किसी मीटिंग में बोलते थे तो कांग्रेस के 10,000 वोट कम हो जाते थे। किसी ने पूछा, "गुप्ताजी, आप पहले क्यों नहीं बोले?" गुप्ताजी ने जवाब दिया, "मैं बुज़दिल था।"

मीटिंग में श्रीमती गांधी ने बंसीलाल की तरफ़ से कोई सफ़ाई पेश नहीं की, लेकिन जब तीसरे पहर सिद्धार्थशंकर रे ने बंसीलाल को निकाल देने का सुझाव रखा तो उन्होंने उसके खिलाफ़ अपनी आवाज़ उठायी। वर्किंग कमेटी में उनके एक दोस्त ने यह सुझाव रखा कि बंसीलाल को चौबीस घंटे के अन्दर इस्तीफ़ा देने का मौक़ा दिया जाये। लेकिन यह मौक़ा नहीं दिया गया। अगले दिन फिर वर्किंग कमेटी की मीटिंग हुई और उसमें बंसीलाल को छः साल के लिए पार्टी की बुनियादी मेम्बरी से निकाल दिया गया। श्रीमती गांधी इस मीटिंग में नहीं आयीं। दूसरे लोगों पर लगभग कोई आँच नहीं आयी। विद्याचरण शुक्ला को हल्की-सी डाँट पड़ी और ओम मेहता के बारे में तो एक शब्द नहीं कहा गया; वह बेचारे दिन-भर दया की भीख माँगते फिरे थे। संजय के खिलाफ़ कोई कार्रवाई करने का सवाल ही नहीं उठता था, क्योंकि वह तो कांग्रेस का मेम्बर ही नहीं था। (कहा जाता है कि एक दिन सुबह श्रीमती गांधी बरुआ के घर गयी थीं और उनसे अपने बेटे के लिए फ़रियाद की थी। बरुआ ने बाद में एक मित्र के सामने यह माना, 'आखिरकार मैं हूँ तो इंसान ही।')

श्रीमती गांधी ... गयीं। ... वर्किंग कमेटी ने उन्हें

'हमारी सम्मानित नेता' कहा बल्कि किसी में इतनी हिम्मत भी नहीं हुई कि उनकी तरफ़ उंगली तक उठाता।

वर्किंग कमेटी ने बरुआ का इस्तीफ़ा मंजूर कर लिया—जैसा कि पहले ही से तय कर लिया गया था—और इस बीच के अरसे के लिए स्वर्णसिंह को अध्यक्ष चुन लिया। इन्दिराजी यह नहीं चाहती थीं; वह ब्रह्मानन्द रेड्डी को कांग्रेस का अध्यक्ष बनवाना चाहती थीं। लेकिन बाद में चलकर मई में वह इसमें कामयाब हो गयीं, लेकिन चुनाव में टक्कर होने के बाद। रेड्डी को 317 वोट मिले और सिद्धार्थशंकर रे को 160। पिछले मंत्रिमण्डल के स्वास्थ्य मंत्री कर्णसिंह भी मैदान में थे लेकिन उन्हें बहुत ही थोड़े वोट मिले। मध्य प्रदेश के घाघ कांग्रेसी नेता द्वारकाप्रसाद मिश्रा ने श्रीमती गांधी को जिताने में बहुत मदद की—जैसा कि 1969 में वह सिंडीकेट के खिलाफ़ कर चुके थे।

जनता पार्टी को इस तरह के किसी संकट का सामना नहीं करना पड़ा, लेकिन चूंकि वह चार पार्टियों का गठजोड़ थी इसलिए कहीं-कहीं खींचातानी के कुछ आसार ज़रूर दिखायी दिये। उन्हें अगला प्रधानमंत्री चुनना था। इसके लिए तीन दावेदार थे—मोरारजी, जगजीवनराम और चरणसिंह, ख़ास तौर पर पहले दो।

जनसंघ और संगठन कांग्रेस के लोग मोरारजी के पक्ष में थे, और सोशलिस्ट और ज़्यादातर युवा तुर्क जगजीवनराम को चाहते थे। भारतीय लोकदल अपने नेता चरणसिंह को प्रधानमंत्री बनवाना चाहता था।

बहरहाल, यह मामला जयप्रकाश पर छोड़ दिया गया जो चुनाव के बाद एकछत्र नेता बनकर उभरे थे। बहुत-से लोगों की शंकाओं के बावजूद, अन्त में जीत जन-तन्त्र में उनकी आस्था और ज़ोर-ज़ुल्म के खिलाफ़ उनकी आवाज़ की ही हुई थी। उनकी सम्पूर्ण क्रान्ति की कल्पना साकार हो रही थी। वह खुद नेता के चुनाव के झमेले से अलग रहना चाहते थे और उन्होंने अशोक मेहता और मधुलिमये को अपनी यह इच्छा बता भी दी थी। लेकिन बाद में उन्हें इस बात के लिए तैयार कर लिया गया कि वह सभी लोगों की राय मालूम करके फ़ैसला बता दें। आचार्य कृपलानी से उनकी मदद करने को कहा गया।

नये चुने गये संसद-सदस्यों से—जनता पार्टी (271), सी० एफ़० डी० (28), मार्क्सवादी (22), अकाली (8), किसान-मज़दूर पार्टी (5), रिपब्लिकन पार्टी (2) और लगभग एक दर्जन और सदस्यों से—24 मार्च को गांधी शान्ति प्रतिष्ठान की इमारत में जमा होने को कहा गया। लेकिन मीटिंग शुरू होने से पहले ही राजनारायण ने भारतीय लोकदल के नेता चरणसिंह का एक ख़त लाकर दिया, जो उस समय अस्पताल में थे। इस पत्र में कहा गया था कि प्रधानमंत्री के पद के लिए भारतीय लोकदल मोरारजी देसाई के पक्ष में है। पहले यह समझा जाता था कि शायद चरण-सिंह खुद टक्कर लें, लेकिन अब वह मैदान से हट गये थे।

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने इस बात का पता लगाने में कोई हिस्सा नहीं लिया कि मोरारजी और जगजीवनराम के बीच ज़्यादा लोग किसके साथ हैं। पार्टी के कुछ मेम्बरों ने निजी तौर पर कहा कि चूंकि वे लोग इमर्जेंसी के बीस महीनों के दौरान 'पिछली सरकार के कुकर्मों' का पर्दाफ़ाश करेंगे, इसलिए अगर जगजीवनराम नयी सरकार के नेता चुने गये तो इस बात में उनको परेशानी होगी, क्योंकि उस दौर में वह श्रीमती गांधी की सरकार में शामिल रह चुके थे। लेकिन पार्टी का सरकारी रवैया यह था कि वह मोरारजी के मुक़ाबले जगजीवनराम को ज़्यादा पसन्द करती।

जब नेता का फ़ैसला करने के लिए इस बुनियादी महत्त्व की मीटिंग के लिए संसद के सदस्य जमा होने लगे तो हॉल में वोट देने की छपी हुई पर्चियाँ लगायी गयीं। लेकिन इससे पहले कि लोगों की राय मालूम करने का सिलसिला शुरू होता, राजनारायण ने सुझाव रखा कि फ़ैसला जयप्रकाश पर छोड़ दिया जाये; मधुलिमये ने इस सुझाव का समर्थन किया। जगजीवनराम और बहुगुणा दोनों हॉल के बाहर इन्तज़ार कर रहे थे। जब उन्हें पता चला कि लोगों की राय नहीं ली जायेगी तो वे वहाँ से उठकर चले गये। उनको यह बात अच्छी नहीं लगी कि सभी लोगों की राय मालूम करने का जो सुझाव पहले मान लिया गया था उसे आज़माने से पहले ही छोड़ दिया गया।

जयप्रकाश अब भी राय मालूम कर लेने के पक्ष में थे लेकिन कृपलानी ने कहा कि इसमें शक की कोई गुंजाइश ही नहीं है कि ज़्यादा लोग मोरारजी के पक्ष में हैं। इसलिए राय मालूम करने का विचार त्याग दिया गया और कृपलानी ने ऐलान कर दिया कि नेता मोरारजी हैं।

मोरारजी को 24 मार्च को भारत के चौथे प्रधानमंत्री की शपथ दिलायी गयी, जिस पद के लिए वह पहले भी कम-से-कम दो बार कोशिश कर चुके थे। अब उनकी बरसों पुरानी साध पूरी हुई थी।

कई दिन तक वह अपने मंत्रिमण्डल का ऐलान नहीं कर सके क्योंकि वह सी० एफ़० डी० के जनता पार्टी में मिल जाने की राह देख रहे थे। जगजीवनराम इसके लिए इस शर्त पर तैयार थे कि उन्हें उप-प्रधानमंत्री बना दिया जाये। लेकिन मोरारजी यह पद चरणसिंह को देने का वायदा कर चुके थे। दो उप-प्रधानमंत्री रखना कुछ अटपटा-सा लगता था। मोरारजी बड़े धर्मसंकट में फँस गये थे। चरणसिंह ने मोरारजी को इस दुविधा से छुटकारा दिला दिया और जगजीवनराम के आ जाने के लिए रास्ता खोल दिया। जिस तरह नेता के सवाल का फ़ैसला किया गया था वह जगजीवनराम को अच्छा नहीं लगा था। उन्होंने ऐलान कर दिया कि उनकी पार्टी सरकार में शामिल नहीं होगी।

जब मैंने उनसे पूछा कि आप सरकार में शामिल होना क्यों नहीं चाहते, तो उन्होंने सिर्फ़ इतना कहा कि उन्होंने कांग्रेस फिर वही मंत्री बनने के लिए नहीं छोड़ी थी। उन्होंने यह भी कहा कि "कोई मुझसे मेरी मंत्री की कुर्सी छीन तो नहीं रहा था।" फिर भी उन्होंने यह बात ज़रूर साफ़ कर दी कि उनकी पार्टी सरकार का साथ देने का तो वचन देगी लेकिन संसद के बाहर वह अपनी अलग हैसियत बरक़रार रखेगी।

जयप्रकाश ने जगजीवनराम को मंत्रिमण्डल में शामिल हो जाने पर राज़ी करने की अपनी कोशिशें जारी रखीं। दरअसल, जहाँ जयप्रकाश ने सिरा छोड़ा था वहाँ से एक छोटी-सी कमेटी ने उसे सँभाल लिया और समझौता करा दिया।

तय यह हुआ कि शासक मोर्चे में जो खास-खास पार्टियाँ शामिल हैं उनमें से हर एक के दो-दो मंत्री मंत्रिमण्डल में होंगे—भारतीय लोकदल के प्रतिनिधि होंगे चरणसिंह और राजनारायण, जिनके मंत्रिमण्डल में शामिल किये जाने पर चरणसिंह अड़ गये थे; जनसंघ के अटलबिहारी वाजपेयी और एल० के० अडवाणी; सी० एफ़० डी० के जगजीवनराम और बहुगुणा; संगठन कांग्रेस के रामचन्द्र और सिकन्दर बख़्त; सोशलिस्टों के जार्ज फ़र्नांडीज़ और मधु दण्डवते; युवा तुर्कों और दूसरे लोगों के मोहन धारिया और पुरुषोत्तमलाल कौशिक; और अकालियों के प्रकाशसिंह बादल। कुल तेरह नाम थे, जो मनहूस गिनती समझी जाती है।

सी० एफ़० डी० सरकार में शामिल हो गयी होती लेकिन जब मंत्रियों के

नाम का ऐलान किया गया तो जगजीवनराम चिढ़ गये। पिछले दिन जो तेरह नामों पर समझौता हुआ था उसके बजाय उन्नीस नामों का ऐलान किया गया। छः नये नाम थे : एच० एम० पटेल, बीजू पटनायक, प्रतापचन्द्र 'चन्द्र', रवीन्द्र वर्मा, शान्तिभूषण और नानाजी देशमुख। 25 मार्च की आधी रात को जगजीवनराम ने मोरारजी को टेलीफोन करके बता दिया कि वह मंत्रिमण्डल में शामिल नहीं हो सकेंगे।

जगजीवनराम को इन नये लोगों से कोई शिकायत नहीं थी, लेकिन उन्हें यह बात बुरी लगी थी कि उनकी सलाह क्यों नहीं ली गयी। वह और बहुगुणा दोनों ही शपथ लेने नहीं गये।

फ़र्नांडीज़ ने भी, जिनका जगजीवनराम को राज़ी करने में बुनियादी हाथ रहा था, न जाना ही बेहतर समझा। शायद उन्होंने सोचा कि अगर अभी वह भी मंत्रि-मण्डल के बाहर रहें तो उन्हें जगजीवनराम को अपना इरादा बदलने पर राज़ी करने में ज़्यादा आसानी होगी। नानाजी देशमुख भी जगजीवनराम के बहुत क़रीब थे, उन्होंने भी यही रवैया अपनाया और अपनी जगह ब्रजलाल वर्मा को मंत्रिमण्डल में शामिल करने का सुझाव दिया।

इस बार भी जयप्रकाश ने ही इस गुत्थी को सुलझाया; उनके सन्देश से सारा काम बन गया। उन्होंने जगजीवनराम से कहा कि आप एक अकेले आदमी नहीं बल्कि पूरी एक ताक़त हैं 'जिसके बिना नये भारत का ढाँचा नहीं बनाया जा सकता।' आखिरकार, जगजीवनराम और बहुगुणा भी मंत्रिमण्डल में शामिल हो गये। उन्होंने अपने लिए कोई ख़ास दर्जा या कोई ख़ास मंत्रालय भी नहीं माँगा। फ़र्नांडीज़ ने भी, जो जान-बूझकर मंत्रिमण्डल में शामिल नहीं हुए थे, शपथ ले ली।

मंत्रिमण्डल बनने के नाटक का यह अन्तिम अंक था, लेकिन पर्दा अभी नहीं गिरा था। सी० एफ० डी० को यह गिला था कि उसके साथ 'हर क़दम पर विश्वासघात' किया गया; जनता पार्टी को यह शिकवा था कि 'दूसरी तरफ़ से हर बात अपनी मर्ज़ी की करवाने' की कोशिश की जाती है। जैसे-जैसे दिन बीतते गये, दोनों के बीच की खाई भी चौड़ी होती गयी।

इस मनमुटाव से सरकार के काम-काज में कोई कठिनाई पैदा नहीं हुई। सच तो यह है कि चुनाव के वक़्त किये गये कई वायदे तो बड़ी जल्दी पूरे कर दिये गये—नागरिक स्वतन्त्रताएँ वापस कर दी गयीं, 1971 में बंगला देश की लड़ाई के दिनों में जो बाहरी इमर्जेंसी लागू की गयी थी वह हटा दी गयी (भीतरी इमर्जेंसी तो लोकसभा में विपक्ष को पूरा बहुमत मिल जाने पर कांग्रेस ने ख़ुद ही 21 मार्च को हटा दी थी।) ऑल इंडिया रेडियो और टेलीविज़न के लिए स्वायत्त कार्पोरेशन क़ायम करने का ऐलान कर दिया गया। मीसा में जो लोग अभी तक जेलों में बन्द थे उन्हें रिहा कर दिया गया। आर्थिक अपराधी भी छोड़ दिये गये। सिर्फ़ नक्सलवादियों को यह आज़ादी नहीं दी गयी। (बाद में उन्होंने जयप्रकाश से बीच में पड़ने को कहा और उन्हें कुछ कामयाबी भी मिली।)

फ़र्नांडीज़ को, जो बड़ौदा डायनामाइट केस में मुख्य अभियुक्त थे, पहले ज़मानत पर रिहा किया गया और बाद में जब सी० बी० आई० के डायरेक्टर डी० सेन ने, जो इस मामले को देख रहे थे, मोरारजी से कहा कि मुक़दमे में 'कोई ख़ास दम नहीं' है तो मुक़दमा ही वापस ले लिया गया। जार्ज के साथ बाक़ी जिन 24 लोगों पर इलज़ाम लगाया गया था उन्हें भी रिहा कर दिया गया।

लेकिन मुक़दमा वापस लिए जाने से पहले फ़र्नांडीज़ ने भी अपने दिल का सारा ग़ुबार निकाल लिया। उन्होंने मजिस्ट्रेट से कहा, "जिस वक़्त सरकार के क़ाबू में

रहकर काम करनेवाला रेडियो और सेंसर की जंजीरों में जकड़े हुए अखबार सारी दुनिया को यह बता रहे थे कि किस तरह भारत की जनता ने श्रीमती गांधी की डिक्टेटरशिप और उनकी पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलनेवाली हुकूमत के आगे सर झुका दिया है, उस वक़्त मैं उनकी फ़ासिस्ट सरकार के खिलाफ़ अंडरग्राउंड विरोध संगठित कर रहा था। इस काम में जो औरतें और मर्द थे उनमें स्वतन्त्रता और आज़ादी के आदर्श कूट-कूटकर भरे हुए थे, जो डिक्टेटरशिप के साथ किसी तरह की समझौतेबाज़ी के लिए तैयार नहीं थे, जो मानव-अधिकारों की रक्षा के लिए अपना सब-कुछ दाँव पर लगा देने को तैयार थे, जो अपने दृढ़ विश्वासों की क़ीमत चुकाने को तैयार थे।"

यह तो शुरू से ही मालूम था कि इस मुक़दमे में कोई दम नहीं था, वह गढ़ा हुआ मुक़दमा था।

दस साल में पहली बार विचार व्यक्त करने की पूरी आज़ादी मिली थी जब अखबारों पर से सारी पाबन्दियाँ हटा ली गयी थीं। सच बात तो यह है कि इमर्जेंसी से पहले भी अखबार ज़रूरत से ज़्यादा शरीफ़, ज़रूरत से ज़्यादा भले थे और ऐसी खबरें न छापकर, जिनसे सरकार को कोई परेशानी हो, उसे खुश रखने को ज़रूरत से ज़्यादा तैयार रहते थे।

अदालतों पर भी अब कोई दबाव नहीं रह गया था। यह ऐलान कर दिया गया कि इमर्जेंसी के दौरान जिन जजों को बदलकर किसी दूसरी जगह भेज दिया गया था या जिनका ओहदा हटा दिया गया था, उन सबको उनकी पुरानी जगहों पर वापस भेज दिया जायेगा। कार्यवाहक राष्ट्रपति ने 28 मार्च को संसद के दोनों सदनों के मिले-जुले अधिवेशन में यह ऐलान किया कि जनता सरकार बुनियादी अधिकारों और नागरिक स्वतन्त्रताओं पर लगी हुई बची-खुची पाबन्दियाँ भी हटा लेगी, क़ानून का शासन फिर क़ायम कर देगी, अखबारों को अपने विचार आज़ादी के साथ व्यक्त करने का अधिकार वापस कर देगी और इस बात का पक्का प्रबन्ध करने के लिए क़ानून बना देगी कि अदालतों की ओर से स्वतन्त्र रूप से छानबीन कराये बिना किसी भी राज-नीतिक या सामाजिक संगठन को ग़ैर-क़ानूनी न ठहराया जाये।

सरकार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, जमाअते-इस्लामी और आनन्द मार्ग पर से पाबन्दी हटा ली।

उसने यह भी वायदा किया कि वह मीसा, आपत्तिजनक सामग्री के प्रकाशन से सम्बन्धित क़ानून और जनता के प्रतिनिधियों के चुनाव से सम्बन्धित क़ानून में किये गये उस संशोधन को भी रद्द कर देगी जिसके ज़रिये कुछ खास लोगों को चुनाव के दौरान किये जानेवाले अपराधों से बरी रखा गया है। तीस साल में पहली बार ऐसा हुआ था कि कांग्रेस पार्टी जो लगातार शासन करती आयी थी, आज विपक्ष की कुर्सियों पर बैठी थी, बुझी-बुझी और उदास-सी।

प्रधानमंत्री के सेक्रेटेरियट को काट-छाँट दिया गया और उसे अब सिर्फ़ 'दफ़्तर' कहा जाने लगा। 'रॉ' में भी काफ़ी कतर-ब्योंत कर दी गयी और परिवार-नियोजन कार्यक्रम को बदलकर परिवार कल्याण कार्यक्रम कर दिया गया। जिन अफ़सरों ने इमर्जेंसी के दौरान खुलेआम संजय का साथ दिया था उन्हें बदलकर दिल्ली से बाहर दूसरी जगहों में भेज दिया गया।

दूसरी ओर इमर्जेंसी लागू करनेवाले भी मुसीबत में फँस गये। पर उन्हें अब भी अपने किये का पछतावा नहीं था। श्रीमती गांधी ने कहा कि उनकी हार की वजह यह थी कि उन्होंने चुनाव कराने के लिए 'ग़लत वक़्त' चुना। एक बार फिर उन्होंने अख-बारों के खिलाफ़ ज़हर उगला—जिसका उन्हें खब्त हो गया था—और अखबारवालों

पर यह आरोप लगाया कि उन्होंने ज़्यादतियों के किस्से बहुत बढ़ा-चढ़ाकर उछाले थे। संजय ने कहा कि वह राजनीति से संन्यास ले लेगा, लेकिन साथ ही उसे इस बात का भी पूरा यक़ीन था कि साल-भर के अन्दर ही उसका और उसके ग्रुप का पलड़ा फिर भारी हो जायेगा। उसने कहा कि जनता पार्टी को अपने भाग्य को सराहना चाहिए कि मोरारजी प्रधानमंत्री हो गये, वरनाअगर कहीं जगजीवनराम प्रधानमंत्री बन जाते तो और भी बुरा हाल होता। अंबिका सोनी ने युवक कांग्रेस के अध्यक्ष के पद से इस्तीफ़ा दे दिया और खुलेआम संजय की आलोचना की।

धवन ने अपना इस्तीफ़ा श्रीमती गांधी को उसी ज़माने में दे दिया था जब वह नया प्रधानमंत्री चुने जाने के वक़्त तक के लिए प्रधानमंत्री का काम-काज देख रही थीं। यूनुस ने कहा कि जल्द ही 'वे' फिर वापस आ जायेंगे। उन्होंने विलिंगडन क्रीसेंट में अपना बँगला खाली कर दिया और दिल्ली मेंएक निजी मकान में रहने लगे। उनका बँगला बाद में श्रीमती गांधी कोदे दिया गया। बंसीलाल को जुनून का दौरा पड़ गया लेकिन कुछ दिन बाद वह ठीक हो गये और उन्होंने कहा कि उनका कांग्रेस से निकाला जाना 'उन लोगों की तिकड़मों' का ही एक हिस्सा था। ओम मेहता का रवैया यह था कि जैसे इमर्जेंसी से उनका कभी कुछ लेना-देना ही नहीं था। उन्होंने कहा, 'इमर्जेंसी के दौरान जो कुछ हुआ उसका समर्थन करते हुए मेरा एक भी ऑर्डर दिखा दीजिये।' विद्याचरण शुक्ला ने उसी पुरानी अकड़ के साथ कहा कि सारा क़सूर तो अखबारों का या सूचना देनेवाले माध्यमों का खुद अपना है। उन्होंने अपनी तरफ़ से ऐसे काम करने का ज़िम्मा ले लिया जो खुद मुझे नहीं पसन्द थे। सिद्धार्थशंकर रे को अपने किये पर पछतावा तो नहीं था लेकिन यह साबित करने के लिए कि इमर्जेंसी में और उन उन्नीस महीनों के दौरान जो कुछ हुआ उसमें उनका कोई हाथ नहीं था, उन्होंने श्रीमती गांधी का साथ छोड़ दिया।

जिन अफ़सरों की संजय, धवन और दूसरे लोगों के साथ मिलीभगत थी उन्होंने साफ़ इंकार कर दिया कि इन सब बातों में उनका कोई हाथ था। ख़ैर, यह तो सभी कहते थे—और कांग्रेसी उनसे कोई अलग नहीं थे—कि इमर्जेंसी के दौरान जो 'भयानक बातें' हुई उनका उन्हें कभी पता नहीं चला।

श्रीमती गांधी और धवन को छोड़कर ऐसा एक भी आदमी नहीं था जिसने संजय को दोष न दिया हो। जो लोग श्रीमती गांधी के सबसे क़रीब थे उन्होंने भी कहा, 'सारे झगड़े की जड़ वही था'। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने भी, जिसने इमर्जेंसी का समर्थन किया था और जिसे लोकसभा में कुल सात सीटें मिली थीं, 'संजय और उसकी चांडाल चौकड़ी' को दोषी ठहराया।

लेकिन अब ये सब बीती हुई बातें थीं। अब हवा में आज़ादी की गूंज थी। जोश था। खुशी थी। ऐसा लगता था जैसे अँधेरे से अचानक उजाले में आ गये हों। एक दूसरी ही तरह की उमंग थी, ऐसी उमंग जो 1947 में, जब देश को ब्रिटिश हुकूमत से आज़ादी मिली थी, उस वक़्त भी नहीं दिखायी देती थी। लोग देश के भविष्य के लिए मेहनत करने और क़ुर्बानी देने को तैयार थे।

जनता-सी० एफ० डी० सरकार इस माहौल का पूरा फ़ायदा उठाना चाहती थी और जिन राज्यों में मार्च के चुनाव में उसने बाक़ी सबका सफ़ाया कर दिया था उनमें वह विधानसभाओं के नये चुनाव कराना चाहती थी। इसका मतलब था कि सभी उत्तरी राज्यों में नये चुनाव हों—उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश और बिहार में, और इनके अलावा उड़ीसा और पश्चिम बंगाल में भी। इस समय तक चह्वाण विपक्ष की कांग्रेस संसदीय पार्टी के नेता चुने जा चुके थे। इस

काम में उनका सहयोग माँगा गया। यह इसलिए ज़रूरी समझा गया कि राज्यसभा में बहुमत होने के कारण कांग्रेस संविधान में संशोधन करने और विधानसभाओं की अवधि फिर पहले की तरह ही पाँच साल कर देने की सरकार की योजना पर पानी फेर सकती थी। (संविधान में कोई भी संशोधन दोनों सदनों में दो-तिहाई बहुमत से ही किया जा सकता है।) चह्वाण सहयोग देने पर राज़ी हो गये। विधानसभाओं की अवधि छः साल से घटाकर पाँच साल कर देने और इस तरह फिर 42वें संशोधन से पहलेवाली स्थिति बहाल कर देने के लिए 7 अप्रैल को संविधान में संशोधन (43वाँ) का प्रस्ताव रखा गया। सरकार इसे इसी बैठक में मंजूर करा लेना चाहती थी। इसका मतलब था कि गुजरात, केरल, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, मणिपुर और सिक्किम को छोड़कर बाकी सभी राज्यों में नये चुनाव हों।

चह्वाण शुरू-शुरू में तो यह समझ नहीं पाये कि इसके क्या-क्या नतीजे होंगे और उन्होंने अपनी पार्टी के मेम्बरों से सलाह-मशविरा भी नहीं किया था। कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों ने बहुत दिन तक इसका विरोध किया। चह्वाण ने कहा कि उन्होंने सिर्फ़ इस बात के लिए अपनी रज़ामन्दी दी है कि यह बिल पेश किया जाये, उसको मंजूर करने की नहीं। वह बिहार की विधानसभा भंग करने में पूरी तरह साथ देने को तैयार थे—उस राज्य की विधानसभा जहाँ जयप्रकाश के आन्दोलन का सबसे ज़्यादा असर पड़ा था। और कहीं नहीं।

जनता पार्टी बड़ी दुविधा में पड़ गयी थी। वह नहीं चाहती थी कि जिस लहर के सहारे वह विजय की मंज़िल तक पहुँची थी, वह यों ही बिखरकर रह जाये। इसके अलावा 12 अगस्त तक नये राष्ट्रपति का चुनाव भी पूरा हो जाना था। लोकसभा, राज्यसभा और राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों को ही राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेना था। विधानसभाओं के वोट बहुत काफ़ी थे और उनसे फ़ैसले का रुख बदल सकता था। मंत्रिमण्डल ने फ़ैसला किया कि अगर कांग्रेस ने सहयोग न दिया तो वह नये चुनाव कराने के लिए विधानसभाओं को भंग कराने के लिए राष्ट्रपति के अधिकारों[1] का सहारा लेगा—मज़े की बात यह थी कि संविधान में ये अधिकार 'आपात-स्थिति के प्रावधान' नामक अध्याय में दिये गये हैं। मंत्रिमण्डल में इस सवाल पर गरमा-गरम बहस हुई और कई मंत्री यह सोचने लगे कि इतने सख्त क़दम का नैतिक दृष्टि से आम लोगों पर क्या असर पड़ेगा। वे जनता पार्टी पर उँगली उठायेंगे कि वह भी वही कर रही है जो कांग्रेस करती थी—एक सरकार की जगह दूसरी तरह की सरकार।

सचमुच संसद के चुनावों की बुनियाद पर उन सरकारों को भी बर्खास्त कर देना, जिनकी मियाद अभी पूरी नहीं हुई थी, आगे के लिए बहुत बुरी मिसाल क़ायम करना होगा; कुछ भी हो भारत का ढाँचा एक संघ-राज्य का ढाँचा था, और इससे राज्यों की स्वायत्त-सत्ता को नुक़सान पहुँच सकता था।

विधानसभाओं को भंग करने के पक्ष में मंत्रिमण्डल के फ़ैसले का ऐलान चरणसिंह ने 18 अप्रैल को एक प्रेस कान्फ्रेंस में कर दिया। उन्होंने कहा कि नौ राज्यों के—बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल के—मुख्यमंत्रियों से उन्होंने अपने-अपने राज्यों की विधानसभाओं को भंग कर देने के लिए कह दिया है।

चरणसिंह ने इस क़दम को इस बुनियाद पर सही ठहराया कि लोकसभा के

1. संविधान की धारा 356 में राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वह "राज्यपाल की सिफ़ारिश पर या अन्यथा भी राज्यों की विधानसभाओं को भंग कर सकता है।"

चुनाव में चूंकि लोगों ने कांग्रेस को बिलकुल ठुकरा दिया है इसलिए राज्यों में उसकी सरकारों को बने रहने का कोई अधिकार नहीं है और अपनी इस दलील के पक्ष में उन्होंने संविधान के कुछ अंग्रेज़ विशेषज्ञों के हवाले भी दिये।

इसके अलावा यह एक नैतिक चुनौती भी थी; जिन सरकारों ने अपने आलोचकों को मुक़दमा चलाये बिना नज़रबन्द कर दिया हो, ऐसे जुल्म ढाये हों कि जो बयान भी नहीं किये जा सकते और विपक्ष के सदस्यों को तंग कर-करके खदेड़ दिया हो, उनके हाथ में शासन की बागडोर नहीं रहने दी जा सकती।

लेकिन गृहमंत्री चरणसिंह ने यह सारा काम बहुत ग़लत ढंग से किया था। वह संविधान की पेचीदा गुत्थियों में उलझ गये थे। सारा क़िस्सा बहुत भोंडा रूप धारण कर चुका था और कांग्रेस ने जनता पार्टी के नाम पर कलंक लगाने का यह मौक़ा हाथ से नहीं जाने दिया।

जयप्रकाश की राय थी कि जिन राज्यों की विधानसभाओं ने अभी अपने पाँच साल पूरे नहीं किये हैं उन्हें भंग न किया जाये। उनके ध्यान में उत्तर प्रदेश और उड़ीसा के राज्य थे। जनता सरकार के एक वरिष्ठ मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने (जो अब विदेश मंत्री थे) मोरारजी को पत्र लिखकर विधानसभाओं के भंग किये जाने पर जो आलोचना हो रही थी उस पर अपनी चिन्ता प्रकट की। वह भी इसी को बेहतर समझते थे कि नौ में से केवल सात राज्यों की विधानसभाओं को भंग किया जाये।

कुछ राज्यों की कांग्रेसी सरकारों ने सरकार के इस क़दम को सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दी। सुप्रीम कोर्ट ने 24 अप्रैल को 'इस क़दम को रुकवा देने और आख़िरी फ़ैसला होने तक के लिए कोई आदेश जारी कर देने' की उनकी अर्ज़ी सभी जजों की राय से खारिज कर दी। लेकिन इससे भी मसला हल नहीं हुआ। श्रीमती गांधी दूर से यह सारा तमाशा देख रही थीं। इसी बीच जत्ती ने विधानसभाएँ भंग करने के ऐलान पर दस्तखत करने से इंकार कर दिया। जिस दिन उन्होंने इंकार किया उससे कई दिन पहले ही उन्हें ऐसा करने के लिए 'राज़ी' कर लिया गया था। यह यशपाल कपूर के दिमाग़ की उपज थी कि कार्यवाहक राष्ट्रपति विधानसभाओं के भंग किये जाने के रास्ते में रोड़ा अटका सकता है। श्रीमती गांधी की सलाह लेना ज़रूरी था और यह यशपाल कपूर ने धवन के ज़रिये किया क्योंकि खुद उन्हें प्रधानमंत्री के घर में घुसने से मना कर दिया गया था। इधर कुछ अरसे से वह एक बेकार का बोझ बन गये थे। हर आदमी फ़ौरन मैदान में कूद पड़ा, श्रीमती गांधी भी और चह्वाण भी। दोनों ने टेलीफोन पर जत्ती से बात की। कार्यवाहक राष्ट्रपति अपने बेटे की शादी का न्योता देने के बहाने गोखले से यह जानने के लिए मिले कि इसमें क़ानूनी पेचीदगियाँ क्या पैदा हो सकती हैं।

जत्ती अपनी बात पर अड़े रहे; कोई भी दलील उन पर कारगर नहीं हुई। चरणसिंह, शान्तिभूषण और कई दूसरे मंत्री उनको समझा-समझाकर हार गये। यह इशारा दिये जाने पर भी कि शायद उन्हें ही अगला राष्ट्रपति बनवा दिया जाये वह लालच में नहीं फँसे। मोरारजी और जगजीवनराम महसूस कर रहे थे कि अब उनके सामने 'जनता के पास वापस' जाने के अलावा और कोई रास्ता नहीं रह गया है। उनका विचार था कि इसी सवाल पर लोकसभा का चुनाव फिर से करा लिया जाये।

उन्हें क्या पता था कि जत्ती ने इसके बारे में पहले ही से सोच रखा था और यह फ़ैसला कर लिया था कि अगर जनता पार्टी और सी० एफ० डी० की सरकार ने इस्तीफ़ा दे दिया तो वह चह्वाण से सरकार बनाने को कहेंगे। कार्यवाहक राष्ट्रपति का

संसद को भंग करने की सलाह मानने का कोई इरादा नहीं था।

फ़र्नांडीज़ को उनकी इस योजना की भनक मिल गयी और उन्होंने सरकार के इस्तीफ़ा देने के विचार का भरपूर विरोध किया। उन्होंने खुल्लमखुल्ला कहा कि "अपना बहुमत बनाने के लिए उन्हें (कांग्रेस को) बस इतना करना है कि हममें से कुछ लोगों को गिरफ़्तार कर लें।" धीरे-धीरे सबकी समझ में आने लगा कि जत्ती ऐलान पर दस्तखत करने से आनाकानी क्यों कर रहे हैं। सभी लोग बहुत झुंझलाये हुए थे। लोगों में गुस्से की लहर दौड़ गयी और उन्होंने जत्ती के बँगले के सामने नारे लगाये।

मंत्रिमण्डल की बैठक हुई और उसमें एक खत का मसविदा मंजूर किया गया जिसमें लिखा था कि अगर कार्यवाहक राष्ट्रपति प्रधानमंत्री और उनके मंत्रिमण्डल की सलाह मानने को तैयार नहीं हैं तो उन्हें इस्तीफ़ा दे देना चाहिए। बदनाम 42वें संशोधन का हवाला दिया गया; उसमें यह बात साफ़-साफ़ शब्दों में कही गयी थी कि राष्ट्रपति प्रधानमंत्री और उसके मंत्रिमण्डल की सलाह मानने के लिए बाध्य होगा। जत्ती का बना-बनाया खेल बिगड़ गया। कैबिनेट के सेक्रेटरी ने पत्र ले जाकर उन्हें दिया। जत्ती चारों तरफ़ से घिर गये थे। वह जानते थे कि इसका नतीजा बहुत बुरा होगा और उन्होंने फ़ौरन ऐलान पर दस्तखत कर दिये। एक और संकट टल गया। सबने सन्तोष की साँस ली।

ऐलान 30 अप्रैल को जारी कर दिया गया। नौ राज्यों की विधानसभाएँ भंग कर दी गयीं और चुनाव कमिश्नर से कहा गया कि वह मानसून शुरू होने से पहले जल्दी-से-जल्दी चुनाव कराने का बन्दोबस्त करें। जनता पार्टी, सी० एफ० डी० और उनके साथियों ने इस ऐलान का स्वागत किया, जबकि कांग्रेस ने उसे एक 'डिक्टेटरी हरक़त' और देश के 'संघ-राज्य वाले जनतान्त्रिक ढाँचे पर एक चोट' कहा।

दस्तखत करने में जत्ती की टालमटोल से जगजीवनराम का यह विश्वास और पक्का हो गया कि जनता पार्टी और सी० एफ० डी० के नेताओं को अपनी एकता बनाये रखना चाहिए और उन्होंने मोरारजी से कह दिया कि सी० एफ० डी० जनता पार्टी में शामिल हो जायेगी। सी० एफ० डी० के भविष्य का फ़ैसला करने के लिए जब उसकी मीटिंग होनेवाली थी, यह उससे लगभग एक हफ़्ते पहले की बात है। राजनीति के बहुत समझदार खिलाड़ी होने के नाते जगजीवनराम जानते थे कि अगर सी० एफ० डी० और जनता पार्टी में कोई समझौता न हो सका तो उत्तर प्रदेश और बिहार उनके लिए एक समस्या बन जायेंगे। लेकिन जनता पार्टी में शामिल होने के पीछे जगजीवनराम का एक और उद्देश्य था। वह उसके अध्यक्ष के चुनाव पर असर डाल सकेंगे। वह नहीं चाहते थे कि भारतीय लोकदल का कोई आदमी जनता पार्टी का अध्यक्ष बने। वामपंथी झुकाव रखनेवाले चन्द्रशेखर, जिनके नाम पर किसी तरह का कोई धब्बा नहीं था, सर्वसम्मति से पार्टी के अध्यक्ष चुन लिये गये।

जनता पार्टी और सी० एफ० डी० अब मिलकर एक ही शक्ति बन गये थे। हालाँकि इस सिलसिले को पूरा करने में एक महीने से ज्यादा वक़्त लग गया था, लेकिन इसको शुभ मानकर हर तरफ़ इसका स्वागत किया गया। कुछ लोग इसलिए निराश भी हो गये कि उन्हें यह बात अच्छी नहीं लगी कि जो मोल-तोल और सौदेबाज़ी कांग्रेस के अन्दर होती थी वही उनकी नयी सरकार में भी होने लगी थी।

विधानसभाओं के टिकट जिस तरह बाँटे गये उससे भी वे खुश नहीं थे। दूसरी पार्टियों के भगोड़ों के लिए दरवाजे खोल देना तो बुरा था ही, लेकिन इससे भी बुरी बात यह थी कि जनता पार्टी में भी काले बाज़ार वाले, ग़ैर-क़ानूनी शराब का धंधा करनेवाले, खुशामदी, अपना उल्लू सीधा करनेवाले और कम्युनिस्ट ऊँची-ऊँची जगहों

पर दिखायी दे रहे थे। इन ख़बरों से लोगों की निराशा और भी बढ़ गयी कि कांग्रेसी नेताओं की तरह यहाँ भी बड़े-बड़े व्यापारियों और सेठों से पैसा जमा किया जा रहा था। ऐसा लगता था कि नौकरशाही भी अपने उसी पुराने आरामतलबी के ढर्रे पर आती जा रही थी। लोग सोचते थे, ऐसा कैसे हो सकता है?

जयप्रकाश ने तो उनसे वायदा किया था कि गाँव से लेकर नई दिल्ली में केन्द्रीय सरकार के स्तर तक चौकसी रखने के लिए जनता की कमेटियाँ बनायी जायेंगी। क्या कोई भी सरकार इतनी गहरी छान-बीन की इजाज़त देगी? आज लोगों के दिमाग़ में यही सवाल है।

जनता पार्टी ने देश का नैतिक स्तर ऊँचा कर दिया है। बरसों बाद अब फिर उन आदर्शों की बात होने लगी है जिन्हें श्रीमती गांधी की सरकार ने बड़ी कोशिश करके तहस-नहस कर दिया था। जनता पार्टी जो कुछ करती है उसकी अच्छाइयों को आम लोग समझते न हों, ऐसी बात नहीं है। बात यह है कि जनता पार्टी ने पहले जो नैतिक मानदण्ड क़ायम किये थे उन्हें वे बाक़ी रखना चाहते हैं।

वे इस बात से खुश हैं कि चारों तरफ़ जो डर छाया हुआ था वह दूर हो गया है—पुलिस का डर, दूर-दूर तक फैले हुए जासूसों के जाल का डर, अफ़सरशाही का डर, दम घोंट देनेवाले क़ानूनों का डर और बिना मुक़दमा चलाये नज़रबन्द कर दिये जाने का डर।

वे इस बात से भी खुश थे कि देश के बड़े-से-बड़े लोगों को भी बख्शा नहीं जायेगा। बैंकों में श्रीमती गांधी के खातों की जाँच-पड़ताल शुरू कर दी गयी है और अपराधियों को सज़ा देने के लिए जाँच कमीशन बिठा दिये गये हैं।

आम लोगों को इस बात की भी उतनी ही चिन्ता है कि जो कुछ हुआ वैसा फिर न होने पाये। वैसी ही हालत फिर न पैदा होने पाये, इसके लिए हमें कुछ सबक़ लेना होगा। ऐसा करने का एक तरीक़ा तो यह हो सकता है कि जनतन्त्र में आर्थिक तत्त्व भर दिया जाये। सबकी बराबरी पर आधारित समाज की स्थापना सम्भव है और हो सकता है कि इस मामले में भारत ही बाक़ी दुनिया को रास्ता दिखाये।

वे यह भी नहीं चाहते कि जनता पार्टी का भी वही हाल हो जो कांग्रेस का हुआ या उसके नेता भी उनसे पहले वाले नेताओं की खाली की हुई कुर्सियों में इस तरह धंस जायें कि उन्हीं का एक हिस्सा बन जायें। जन-साधारण की दुविधा आदर्शों की दुविधा है। वे जानते हैं कि आदर्शों के पीछे मारे-मारे घूमने के मुक़ाबले में समझौतेबाज़ी में कहीं ज़्यादा फ़ायदा है और उससे कहीं ज़्यादा मदद मिलती है। जनता पार्टी के नाम के साथ कुछ अच्छाइयाँ जुड़ गयी हैं और लोग नहीं चाहते कि उन पर कोई धब्बा लगे।

यह उम्मीद तो कोई भी नहीं करता कि बरसों के दौरान जो ग़लतियाँ की गयी हैं उन्हें कोई आदमी या कोई पार्टी दो या तीन महीनों में ठीक कर देगी। लेकिन जनता पार्टी ने जिस ढंग से और जिस रफ़्तार से काम करना शुरू किया है उससे लोग बिल्कुल हताश भले ही न हुए हों, पर कुछ निराश ज़रूर हुए हैं। लोगों ने कांग्रेस को ठुकरा दिया है, जिस पर अभी तक उसी पुरानी चांडाल चौकड़ी का क़ब्ज़ा बना हुआ है। अगर जनता पार्टी ने भी उन्हें निराश कर दिया तो वे क्या करेंगे?

वे इन्तज़ार करने को तैयार हैं। वे समझते हैं कि इतनी जल्दी उम्मीद छोड़ देना ठीक नहीं है और अपना फ़ैसला सुना देना भी अभी बहुत जल्दी है।

परिशिष्ट 1

मारुति

एक सस्ती स्वदेशी 'जनता' मोटरकार बनाने का विचार पहले-पहल बहुत दिन हुए 1950 के बाद उठा था। छोटी मोटर की योजना ने, जो मनुभाई शाह की कल्पना की उपज थी, कई उतार-चढ़ाव देखे। एक वक़्त ऐसा आया था जब सरकार ने फ्रांस की 'रेनो' मोटर बनानेवालों के साथ समझौते पर लगभग दस्तख़त कर दिये थे; पांडे कमेटी की शिफ़ारिश यही थी कि हमारी आवश्यकताओं को सबसे अच्छी तरह यही मोटर पूरा कर सकती है। लेकिन बाद में कृष्णमाचारी के सख़्त विरोध करने पर यह योजना खटाई में पड़ गयी। इसके बाद कई बरस तक इस योजना के सुझाव की चर्चा बार-बार की गयी लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला।

प्राइवेट और पब्लिक सेक्टर की कई कम्पनियों ने यह मोटर बनाने के लिए टेंडर भेजे और मोटर के अपने-अपने नमूने भी तैयार कराये। मैसूर राज्य के औद्योगिक विकास निगम ने भी अर्ज़ी दी थी, जिसमें यह अन्दाज़ा लगाया गया था कि जो नमूना उन्होंने तैयार किया था, वैसी मोटर बाज़ार में बेचने के पैमाने पर बनाने में लगभग 5-6 हज़ार रुपये की लागत आयेगी।

सरकारी क्षेत्रों में इस सवाल पर जो बहस हो रही थी उसमें दो मुख्य धाराएँ थीं। एक धारा को माननेवालों का कहना था कि मोटर स्थानीय रूप से अपने ही देश के साधनों का सहारा लेकर बनायी जाये जबकि दूसरी धारा के समर्थकों का कहना था कि इसके लिए मोटर बनानेवाली विदेशी कंपनियों के साथ सहयोग किया जाये। उस समय फ़ोक्सवैगन, टोयोटा, रेनो, सिट्रोएन और मारिस मोटरें बनानेवाले सभी इस योजना में हाथ बँटाने के लिए बहुत उत्सुक थे।

जब यह बहस पूरे ज़ोरों पर थी, उसी समय संजय गांधी इंग्लेंड में रोल्स रायस कंपनी के क्रीव वाले कारखाने में अपनी ट्रेनिंग अधूरी छोड़कर भारत लौटा। यह कहना ग़लत न होगा कि संजय के इस मैदान में उतरते ही मामला एक तरह से अपने-आप ही तय हो गया।

शुरू से ही यह बात साफ़ हो गयी थी कि लाइसेंस संजय को ही मिलेगा। काग़ज़ी कार्रवाई पूरी होने में देर सिर्फ़ इसलिए हुई कि संजय जनता को दिखाने के लिए अपनी मोटर का नमूना तैयार करके यह साबित कर देना चाहता था कि वह भी मोटर बना सकता है। उसने यह काम दिल्ली की एक मामूली-सी गैराज में पूरा कर लिया। यह हो जाने के बाद तो 'लेटर ऑफ़ इंटेंट' (आशयपत्र) किसी भी समय दिया जा सकता था। संजय की मोटर के नमूने की जिस तरह धज्जियाँ उड़ा दी गयी थीं उसकी रत्ती-भर भी परवाह न करते हुए आखिरकार नवम्बर 1970 में मारुति लिमिटेड को हर साल 50,000 मोटरें बनाने का लाइसेंस दे दिया गया। मारुति कम्पनी संजय

ने ही बनायी थी और वही उसका मैनेजिंग डायरेक्टर था हालाँकि इस कम्पनी में उसका सिर्फ़ एक 100 रु० का शेयर था। जो 'लेटर ऑफ़ इंटेंट' जारी किया गया था उसमें दो ख़ास शर्तें ये थीं। मोटर पूरी तरह यहीं के साधनों से बनायी जायेगी और उसकी क़ीमत कम होगी! जैसा कि ज़ाहिर है, जिन हालात में आगे चलकर मारुति लि० काम करनेवाली थी उनमें इन शर्तों के पूरा होने की न कोई उम्मीद थी और न ही उन्हें पूरा किया जा सकता था।

जहाँ तक संजय का सवाल था उसने पहली बड़ी बाधा पार कर ली थी। 'लेटर ऑफ इंटेंट' मिल जाने के बाद संजय ज़मीन खरीदने और पैसा जुटाने में लग गया। कितने ही व्यापारी पैसा लगाने को तैयार थे और राजनीति के मैदान में भी लम्बे-चौड़े हौसले रखनेवाले बेईमान लोगों की कोई कमी नहीं थी। इनकी मदद से संजय की ये दोनों समस्याएँ भी हल हो गयीं।

बंसीलाल ने अपनी आदत के मुताबिक़ खुली धाँधली करके महलादा, ढुंडेरा और खेतरपुर गाँवों के रहनेवालों को बेदखल करके दिल्ली से गुड़गाँव जानेवाली बड़ी सड़क के किनारे 445 एकड़ उपजाऊ ज़मीन हथिया ली। गाँववालों को लगभग 10,000 रु० एकड़ के हिसाब से कुल 45 लाख रुपया मुआवज़ा दिया गया जबकि उससे मिली हुई ज़मीन का भाव 35,000 रु० एकड़ था। इसके अलावा, जो जगह चुनी गयी थी वह इस क़ानून के भी खिलाफ़ थी कि किसी भी रक्षा प्रतिष्ठान से 1,000 मीटर की दूरी के अन्दर कोई कारखाना न बनाया जाये। संजय का कारखाना फ़ौजी गोला-बारूद के एक भण्डार से बिलकुल मिला हुआ था।

ज़मीन मिल जाने के बाद संजय ने पूँजी जुटाने के सवाल की तरफ़ ध्यान दिया।

सबसे पहली पूँजी तो उन व्यापारियों से मिली जो इस फेर में थे कि इसके बदले में ज़्यादा-से-ज़्यादा रिआयतें हासिल कर लें या अपना कोई काम बनवा लें। सितम्बर 1974 तक मारुति लि० की जमा पूँजी 1,84,60,700 तक पहुँच चुकी थी। इसमें से 2.2 प्रतिशत शेयर यू० पी० ट्रेडिंग कंपनी के, 1.6 प्रतिशत शेयर दरभंगा मार्केटिंग कंपनी के और 1.1 प्रतिशत शेयर सारन ट्रेडिंग कंपनी के थे। इसके अलावा मारुति लि० ने 1973-74 के सरकारी साल के दौरान मोटर की बिक्री का अधिकार बेचकर 2,18,91,042 रु० और बटोरे थे। हर डीलरशिप 3 लाख रुपये से 5 लाख रुपये तक का बयाना लेकर बेची गयी थी और वह भी ऐसे व्यापारियों के हाथ जिनका इससे पहले मोटरों से कोई सम्बन्ध नहीं रहा था लेकिन जो समझते थे कि इस काम में पैसा लगाना मुनाफ़े का सौदा है या जिन्हें इसके लिए मजबूर किया गया था।

शुरू से ही यह योजना सरासर नाक़ामयाब रही है। पहला जो नमूना बनाया गया था उसे कबाड़ में डाल दिया गया। दूसरा नमूना बना तो आज़माइश के दौरान ही उलट गया। इसके बाद भी जो नमूने बने उनमें भी कोई-न-कोई खराबी ही निकली —किसी का स्टीयरिंग खराब था तो किसी का सस्पेंशन और किसी का इंजन बहुत जल्दी बेहद गरम हो जाता था। एक वक़्त तो ऐसा आया कि संजय ने 'लेटर ऑफ़ इंटेंट' में लगायी गयी शर्तों को तोड़कर विदेशी सामान भी लगाना शुरू कर दिया। अफ़सोस, फिर भी मारुति लि० ऐसी मोटर नहीं बना पायी जो सड़क पर चल सकती। इस दौरान जब मारुति लड़खड़ाती हुई चल रही थी संजय सबके सामने बड़े भरोसे के साथ बात करता रहा। दिसम्बर 1973 में एक प्रेस कान्फ्रेंस में उसने कहा कि कार छः महीने में बनकर तैयार हो जायेगी। यही बयान उसने अट्ठारह महीने बाद दोहराया और कहा कि 1977 तक फ़ैक्टरी अपनी पूरी क्षमता से काम करने लगेगी और रोज़ 200 मोटरें बनाया करेगी। अभी जनवरी 1976 में चंडीगढ़ में कांग्रेस अधिवेशन के

मौक़े पर संजय ने कहा था कि "मार्च के आखिर तक मोटर कुछ चुने हुए शो-रूमों में आ जायेगी।"

एक के बाद एक नमूना बेकार होते जाने के बाद मारुति लि० इतनी बुरी तरह क़र्ज़े में डूब गयी कि संजय के चमचे भी उसकी मदद करने के लिए पैसा नहीं जुटा पाये। यही वह वक़्त था जब संजय ने बैंकों और दूसरी सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं का सहारा लिया। अपनी माँ के बल पर उसने राष्ट्रीकृत बैंकों को मजबूर किया कि वे कोई जमानत लिये बिना मारुति लि० को क़र्ज़ दें। सेण्ट्रल बैंक ऑफ़ इंडिया और पंजाब नेशनल बैंक दोनों ही ने मारुति को लगभग 75-75 लाख रु० क़र्ज़ दिया।

आखिरकार मजबूर होकर रिज़र्व बैंक को दखल देना पड़ा। सभी राष्ट्रीकृत बैंकों को एक गश्ती चिट्ठी भेजकर रिज़र्व बैंक ने चेतावनी दी कि अगर और क़र्ज़े दिये गये तो देश की ऋण नीति की बुनियाद पर असर पड़ेगा। इसके बाद अगर घटनाओं के क्रम में संयोगवश मोड़ न आया होता तो संजय और रिज़र्व बैंक के बीच यक़ीनन टक्कर हो जाती।

इलाहाबाद हाईकोर्ट का फ़ैसला आने के कुछ ही दिन बाद इमर्जेंसी का ऐलान कर दिया गया और सारी ताक़त श्रीमती गांधी के हाथों में आ गयी। इसी के नतीजे के तौर पर संजय का नाम राजनीति के क्षेत्र में चमक उठा।

राजनीति के मैदान में संजय का पहला वार उन अफ़सरों पर हुआ जिन्होंने मारुति लि० के मुसीबत के वक़्त में उसे पैसा देने से इंकार किया था। सेंट्रल बैंक के चेयरमैन डॉ० तनेजा हटा दिये गये। उनके बाद रिज़र्व बैंक के डिप्टी गवर्नर डॉ० हज़ारी की बारी आयी, जिनकी जगह इनकम-टैक्स दफ़्तर के एक जूनियर अफ़सर जे० सी० लूथर को डिप्टी गवर्नर बना दिया गया। रिज़र्व बैंक के गवर्नर एस० जगन्नाथन को रिटायर कर दिया गया और उनकी जगह के० आर० पुरी को गवर्नर बना दिया गया, जो पहले जीवन बीमा निगम के चेयरमैन थे।

मारुति लि० का काम शुरू होने से आठ महीने पहले मारुति टेकनिकल सर्विसेज़ (एम० टी० एस०) की स्थापना हो चुकी थी। इसकी 2,15,000 रु० की जमा पूँजी में से 1,15,000 रु० की पूँजी संजय की थी। बाक़ी पैसा राजीव और उसके परिवार ने लगाया था। इस तरह एम० टी० एस० पूरी तरह परिवार की मिल्कियत वाली कंपनी थी।

जून 1972 में एम० टी० एस० को मारुति लि० का सलाहकार नियुक्त किया गया। इस क़रारनामे में शर्त यह रखी गयी थी कि मारुति लि० शुरू में 5,00,000 रु० देगी और उसके बाद मारुति लि० की कुल बिक्री का 2 प्रतिशत एम० टी० एस० को मिला करेगा, लेकिन किसी भी हालत में हर साल 2,50,000 रु० से कम नहीं। इस तरह एम० टी० एस० में जितनी पूंजी लगायी गयी थी उस पर हर साल उतनी ही रक़म के बराबर आमदनी की गारंटी हो गयी। अंदाज़ा लगाया गया है कि जनवरी 1975 तक एम० टी० एस० को सारा खर्चा वग़ैरह काटने के बाद 1,02,000 रु० की आमदनी हुई थी।

मारुति लि० के अधीन एक और कंपनी थी मारुति हेवी वेहिकल्स लि० (एम० एच० वी०)। इसमें आधे से ज़्यादा (59 प्रतिशत) शेयर एम० टी० एस० के थे। बाक़ी शेयर ओ० पी० मोदी (20 प्रतिशत), के० एल० जालान (13 प्रतिशत) और गांधी परिवार (8 प्रतिशत) के बीच बँटे हुए थे। एम० एच० वी० को सड़क कूटने के रोलर बनानेवाली छोटे पैमाने की कंपनी की हैसियत से रजिस्टर कराया गया था। एम० टी० एस० को इसका भी टेक्निकल सलाहकार बना दिया गया। आम

हालात में, इनमें से कोई भी कंपनी मुनाफ़ा नहीं कमा सकती थी; इसमें न तो ढंग का साज़-सामान ही था और न ढंग के काम करनेवाले। लेकिन वह ज़माना आम हालात का तो था भी नहीं। श्रीमती गांधी के ज़बर्दस्त राजनीतिक संरक्षण का सहारा लेकर संजय ने मारुति की कंपनियों में बड़ी कामयाबी के साथ ऑर्डरों की भरमार कर दी। जो लोग आनाकानी करते थे या इन फ़ैक्टरियों की क्षमता के बारे में शक करते थे उनका पत्ता काट दिया जाता था। और जो लोग क़ानूनी पहलू से शंकाएँ उठाते थे उन्हें तंग किया जाता था और दबा दिया जाता था। मिसाल के लिए जब अप्रैल 1975 में मारुति के साज़-सामान के बारे में संसद में सवाल पूछे गये तो औद्योगिक विकास मन्त्रालय के डायरेक्टर कृष्णास्वामी ने स्टेट ट्रेडिंग कार्पोरेशन (एस० टी० सी०) के तहत काम करनेवाली कम्पनी प्रोजेक्ट्स एण्ड इक्विपमेंट कार्पोरेशन (पी० ई० सी०) और पूर्वी योरोप के देशों के एजेंट बाटलीबोई से आवश्यक जानकारी देने को कहा। मारुति लि० ने मोटर बनाने की मशीनें इन्हीं दो कम्पनियों से खरीदी थीं। इससे पहले कि कोई जानकारी बाहर जाने पाती पी० ई० सी० और एस० टी० सी० के डायरेक्टरों को प्रधानमंत्री के दफ़्तर ने तलब किया और फटकारा। उनसे जाँच-पड़ताल बन्द कर देने को कहा गया। पी० ई० सी० के जो दो अफ़सर, कावले और भटनागर, जाँच-पड़ताल कर रहे थे उनमें से कावले को बदलकर किसी दूसरी जगह भेज दिया गया और भटनागर को 'सस्पेंड' कर दिया गया। कृष्णास्वामी के घर पर छापा मारा गया और वहाँ से शराब की दो बोतलें बरामद करके उन्हें एक्साइज़ का क़ानून तोड़ने के जुर्म में सस्पेंड कर दिया गया।

सरकारी दखलन्दाज़ी को उजागर करनेवाली एक और मिसाल तेल और प्राकृतिक गैस कमीशन (ओ० एन० जी० सी०) का मामला है। जनवरी 1975 में ओ० एन० जी० सी० ने सड़क कूटनेवाले छः रोलरों के लिए टेण्डर मँगवाये। सरकारी कम्पनी गार्डन रीच वर्कशाप (जी० आर० डब्लू०) और दो दूसरी कम्पनियों ने टेण्डर भेजे। एम० एच० बी० ने भी एक प्राइवेट कम्पनी की मार्फ़त टेण्डर भेजा। शुरू में जी० आर० डब्लू का टेण्डर 1,46,000 रु० का और मारुति का 1,60,000 रु० का था। बाद में मारुति ने अपना टेण्डर घटाकर 1,41,000 रु० कर दिया। फिर भी ऑर्डर सरकारी कम्पनी को ही मिला। यह फ़ैसला दो बातों की बुनियाद पर किया गया था। एक तो यह कि जी० आर० डब्लू० सरकारी कम्पनी थी और इसलिए दाम में 10 प्रतिशत तक की छूट पाने की अधिकारी थी और दूसरे उसकी साख बहुत ऊँची थी।

लेकिन इससे पहले कि जी० आर० डब्लू० के साथ सौदा पक्का किया जाता, यह ऑर्डर रद्द कर दिया गया। साज-सामान की ख़रीदारी से सम्बन्ध रखनेवाले कमीशन के सदस्य लाहिड़ी ने दुबारा एस्टीमेट मँगवाये। मारुति ने अपने रोलरों की क़ीमत घटाकर 1,25,000 रु० कर दी और जी० आर० डब्लू० अपनी पुरानी क़ीमत पर जमी रही। बाद में ठेका मारुति को दे दिया गया। दुबारा टेण्डर मँगाकर तो लाहिड़ी ने अपने अधिकारों की सीमा से बाहर जाकर काम किया ही था, इसके अलावा उन्होंने एक ग़लती यह भी की थी कि उन्होंने इस शर्त को पूरा नहीं किया था कि किसी कम्पनी को ठेका देने के काग़जात पर हस्ताक्षर कराने से पहले उसकी क्षमता का अन्दाज़ा लगाने के लिए उसकी फ़ैक्टरी का मुआइना कर लिया जाना चाहिये। इसके अलावा यह ऑर्डर देने की सारी कार्रवाई इतने ऊँचे स्तर पर की गयी थी कि ओ० एन० जी० सी० के पुराने कर्मचारियों को भी एतराज़ करने का मौक़ा नहीं मिला था।

इमर्जेंसी लागू हो जाने के बाद तो क़ानून के अनुसार काम करने का दिखावा भी छोड़ दिया गया था। अब तो टेण्डर मँगाने की भी ज़रूरत नहीं रह गयी थी। बस संजय के कहने की देर होती थी और कितने ही लोग उसे पूरा करने के लिए तैयार रहते थे। वाशिंगटन पोस्ट ने अपने 10 नवम्बर 1976 के अंक में लिखा, "आम लोग समझते हैं कि बहुत बड़ी धोखाधड़ी चल रही है। बड़े-बड़े अफ़सर कहते हैं कि वे कुछ भी नहीं कर सकते। संजय सेक्रेटरियों को बुलाकर बस इतना कह देता है, 'यह ठेका उसको दे दो'।"

इस रवैये का ठोस सबूत यह था कि राज्यों की तरफ़ से और दूसरी सरकारी संस्थाओं की तरफ़ से सड़क कूटनेवाले रोलरों की माँग अचानक बढ़ने लगी। इमर्जेंसी लागू होने के कुछ ही दिन के अन्दर बॉर्डर रोड्स आर्गेनाइजेशन (बी० आर० ओ०) से 100, हरियाणा से 50, पंजाब से 40 और उत्तर प्रदेश और नई दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी से अनिश्चित संख्या में सड़क कूटनेवाले रोलरों के ऑर्डर आ चुके थे।

एम० एच० वी० के पास सचमुच नये रोलर बनाने के लिए न तो आवश्यक साज-सामान ही था और न तकनीकी जानकारी ही। उसने कुल 2,000 रुपये के हिसाब से फ़ोर्ड और पर्किन के सेकिंडहैण्ड इंजन खरीदकर उन्हें पुराने कबाड़ रोलरों में फिट कर दिया और उन पर रंग-रोग़न करके नया कहकर बेच दिया। बाज़ार में जो दूसरे रोलर मिल रहे थे उनके मुक़ाबले में इन रोलरों की क़ीमत (1,40,000 रुपये) चालीस प्रतिशत ज़्यादा थी। यह तो बताने की ज़रूरत नहीं कि इनमें से ज़्यादातर रोलर उन कामों के लिए मुनासिब साबित नहीं हुए जिनके लिए इन्हें खरीदा गया था। बॉर्डर रोड्स आर्गेनाइज़ेशन को यह मालूम होने पर परेशानी तो बहुत हुई, लेकिन वह बोल कुछ नहीं सकता था, कि उसे जो रोलर दिये गये थे उनमें से कोई भी बहुत ऊँचाई पर काम नहीं कर सकता था। इसलिए वे पठानकोट में बी० आर० ओ० के डिपो में खड़े रहे।

एम० एच० वी० का एक और काम, जो उन्होंने अभी हाल ही में शुरू किया था, बस की बॉडी बनाने का था। इस बात के बावजूद कि हर राज्य में बस की बॉडियाँ बनाने के लिए अपनी ज़रूरत भर पूरा इन्तज़ाम था, एम० एच० वी० को राज्यों की सरकारों की तरफ़ से ढेरों ऑर्डर मिलने लगे। मिसाल के लिए मध्य प्रदेश ने एम० एच० वी० को न सिर्फ़ 100 बसों की बॉडी बनाने का ऑर्डर दिया बल्कि उन्हें 39,000 रुपये फ़ी बॉडी के हिसाब से बेहद ज़्यादा भुगतान भी किया। खुद अपने कार्पोरेशन को वे सिर्फ़ 27,813 रुपये देते थे। इसी तरह उत्तर प्रदेश सरकार को भी संजय की चांडाल चौकड़ी को खुश करने के लिए ज़रूरत से 5 लाख रुपया ज़्यादा खर्च करना पड़ा। अन्दाज़ा लगाया गया है कि इमर्जेंसी उठने तक अकेले उत्तर प्रदेश से 499, मध्य प्रदेश से 180, हरियाणा से 307, राजस्थान से 152 और दिल्ली से 52 बसों की बॉडी बनाने के ऑर्डर मिल चुके थे।

लेकिन शायद भ्रष्टाचार और कुनबापरवरी की सबसे शर्मनाक मिसालें विदेशी मल्टीनेशनल कार्पोरेशनों के साथ मारुति की मिलीभगत की हैं। इमर्जेंसी के कुछ ही दिन बाद (मुमकिन है कुछ पहले से भी हों) मारुति कई मल्टीनेशनल कार्पोरेशन का एजेण्ट बन बैठा—ख़ास तौर पर अमरीका के इण्टरनेशनल हार्वेस्टर और पाइपर कम्पनी और पश्चिम जर्मनी की मैन कम्पनी और डिमाग कम्पनी। इन कम्पनियों के बनाये हुए माल के अलावा मारुति के पास रसायन, पम्पिंग इंजन, बुलडोज़र और टेलीफ़ोन के मोटे तार सप्लाई करने की भी एजेंसियाँ थीं।

संजय गांधी ने 1976 के बीच में कभी दिल्ली में पानी सप्लाई करनेवाले और

गन्दे पानी की निकासी का प्रवन्ध करनेवाले संगठन से यह बात मनवा ली कि शहर में पीने के पानी ग्रौर गन्दे पानी को साफ़ करने के लिए वह फिटकरी के बजाय क्विक फ़्लाक पालिमिक्स नामक एक रसायन इस्तेमाल किया करे।

यह रसायन एम० टी० एस० वाले संजय गांधी के एक दोस्त ग्रार० सी० सिंह के साथ मिलकर बनाते थे, जो दिल्ली की ग्राई० ग्राई० टी० से छुट्टी लेकर वहाँ काम कर रहा था।

जब पानी सप्लाई के संगठन के कुछ कैमिस्टों ने इस रसायन को इस्तेमाल करने के बारे में कुछ ग्रानाकानी की तो उन्हें सस्पेंड कर दिया गया। ग्रार० सी० सिंह को म्युनिसिपल कमिश्नर बी० ग्रार० टमटा का तकनीकी सलाहकार बना दिया गया ग्रौर इस हैसियत से सिंह ने इस रसायन के इस्तेमाल की मंजूरी दे दी। पानी सप्लाई संगठन रोज़ 10,000 रुपये का रसायन इस्तेमाल करने लगा। इस संगठन में पालिमिक्स का इस्तेमाल शुरू हो जाने के बहुत दिन बाद इसके लिए टेंडर मँगवाये गये ताकि इसका ठेका देने की पूरी कार्रवाई फ़ाइलों में ठीक रहे।

शहर में पानी की सप्लाई में कोई भी रसायन इस्तेमाल करने से पहले यह ज़रूरी है कि कानपुर की नेशनल एनविरानमेण्ट इंजीनियरिंग रिसर्च इंस्टीच्यूट से इसकी जाँच करवा ली जाये, लेकिन इस रसायन की जाँच नहीं करवायी गयी। रसायनों की जानकारी रखनेवालों का कहना है कि इस रसायन के इस्तेमाल से पानी में 'मोनोमर' नामक पदार्थ इतनी ग्रधिक मात्रा में जमा हो जाता है कि उससे ज़हर पैदा होने का डर रहता है ग्रौर उससे खाल ग्रौर ग्राँख की बीमारियाँ फैल सकती हैं। पालिमिक्स के इस्तेमाल से जितना 'मोनोमर' पानी में जमा हो जाता है वह ग्रमरीका के खाने-पीने की चीज़ों से ग्रौर मादक पदार्थों की लत पड़ जाने से सम्बन्धित क़ानून में बतायी गयी सीमा से कहीं ग्रधिक है। विदेशों में इसे सिर्फ़ नालियों के पानी के लिए इस्तेमाल किया जाता है, पीने के पानी के लिए नहीं।

एजेंट की हैसियत से मारुति को हर सौदे की कुल रक़म का 20-25 प्रतिशत भाग कमीशन के रूप में मिलता था। सरकारी ग्रौर प्राइवेट संगठनों को डरा-धमकाकर उन्हीं कम्पनियों को ग्रॉर्डर भेजने के लिए मजबूर किया जाता था जिनकी एजेंसी मारुति के पास थी। इस सिलसिले में कई चलते हुए ठेके भी रद्द कर दिये गये। मिसाल के लिए, पब्लिक सेक्टर की इंडियन ट्यूब कम्पनी को ग्रो० एन० जी० सी० ने ब्रिटिश स्टील कम्पनी के बताये हुए मोटे-मोटे नल सप्लाई करने का ठेका दे रखा था। मारुति के एक प्रतिनिधि झुनझुनवाला ने ब्रिटिश स्टील के प्रतिनिधि चार्ल्स गार्डन से मिलकर उन्हें यह पट्टी पढ़ायी कि ग्रगर ब्रिटिश स्टीलवाले मारुति को ग्रपना एजेंट बना लें तो उन्हें बहुत फ़ायदा रहेगा। ब्रिटिश स्टीलवाले राज़ी हो गये ग्रौर इसके फ़ौरन ही बाद इंडियन ट्यूब कम्पनी का ठेका ख़त्म कर दिया गया। इसी तरह जब मारुति ने इंटरनेशनल हार्वेस्टर की तरफ़ से पैरवी की तो पोलेंड के साथ फ़सल काटने की मशीनें सप्लाई करने का ठेका ख़त्म कर दिया गया।

एक ग्रौर मिसाल है जब ग्रो० एन० जी० सी० को चौबीस भारी ट्रकों का ग्रॉर्डर मारुति की मारफ़त देने पर मजबूर किया गया। इनमें से बारह इण्टरनेशनल हार्वेस्टर वाले सप्लाई करनेवाले थे ग्रौर बाकी बारह पश्चिमी-जर्मनी की कम्पनी मैन। मारुति का टेंडर 50 लाख रुपये का था, जो उसके बाद वाले सबसे ऊँचे टेंडर से भी दुगुना था। जब ग्रो० एन० जी० सी० ने ग्राठ ऐसी ट्रकों के लिए टेंडर मँगाये जिन पर 40 से 45 टन तक के क्रेन लगे हों, तो सबसे नीचा टेंडर नई दिल्ली के ग्रर्थ-मूविंग एण्ड मशीनरी कार्पोरेशन का था। वे ग्रमरीकी हाइस्ट क्रेन 1 करोड़ 58 लाख रुपये

में दे रहे थे। मारुति ने शुरू में 1 करोड़ 76 लाख रुपये का टेंडर दिया था लेकिन बाद में उसे घटाकर 1 करोड़ 70 लाख रुपये का कर दिया था। ठेका पहली वाली कम्पनी को दिया जानेवाला था लेकिन केशवदेव मालवीय ने खुद बीच में पड़कर उसे मारुति को दिलवा दिया।

इनसोव आटो लि० नामक कम्पनी का कारोबार बिठा देने के पीछे भी मारुति का ही हाथ था। इस कम्पनी का उद्देश्य सोवियत संघ के सहयोग से मोटरगाड़ियाँ बनाना था। दोनों देशों के बीच जो समझौता हुआ था उसमें कहा गया था कि प्रोम्माश एक्सपोर्ट मास्को उत्तर प्रदेश के संडीला शहर में लगाये जानेवाले एक कारखाने में 400 गाड़ियाँ बनाने के लिए आवश्यक विदेशी कल-पुर्जे सप्लाई करेगा। लेकिन इमर्जेंसी लागू होने के कुछ ही समय बाद उद्योग मंत्रालय ने सोवियत वालों को लिख दिया कि मारुति लि० के पास चूंकि 'हल्की व्यावसायिक गाड़ियाँ' बनाने की सभी आवश्यक सुविधाएँ मौजूद हैं इसलिए भारत में एक और कारखाना लगाने की कोई जरूरत नहीं है। इसके बजाय विदेशी कल-पुर्जे मारुति लि० को सप्लाई कर दिये जायें, और जो मोटरगाड़ियाँ बनाने की योजना है उन्हें वही बनायेगा। इसके बाद एक और खत भेजा गया जिसमें यह बात साफ़ कर दी गयी थी कि सरकार एक नया कारखाना लगाने की इजाज़त नहीं देगी। नतीजा यह हुआ कि इस योजना को चुपचाप उठाकर ताक पर रख दिया गया।

शायद जिस घोटाले के बारे में सबसे ज्यादा दस्तावेज़ मिलते हैं वह हवाई जहाज़ों वाला घोटाला है। पाइपर हवाई जहाज़ों के एजेंण्ट की हैसियत से संजय ने उन्नीस पाइपर हवाई जहाज़ों के ऑर्डर जुटाये। इनमें से हर हवाई जहाज पर संजय को विदेशी मुद्रा में पाँच-पाँच लाख रुपया कमीशन मिला। पाइपर से संजय ने 'मॉल' नामक हवाई जहाज़ों की एजेंसी ले ली—जिसे अमरीका ने बड़ी-बड़ी कम्पनियों के अफ़सरों के लिए बनाया था। यह महसूस करके कि हिन्दुस्तान में 'मॉल' हवाई जहाज खरीदनेवाले गिनती के ही मिल सकेंगे, संजय ने कृषि मंत्रालय पर दबाव डाला कि वह फ़सलों पर दवा छिड़कनेवाला 'बसंत' हवाई जहाज़ बनाना बन्द कर दे और उसकी जगह 'मॉल' इस्तेमाल करे। सौभाग्य से इमर्जेंसी खत्म हो जाने की वजह से इसके बारे में कोई आखिरी फ़ैसला नहीं किया जा सका।

जैसे-जैसे हवाई जहाज़ों में संजय का दखल बढ़ता गया, उसने एक नई कम्पनी खड़ी कर दी—मारुति एविएशन कम्पनी। शायद उसका इरादा यह था कि एक तीसरी फ़ीडर एयर लाइन चलायी जाये जिसका कारोबार प्राइवेट लोगों के हाथ में रहे, और इण्डियन एयर लाइंस और दूसरी सरकारी संस्थाएँ उसकी मदद करें। अब यह बात मालूम हो चुकी है कि उसने इण्डियन एयरलाइंस को इसकी छान-बीन करने के लिए राज़ी कर लिया था कि यह सुझाव किस हद तक सफल हो सकता है। हवाई जहाज़ों में अपनी बढ़ती हुई दिलचस्पी की वजह से संजय ने सफ़दरजंग का हवाई अड्डा हथिया लेने की कोशिश की। उसने इण्डियन एयरलाइंस को हुक्म दिया कि वह सारे हैंगर खाली कर दे और अपनी सारी बसें, स्टेशन वैगन और मोटरें इन्द्रप्रस्थ एस्टेट में दिल्ली ट्रांसपोर्ट कार्पोरेशन के डिपो में खड़ी किया करे। वह मारुति एविएशन की वर्कशाप सफ़दरजंग हवाई अड्डे में लगाना चाहता था। क़िस्मत से इमर्जेंसी खत्म हो जाने की वजह से यह हवाई योजना भी खत्म हो गयी।

जैसे-जैसे संजय और उसके साथी ज्यादा मुनाफ़ा देनेवाले कारबारों में अपना हाथ डालते गये, वैसे-वैसे बड़े पैमाने पर 'जनता मोटर' बनाने की योजना को चुपचाप छोड़ दिया। मारुति लि० के कर्मचारियों को काम पर लगाये रखने के लिए उन्हें क़लम

के कैप, नामों की तख्तियाँ, तालों का सामान और दूसरी छोटी-मोटी चीज़ें बनाने का काम दिया जाता रहा। कभी-कभी इस कम्पनी को बिलकुल ही निराले ढंग का ठेका मिल जाता था, जैसे रक्षा मन्त्रालय के लिए बमों के 'कैप-चैम्बर' बनाने का ठेका। बीच-बीच में इस तरह के ठेके मिलते रहने के बावजूद मारुति लि० कर्ज़ों की दलदल में धँसती गयी। 1976 के अन्त तक उस पर 2 करोड़ 30 लाख रुपये का क़र्ज़ा चढ़ चुका था, जो कि उसकी 2 करोड़ 64 लाख रुपये की बुनियादी जमा पूँजी के लगभग बराबर ही था।

अगर लोग मारुति को 'माँ रोती' कहने लगे थे तो इसमें ग़लत क्या था।

परिशिष्ट 2

सेंसरशिप की मार्गदर्शिकाएँ

प्रकाशनार्थ नहीं (गोपनीय)

1. सेंसरशिप का उद्देश्य अखबारों का इस सम्बन्ध में मार्गदर्शन करना तथा उन्हें इसके बारे में सलाह देना है कि वे अनधिकृत, दायित्वहीन अथवा निराशाजनक समाचार, रिपोर्टें, अटकलबाज़ियाँ या अफ़वाहें छापने से कैसे बचें। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए इन मार्गदर्शिकाओं का लक्ष्य यह है कि देश में सार्वजनिक सुव्यवस्था बनाये रखने, स्थायित्व तथा आर्थिक प्रगति के लिए अनुकूल वातावरण बनाये रखने में समाचार-पत्र जगत् के सभी हिस्सों का स्वैच्छिक सहयोग प्राप्त किया जाये।

2. सेंसरशिप की परिधि में हर समाचार, रिपोर्ट, टिप्पणी, वक्तव्य, दृश्य अभिव्यक्ति, फ़िल्म, फोटो, चित्र तथा कार्टून आ जाता है।

3. सेंसरशिप संसद, किसी भी विधानसभा या न्यायालय की कार्रवाइयों से सम्बन्धित समाचारों, टिप्पणियों अथवा रिपोर्टों के प्रकाशन पर लागू होती है। इन संस्थाओं की कार्रवाइयों को प्रकाशित करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए :

(क) संसद तथा विधानसभाओं के प्रसंग में :

1) सरकार की ओर से दिये गये वक्तव्य पूर्ण रूप में अथवा संक्षिप्त रूप में प्रकाशित किये जायें, पर उसकी अन्तर्वस्तु सेंसरशिप के नियमों का उल्लंघन न करे।

2) किसी विषय पर बोलनेवाले सदस्यों के नाम तथा उनके दलों के नाम दिये जायें तथा यह भी उल्लेख किया जाये कि वे विषय के पक्ष में बोले या उसके विरुद्ध।

3) विधेयकों, सुझावों अथवा प्रस्तावों पर होनेवाले मतदान के परिणाम तथ्य रूप में दिये जायें; और मतदान होने की स्थिति में यह उल्लेख किया जाये कि कितने मत पक्ष में थे और कितने विरुद्ध।

4) कोई भी इतर-संसदीय गतिविधि अथवा कोई भी ऐसी चीज़ जो संसद/विधानसभा की सरकारी कार्रवाइयों में से निकाल दी गयी हो, प्रकाशित न की जाये।

(ख) न्यायालयों के प्रसंग में :

1) जजों के तथा वकीलों के नामों का उल्लेख किया जाये।

2) न्यायालय के आदेश का वह भाग, जिसमें यह बताया गया हो कि क्या कार्रवाई की जानी है, प्रकाशित किया जाये परन्तु उपयुक्त भाषा में।

3) सेंसरशिप के नियमों का अतिक्रमण करनेवाली कोई सामग्री न छापी जाये।

4. समाचार, टिप्पणियाँ अथवा रिपोर्टें प्रकाशित करते समय निम्नलिखित बातें ध्यान में रखी जायें :

(क) हर समाचार तथा रिपोर्ट के बारे में यह सुनिश्चित कर लिया जाये कि वह तथ्यों की दृष्टि से बिलकुल ठीक है, और सुनी-सुनायी बातों अथवा अफ़वाहों पर आधारित कोई बात न प्रकाशित की जाये।

(ख) किसी ऐसी आपत्तिजनक सामग्री को, जो पहले प्रकाशित हो चुकी हो, फिर से ज्यों-का-त्यों छाप देने की अनुमति नहीं है।

(ग) संचार के आधारभूत साधनों से सम्बन्धित कोई भी अनधिकृत समाचार अथवा विज्ञापन अथवा चित्र प्रकाशित न किया जाये।

(घ) परिवहन अथवा संचार, आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति तथा वितरण, उद्योगों आदि की सुरक्षा से सम्बन्धित व्यवस्थाओं के बारे में कुछ भी प्रकाशित न किया जाये।

(ङ) किसी भी प्रकाशनार्थ सामग्री का सम्बन्ध आन्दोलनों तथा हिंसात्मक घटनाओं से नहीं होना चाहिए।

(च) ऐसे उद्धरण, जो अपने प्रसंग से अलग हों तथा जिनका अभिप्राय गुमराह करना अथवा कोई विकृत अथवा ग़लत प्रभाव उत्पन्न करना हो, न प्रकाशित किये जायें।

(छ) प्रकाशित सामग्री में इस बात का कोई संकेत न हो कि उसे सेंसर किया गया है।

(ज) नज़रबन्द राजनीतिक व्यक्तियों के नामों का तथा इस बात का कि वे कहाँ नज़रबन्द हैं कोई उल्लेख न किया जाये।

(झ) कोई भी ऐसी सामग्री न प्रकाशित की जाये जिससे इस बात की सम्भावना हो कि :

1) विदेशों के साथ भारत के सम्बन्धों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा;

2) जनतान्त्रिक संस्थाओं के काम-काज में बाधा पड़ेगी;

3) प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, राज्यपालों और सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्चन्यायालयों के न्यायाधीशों की संस्थाओं की निन्दा होगी;

4) आन्तरिक सुरक्षा तथा आर्थिक स्थायित्व के लिए ख़तरा उत्पन्न होगा;

5) सशस्त्र सेना के सदस्यों अथवा सार्वजनिक कर्मचारियों के बीच अश्रद्धा उत्पन्न होगी;

6) देश में क़ानून के आधार पर स्थापित सरकार के प्रति घृणा अथवा तिरस्कार की भावना जागृत होगी;

7) भारत के नागरिकों के विभिन्न वर्गों के बीच वैमनस्य तथा घृणा की भावना को बढ़ावा मिलेगा;

8) वह देश के भीतर किसी भी जगह काम रुक जाने तथा धीमा पड़ जाने का कारण बन जायेगी अथवा इस स्थिति को उत्पन्न कर देगी अथवा उसके लिए उकसावा देगी अथवा उसे उत्तेजित करेगी;

9) राष्ट्रीय ऋण के प्रति अथवा किसी भी सरकारी ऋण के प्रति सार्वजनिक विश्वास की जड़ें खोखली होंगी;

10) किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के किसी वर्ग को करों का भुगतान करने से इंकार करने अथवा उसमें विलम्ब करने का प्रोत्साहन अथवा उकसावा मिलेगा;

11) सार्वजनिक कर्मचारियों के विरुद्ध अपराधपूर्ण बल का प्रयोग करने का उकसावा मिलेगा;

12) लोगों को प्रतिबन्धकारी नियमों को तोड़ने का प्रोत्साहन मिलेगा।

5. आकाशवाणी के प्रसारणों, समाचार एजेंसियों की रिपोर्टों तथा सरकार की ओर से सरकारी तौर पर जारी किये गये बयानों के उद्धरण प्रकाशित करने की अनुमति है, परन्तु शर्त यह है कि इस प्रकार के उद्धरण में जो कुछ कहा गया हो उसका सच्चा तथा यथार्थ विवरण प्रस्तुत करें और कोई भी चीज़ उसके उचित प्रसंग से अलग न की जाये या किसी भी प्रकार विकृत न की जाये।

6. यदि किसी संवाददाता को कोई खबर किसी ऐसे स्रोत से मिली हो जो सरकारी अथवा प्रामाणिक नहीं है तो उसकी पुष्टि प्रेस सूचना अधिकारी से प्राप्त की जा सकती है।

7. यदि किसी अखबार, पत्र-पत्रिका अथवा किसी अन्य दस्तावेज़ में, केवल सम्पादकीय टिप्पणी को छोड़कर, कोई ऐसी रिपोर्ट, टिप्पणी अथवा कोई अन्य सामग्री प्रकाशित हो, जो इन मार्गदर्शिकाओं के शब्दों तथा उनके आशय के प्रतिकूल हो, और यदि यह स्पष्ट हो कि वह केवल स्थानीय संवाददाता की दी हुई सामग्री पर ही आधारित हो सकती है, तो उसके लिए स्थानीय संवाददाता को ही उत्तरदायी ठहराया जायेगा, जब तक कि यह न सिद्ध कर दिया जाये कि सत्य अन्यथा है।

8. ऐसी हर प्रेषित सामग्री की प्रतिलिपि, जिसे पहले से सेंसर न कराया गया हो, प्रधान सेंसर के पास, उसकी जानकारी के लिए भेज दी जाये।

9. किसी समाचार, रिपोर्ट अथवा टिप्पणी को प्रकाशित करना उचित होगा या नहीं, इसके विषय में यदि कोई शंका हो तो मुख्य सेंसर से परामर्श किया जाये।

प्रकाशनार्थ नहीं

व्याख्या 1—सरकार के किसी क़ानून या किसी नीति या किसी प्रशासनिक कार्रवाई को वैध उपायों से बदलवाने या उसका निवारण कराने के उद्देश्य से व्यक्त की गयी नापसन्दीदगी अथवा आलोचना को, और जिन बातों से भाषा-सम्बन्धी भावनाओं या प्रादेशिक जन-समुदायों या जातियों या सम्प्रदायों के बीच असामंजस्य

उत्पन्न होता हो या जिनमें इस प्रकार का असामंजस्य उत्पन्न करने की प्रवृत्ति हो, उनको वैध उपायों से दूर कराने के उद्देश्य से उनकी ओर संकेत करनेवाले शब्दों को इस खण्ड के अभिप्राय की परिधि में आपत्तिजनक सामग्री नहीं माना जायेगा।

व्याख्या 2—इस बात पर विचार करते समय कि कोई सामग्री विशेष इस अधिनियम के अन्तर्गत आपत्तिजनक है अथवा नहीं, ध्यान इस बात की ओर दिया जायेगा कि उन शब्दों, चिह्नों अथवा दृश्य अभिव्यक्तियों का प्रभाव क्या पड़ता है, न कि यह कि उस समाचार-पत्र अथवा समाचार-पत्रक को छापनेवाले प्रेस के रखवाले या प्रकाशक अथवा संपादक का अभिप्राय क्या था।

10. जो कुछ पहले कहा जा चुका है उसे उदाहरणों से स्पष्ट कर देने के लिए यह सलाह दी जाती है कि निम्नलिखित से सम्बन्धित कोई समाचार, रिपोर्ट तथा टिप्पणियाँ प्रकाशित न की जायें :

(क) ऐसी बातें जो सरासर अभद्र अथवा अश्लील हों या जिनका उद्देश्य दूसरे को डरा-धमकाकर अपना काम निकालना हो;

(ख) इतर-संसदीय गतिविधियाँ अथवा कार्रवाइयाँ, जैसे धरने, बैठकी हड़तालें, मंच की ओर झपट पड़ना, चिल्लाना, अध्यक्ष की आज्ञा का पालन करने से इंकार करना, क्योंकि ये बातें कार्रवाइयों का अंग नहीं हैं;

(ग) ऐसी बातें जिनमें (प्रदेश, धर्म, नस्ल, भाषा अथवा जाति पर आधारित) विभिन्न जन-समुदायों के बीच शत्रुता, घृणा अथवा मनमुटाव की भावना को बढ़ावा देने की प्रवृत्ति हो;

(घ) समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं, प्रकाशनों, पुस्तकों से लिये गये ऐसे उद्धरण जो सेंसरशिप के नियमों का उल्लंघन करते हों;

(ङ) वे बातें जिन्हें अध्यक्ष ने कार्रवाई में से निकलवा दिया हो;

(च) ऐसी बातें जो विदेशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को बढ़ावा देने में बाधक हों;

(छ) ऐसी बातें जो देश की सुरक्षा तथा अखण्डता की आवश्यकताओं का अतिलंघन करती हों;

(ज) ऐसी बातें जिनमें जनतान्त्रिक संस्थाओं के काम-काज को ध्वस्त करने की प्रवृत्ति हो।

प्रकाशनार्थ नहीं

8 मार्च 1976 से आरम्भ होनेवाले संसद के अधिवेशन की कार्रवाइयों के समाचार देने के सम्बन्ध में मार्गदर्शिकाएँ

1. संसद एक सर्वसत्ताधारी संस्था है और, इसलिए, उसकी कार्रवाइयों की अपनी एक पवित्रता है। किसी भी दशा में, जनता का स्वर तथा सर्वसत्ताधारी संस्था होने का संसद का स्वरूप कलंकित नहीं होने देना चाहिए। इसलिए कोई भी ऐसा समाचार, रिपोर्ट अथवा टिप्पणी प्रकाशित न की जाये जिसमें संसद की कार्रवाइयों की पवित्रता को दूषित करने का प्रयत्न किया गया हो या इन कार्रवाइयों को ग़लत अथवा विकृत रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया हो।

2. संसद की कार्रवाइयों से सम्बन्धित समाचारों, रिपोर्टों तथा टिप्पणियों पर डी० आई० एस० आई० आर० 1971 का नियम 48 और उसके अन्तर्गत जारी किये गये क़ानूनी आदेश लागू होते हैं। 26 जून 1975 को जारी किये गये क़ानूनी आदेश 275 (ई), और डी० आई० एस० आई० आर० के नियम 48 के अन्तर्गत 12 अगस्त 1975 तथा 2 फरवरी 1976 को उसमें किये गये संशोधनों के प्रावधान इस प्रसंग में उपयुक्त हैं। इनकी परिधि में वे सभी समाचार, टिप्पणियाँ, अफ़वाहें तथा अन्य रिपोर्टें आ जाती हैं जिनका सम्बन्ध निम्नलिखित बातों से हो :

(क) उक्त नियमों के, जिनमें उनके अन्तर्गत जारी किये गये आदेश भी शामिल हैं, भाग तीन के नियम 31 तथा 33, भाग चार के नियम 36, 38, 39, 43, 46, 47, 48, 50, 51 तथा 52, भाग पाँच, भाग आठ तथा भाग नौ के प्रावधानों में से किसी का भी उल्लंघन अथवा तथाकथित अथवा निहित उल्लंघन; या

(ख) इस प्रकार के उल्लंघन के सम्बन्ध में की गयी कोई कार्रवाई; या

(ग) आन्तरिक सुरक्षा संरक्षण अधिनियम 1971 (1971 का 26वाँ अधिनियम) के प्रावधानों के अन्तर्गत की गयी कोई कार्रवाई; या

(घ) संविधान की धारा 352 के अन्तर्गत 25 जून 1975 को राष्ट्रपति की आपात-स्थिति की घोषणा; या

(ङ) संविधान की धारा 359 के अन्तर्गत 26 जून 1975 को जारी किया गया राष्ट्रपति का आदेश; या

(च) भारत प्रतिरक्षा अधिनियम 1971 (1971 का 42वाँ अधिनियम) के प्रावधानों के अन्तर्गत, या भारत प्रतिरक्षा (संशोधन) अधिनियम 1975 (1975 का 32वाँ अधिनियम) द्वारा संशोधित रूप में इस अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत, या उनके अन्तर्गत बनाये गये नियमों अथवा जारी किये गये आदेशों के अन्तर्गत की गयी कोई कार्रवाई; या

(छ) कोई 'प्रतिकूल रिपोर्ट', उस परिभाषा के अनुसार, जो भारत प्रतिरक्षा तथा आन्तरिक सुरक्षा नियम, 1971 के नियम 36 की धारा 7 में दी गयी है; या

(ज) संविधान की धारा 356 के अन्तर्गत 31 जनवरी 1976 को तमिलनाडु राज्य के सम्बन्ध में जारी की गयी राष्ट्रपति की घोषणा।

3. संसद की कार्रवाइयों के समाचार देते समय आपत्तिजनक सामग्री के प्रकाशन की रोकथाम से सम्बन्धित अधिनियम 1976 में आपत्तिजनक बतायी गयी बातों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। इस अधिनियम में आपत्तिजनक सामग्री की परिभाषा जिस रूप में की गयी है वह इस प्रकार है :

'आपत्तिजनक सामग्री' का अभिप्राय उन सभी शब्दों, चिह्नों अथवा दृश्य अभिव्यक्तियों से है :

(क) जिनसे इस बात की सम्भावना हो कि :

1) भारत में या उसके किसी राज्य में क़ानून के आधार पर स्थापित सरकार के प्रति घृणा अथवा तिरस्कार की भावना उत्पन्न होगी या उसके प्रति अश्रद्धा की भावना को उकसावा मिलेगा और उसके

फलस्वरूप सार्वजनिक अव्यवस्था फैलेगी या फैलने की प्रवृत्ति पैदा होगी; या

2) किसी व्यक्ति को खाद्य-सामग्री अथवा अन्य आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन, आपूर्ति अथवा वितरण में, या आवश्यक सेवाओं में हस्त-क्षेप करने का उकसावा मिलेगा; या

3) सशस्त्र सेनाओं अथवा सार्वजनिक सुव्यवस्था को बनाये रखने का दायित्व सँभालने वाले सशस्त्र दल के किसी सदस्य को अपनी प्रति-बद्धता अथवा अपने कर्त्तव्य से विमुख होने का प्रलोभन मिलेगा, या इस प्रकार के किसी सशस्त्र दल में सेवा करने के लिए लोगों को भरती करने में विघ्न पड़ेगा या इस प्रकार के सशस्त्र दलों के अनुशासन पर कोई आँच आयेगी।

4) विभिन्न धार्मिक, नस्ली, भाषाई अथवा प्रादेशिक जनसमुदायों अथवा जातियों अथवा सम्प्रदायों के बीच शत्रुता, घृणा अथवा मनमुटाव की भावनाओं अथवा असामंजस्य को बढ़ावा मिलेगा; या

5) जनसाधारण में या जनसाधारण के किसी भाग में ऐसा भय अथवा आतंक उत्पन्न होगा जिससे किसी व्यक्ति को राज्यसत्ता के विरुद्ध अथवा सार्वजनिक शान्ति के विरुद्ध अपराध करने की प्रेरणा मिले; या

6) किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के किसी वर्ग अथवा समुदाय को किसी व्यक्ति की हत्या करने, कोई उपद्रव करने अथवा अन्य कोई अपराध करने का उकसावा मिले;

(ख) जो कि :

1) भारत के राष्ट्रपति, भारत के उप-राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, लोकसभा के अध्यक्ष अथवा किसी राज्य के राज्यपाल के प्रति निन्दाजनक हो;

2) सरासर अभद्र हो, अथवा अश्लील हो, अथवा जिसका उद्देश्य किसी को डरा-धमकाकर अपना काम निकालना हो।

एन० डी० एस० 12 : यू० एन० आई० के सभी केन्द्रों तथा सभी ग्राहकों के लिए मीरचंदानी की ओर से

कल बहुत रात गये सेंसर कार्यालय ने हमें मौखिक रूप से निम्नलिखित नयी मार्गदर्शिकाओं की सूचना दी। ये आपकी जानकारी के लिए हैं, और इन्हें प्रकाशित न किया जाये :

निम्नलिखित तीन मामलों के बारे में कोई खबर न छापी जाये :

1. संसद के आगामी अधिवेशन का कार्य;
2. सुप्रीम कोर्ट में प्रधानमंत्री के चुनाव का मुक़दमा; और
3. जिन पार्टियों पर प्रतिबन्ध लगा हुआ है उनके किसी भी प्रतिनिधि का कोई भी बयान।

प्राथमिकता

डी० ई० एल० 65 जनरल

संपादकों के लिए परामर्श : केवल आपकी जानकारी के लिए, प्रकाशनार्थ नहीं। आज सुबह डी० ई० एल० 4 के अन्तर्गत इससे पहले जारी किये गये परामर्श से आगे।

मुख्य सेंसर ने संसद की कार्रवाइयों के बारे में समाचार देने के सम्बन्ध में निम्नलिखित मार्गदर्शिकाएँ भेजी हैं :

(क) मंत्रियों के वक्तव्य पूर्ण रूप में या संक्षिप्त रूप में प्रकाशित किये जा सकते हैं, परन्तु उसकी विषय-वस्तु से सेंसरशिप के नियमों का अतिक्रमण नहीं होना चाहिए।

(ख) किसी बहस में भाग लेनेवाले संसद-सदस्यों के भाषण किसी भी रूप में या किसी भी ढंग से प्रकाशित नहीं किये जायेंगे, परन्तु उनके नामों का और जिन दलों से उनका सम्बन्ध है उनके नाम प्रकाशित किये जा सकते हैं। बहस में भाग लेनेवाले सदस्यों के नाम प्रकाशित करते समय इस बात का उल्लेख किया जाये कि उन्होंने किस सुझाव का समर्थन किया या विरोध।

(ग) किसी विधेयक, सुझाव, प्रस्ताव आदि पर मतदान के परिणामों का समाचार यथार्थ रूप में दिया जाये। मतदान होने की स्थिति में इस बात का उल्लेख किया जाये कि कितने मत पक्ष में थे और कितने विरुद्ध।

संपादकगण : हमसे मुख्य प्रेस सलाहकार की ओर से जारी की गयी निम्नलिखित मार्गदर्शिकाएँ आपकी जानकारी के लिए प्रसारित करने को कहा गया है (प्रकाशनार्थ नहीं)।

मौजूदा इमर्जेंसी में अखबारों के लिए मार्गदर्शिकाएँ

आन्तरिक उपद्रव से भारत की सुरक्षा तथा उसके स्थायित्व के लिए उत्पन्न हो जानेवाले खतरे का मुक़ाबला करने के लिए राष्ट्रीय इमर्जेंसी की घोषणा का यह तकाज़ा है कि खबरों तथा टिप्पणियों की व्यवस्था करने तथा उन्हें भेजने में अत्यधिक सावधानी तथा सतर्कता बरती जाये। अखबारों को यह सलाह देना आवश्यक है कि वे अनधिकृत, ग़ैर-ज़िम्मेदाराना या निराशाजनक खबरें, अटकल तथा अफ़वाहें प्रकाशित करने से सावधान रहें; साथ ही अखबारों को जन-साधारण के प्रति अपना दायित्व निभाने का पूरा अवसर मिलना चाहिए। अखबार इमर्जेंसी के दौरान सरकार का तथा जन-साधारण का एक सबसे सशक्त सहारा होते हैं। कोई भी जानकारी किस ढंग से छापी, प्रकाशित तथा प्रसारित की जाती है इससे उन लोगों को बेहद बल मिल सकता है जो देश की आन्तरिक सुरक्षा के लिए ख़तरा पैदा कर रहे हैं।

आन्तरिक ख़तरे का मुक़ाबला करने के लिए जिस इमर्जेंसी की घोषणा की गयी है उसमें सरकार को मुख्यतः देश के भीतर के उन गुमराह और विध्वंसक तत्वों की ओर से चिन्ता है जो अपनी हरक़तों से राष्ट्र की शान्ति तथा उसके स्थायित्व में विघ्न

डालने की कोशिश कर सकते हैं। एक जनतान्त्रिक देश में, जिसमें नागरिक राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्यों तथा दायित्वों के प्रति पूरी तरह सजग हों, सरकार का उद्देश्य हर मामले में उन व्यापक तथा असाधारण शक्तियों पर निर्भर रहना उतना नहीं होता, जो उसे प्रदान की गयी हों, जितना कि राष्ट्र को इमर्जेंसी के कारणों से छुटकारा दिलाने के बुनियादी काम को पूरा करने के लिए अनुकूल वातावरण बनाये रखने में देश की आबादी के सभी हिस्सों का ऐच्छिक सहयोग प्राप्त करना।

सामान्य मार्गदर्शन

1. यदि कोई समाचार स्पष्टतः खतरनाक हो, तो अखबार उसे स्वयं ही न छापकर मुख्य प्रेस सलाहकार की सहायता करें। यदि कोई शंका हो तो उस खबर को निकटतम प्रेस सलाहकार के पास भिजवाया जा सकता है और भिजवा दिया जाना चाहिए।

2. यदि कोई सामग्री प्रकाशित करने से पहले जाँच के लिए भेज दी गयी हो तो प्रेस सलाहकार की सलाह को माना जाये।

3. यदि किसी मामले से सम्बन्धित ख़बरों अथवा टिप्पणियों के प्रकाशन के विरुद्ध सलाह देते हुए मार्गदर्शन किया जा रहा हो, तो उस मामले का कोई उल्लेख तब तक न किया जाये या उसका कोई हवाला तब तक न दिया जाये जब तक कि उसके लिए नये सिरे से मंजूरी न प्रप्त कर ली गयी हो, क्योंकि हमेशा संयम से काम लिया जाना चाहिए और सनसनीखेज़ बातें छापने से बचना चाहिए; हम एक बार फिर दोहरा दें, छापने से बचना चाहिए। विशेष रूप से पोस्टरों के चित्रों तथा शीर्षकों में इस बात का पालन किया जाना चाहिए।

4. अफ़वाहों का कोई प्रचार न किया जाये।

5. जब कोई दस्तावेज़ या फ़ोटो-चित्र सरकारी तौर पर जारी किया जाये तो इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि उसके साथ जो विवरण अथवा अखबार के लिए हिदायत भेजी जाये उसका आशय बाक़ी रखा जाये।

6. किसी भारतीय अथवा विदेशी अख़बार में यदि कोई आपत्तिजनक सामग्री प्रकाशित हो चुकी हो तो उसे दुबारा प्रकाशित न किया जाये।

7. संचार के आधारभूत साधनों के सम्बन्ध में कोई भी अनधिकृत ख़बर या विज्ञापन या चित्र प्रकाशित न किया जाये।

8. परिवहन अथवा संचार, आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति तथा वितरण आदि की सुरक्षा से सम्बन्धित व्यवस्था के बारे में कुछ भी प्रकाशित न किया जाये।

9. कोई भी ऐसी सामग्री प्रकाशित न की जाये जिससे सशस्त्र सेना के सदस्यों या सरकारी नौकरों के बीच अश्रद्धा की भावना पैदा हो सकती हो।

10 कोई भी ऐसी सामग्री प्रकाशित न की जाये जिससे भारत में क़ानून के आधार पर स्थापित सरकार के प्रति घृणा अथवा तिरस्कार उत्पन्न हो या अश्रद्धा की भावना को उकसावा मिले।

11. कोई भी ऐसी सामग्री प्रकाशित न की जाये जिससे भारत के निवासियों के विभिन्न वर्गों के बीच शत्रुता तथा घृणा की भावना को बढ़ावा मिलने की सम्भावना हो।

12. कोई भी ऐसी सामग्री प्रकाशित न की जाये जिसमें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी भी जगह काम बन्द हो जाने या इसकी गति धीमी पड़ जाने का कारण बन जाने की या उस स्थिति को वस्तुतः पैदा कर देने की उसके लिए उकसावा देने या उत्तेजना प्रदान करने की सम्भावना निहित हो।

13. कोई भी ऐसी सामग्री प्रकाशित न की जाये जिससे राष्ट्रीय ऋण के प्रति अथवा किसी भी सरकारी ऋण के प्रति सार्वजनिक विश्वास की जड़ें खोखली हो जाने की सम्भावना हो।

14. कोई भी ऐसी सामग्री प्रकाशित न की जाये जिससे किसी व्यक्ति को या व्यक्तियों के किसी वर्ग को करों का भुगतान करने से इंकार करने या उसे टाल देने का प्रोत्साहन या उकसावा मिले।

15. कोई भी ऐसी सामग्री प्रकाशित न की जाये जिससे सार्वजनिक कर्मचारियों के विरुद्ध अपराधपूर्ण बल का प्रयोग करने के लिए भड़कावा मिलने की सम्भावना हो।

16. प्रतिकूल रिपोर्ट का अभिप्राय किसी भी ऐसी, सच्ची या झूठी रिपोर्ट, वक्तव्य अथवा दृश्य रिपोर्ट से है जो, या जिसका प्रकाशन, ऊपर बताये गये किसी भी हानिकर कार्य को करने के लिए उकसावा हो।

अखबारों के लिए सामान्य मार्गदर्शिकाएँ

अखबारों को सलाह दी जाती है कि सन्देश, समाचार, रिपोर्टें तथा टिप्पणियाँ आदि भेजते समय निम्नलिखित मुख्य बातों का ध्यान रखें।

1. जनतान्त्रिक संस्थाओं के काम-काज में विघ्न डालने की कोई भी कोशिश।

2. सदस्यों को इस्तीफ़ा देने पर मजबूर करने की कोई कोशिश।

3. आन्दोलनों तथा हिंसात्मक घटनाओं से सम्बन्धित कोई भी बात।

4. सशस्त्र सेना अथवा पुलिस को भड़काने की कोई कोशिश।

5. देश की एकता को खतरे में डालकर विघटन तथा सांप्रदायिक आवेगों को बढ़ावा देने की कोई कोशिश।

6. नेताओं के विरुद्ध झूठे आरोपों की रिपोर्टें।

7. प्रधानमंत्री के पद को निंदित करने की कोई कोशिश।

8. सामान्य काम-काज में विघ्न डालने के लिए क़ानून तथा व्यवस्था को खतरे में डालने की कोई कोशिश।

9. आन्तरिक स्थायित्व, उत्पादन तथा आर्थिक सुधार की सम्भावनाओं को खतरे में डालने की कोई कोशिश।

सेंसर का फोन

सीरिया के दूतावास पर अरब छात्रों के कब्ज़ा कर लेने के बारे में केवल 'समाचार' की भेजी हुई खबर छापी जाये।

5-6-1976

सेंसर से श्री राघवन

आन्ध्र प्रदेश हाईकोर्ट के जजों के तबादले के बारे में कोई खबर प्रकाशित न की जाये।
8 जुलाई, 1976
5.30 बजे शाम

सेंसर के दफ़्तर से

सेंसर से श्री मेहरसिंह ने फोन करके कहा—समझा जाता है कि श्री जयप्रकाश नारायण ने प्रधानमंत्री के कोष से जयप्रकाश के इलाज के लिए डायलिसिस यंत्र खरीदने के लिए प्रधानमंत्री के योगदान के सम्बन्ध में प्रधानमंत्री को लिखा गया अपना पत्र प्रकाशन के लिए भेजा है। आपसे अनुरोध है कि इस खबर को इस्तेमाल न करें।

सेंसर रूम से आर्य

इसके (जयप्रकाश के पत्र के) सम्बन्ध में 'समाचार' खबर भेजेगा। उसे प्रकाशन की मंजूरी दे दी गयी है।

(ह०)
समाचार संपादक

16-6-1976

सेंसर के दफ़्तर से फोन (जे० एन० सिन्हा)

आज दिल्ली में मिज़ो प्रतिनिधिमण्डल के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर हुए हैं। इस समझौते तथा उसकी पृष्ठभूमि के बारे में पी० आई० बी० ने सामग्री भेजी है। इस सबन्ध में कृपया कोई आलोचनात्मक टिप्पणी न की जाये।
1 जुलाई, 1976

सेंसर का सन्देश

अगर एम० एन० एफ० के नेता लालडेंगा कोई बयान जारी करें तो वह सेंसर के पास भेज दिया जाये।

(ह०)
समाचार संपादक

2-7-1976

सेंसर का टेलीफोन

अखबार में चार्ल्स सोबराज के बारे में, जो एक अन्तर्राष्ट्रीय धोखेबाज है और दिल्ली में धोखाधड़ी और ज़हर देने के इलज़ाम में पकड़ा गया है, कोई खबर न छापी जाये। यह टेलीफोन श्री भट्टाचार्य ने लिया था।
6 जुलाई, 1976

उप-मुख्य सेंसर आर्य का फोन

युगांडा में इस्राइली हमले के बारे में कोई खबर, टिप्पणी या चित्र 14 जुलाई तक न छापा जाये। विशेष रूप से इस्राइली कार्रवाई की प्रशंसा करने और उसे उचित ठहराने की कोशिश न की जाये।
8 जुलाई, 1976

सेंसर का फोन (राघवन)

अगर कोई संवाददाता तटस्थ पूल सम्मेलन से किसी वाक्-आउट के सम्बन्ध में खबर भेजे तो उसे पहले सेंसर करा लिया जाये।

10-7-1976 (ह०)
समाचार संपादक

सेंसर का सन्देश

वाशिंगटन से आनेवाली इस आशय की कोई खबर न छापी जाये कि अमरीका के धनी व्यापारी श्री कुमार पोद्दार का पासपोर्ट रद्द कर दिया गया है।

14 जुलाई, 1976 (ह०)
प्रतिलिपि : संपादक को समाचार संपादक

सेंसर का फोन

देश में क़ीमतों की स्थिति से सम्बन्धित खबरें, टिप्पणियाँ या संपादकीय पहले सेंसर करा लेने के लिए भेजे जायें।

17-7-1976 (ह०)
समाचार संपादक

यह बात क़ीमतें गिरने से सम्बन्धित रिपोर्टों पर लागू नहीं होती (सेंसर से श्री ठकराल)।

सेंसर का सन्देश

जयप्रकाश के बारे में कोई समाचार न छापा जाये।
20 जुलाई, 1976

सेंसर का फोन (राघवन)

कृपया उत्तर प्रदेश में परिवार नियोजन कार्यक्रम और शिक्षा-कर के बारे में इनकी बुराई करते हुए कोई खबर या टिप्पणी या संपादकीय न छापें।

28-7-1976 (ह०)
समाचार संपादक

सेंसर का निर्देश

1. मुख्य सेंसर की एक हिदायत के विरुद्ध दिल्ली हाईकोर्ट में दायर की गयी स्टेट्समैन की रिट के बारे में कुछ भी न छापा जाये।

2. जम्मू-कश्मीर में लागू किये गये अध्यादेशों की वैधता के सम्बन्ध में कोई खबर या टिप्पणी न छापी जाये।

29-7-1976 (ह०)
समाचार संपादक

सर्विस नम्बर 2/8/7/2/1 (बंगलौर/विजयवाड़ा/मद्रास/बम्बई/दिल्ली)
हैदराबाद 30 जुलाई

हैदराबाद के श्री आर० श्रीनिवासन की ओर से बंगलौर के श्री टी० आर० के नाम और सभी समाचार संपादकों के नाम (सभी केन्द्रों के) प्रतिलिपि।

श्री टी० नागी रेड्डी की अंत्येष्टि के बारे में समाचार प्रकाशित करने के बारे में सेंसर की ओर से निम्नलिखित हिदायतें दी गयी हैं :

"हमें खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि स्व० श्री टी० नागी रेड्डी की अंत्येष्टि की खबर संक्षिप्त रूप में छापें। उसमें शव के पोस्टमार्टम, उनके अण्डरग्राउण्ड जीवन और अंत्येष्टि के समय उपस्थित लोगों की संख्या आदि का उल्लेख न करें।"

सेंसर का फोन (राघवन)

विनोबा भावे से सम्बन्धित किसी भी खबर को पहले सेंसर करा लें।
9 अगस्त, 1976

सेंसर के दफ़्तर से श्री ठुकराल

राज्यसभा के सदस्य श्री सुब्रह्मण्यम स्वामी के बारे में इस आशय की कोई खबर या टिप्पणी न छापी जाये कि आज संसद में उन्होंने व्यवस्था का एक प्रश्न उठाया था; संसद के प्रसंग में उनसे सम्बन्धित कोई अन्य रिपोर्ट भी प्रकाशित न की जाये।
10-8-76

सेंसर का फोन (पारधी)

जेल सुधार के बारे में लोकसभा में उठाये गये प्रश्न के सम्बन्ध में कुछ न छापा जाये।

(ह०)
11-8-1976 समाचार संपादक

सेंसर का फोन

जमायते-उल्माए-हिन्द ने कुछ प्रस्ताव पास किये हैं। एक प्रस्ताव लेबनान में सीरिया के हस्तक्षेप के बारे में है। इस प्रस्ताव को छापने से पहले सेंसर करा लें।

(ह०)
24-8-1976 समाचार संपादक

श्री राघवन, सेंसर

संसद की आज की कार्रवाई छापने से पहले सेंसर करा लें।

(ह०)
1 सितम्बर, 1976 समाचार संपादक

सेंसर से

भारत की बार कौंसिल के अध्यक्ष राम जेठमलानी के बारे में, जो इस समय अमरीका में हैं, सभी खबरें छापने से पहले सेंसर करा ली जायें।

(ह०)
6-9-1976 समाचार संपादक

सेंसर का फोन

पंजाब के परिवहन राज्य मंत्री श्री दिलबागसिंह दलेके ने पंजाब-हरियाणा परिवहन विवाद के सम्बन्ध में विधानसभा में एक बयान दिया है जिसमें अम्बाला से चंडीगढ़ के बीच एक गलियारे का उल्लेख है। इस गलियारे के बारे में सारे उल्लेख काट दिये जायें।

9 सितम्बर, 1976 (ह०)
प्रतिलिपि : संपादक को समाचार संपादक

सेंसर का सन्देश (श्री राघवन)

विमान का अपहरण करनेवालों के नाम, राष्ट्रीयता तथा उनके इरादे के बारे में आँखों-देखे हाल पर आधारित कोई अटकलबाजी की खबर न प्रकाशित की जाये।

11 सितम्बर, 1976 (ह०)
प्रतिलिपि : संपादक को गिरीश सक्सेना

सेंसर से श्री लक्ष्मीचंद

अमरीका की फ़िलिप्स पेट्रोलियम कम्पनी से सम्बन्धित सारी खबरें सेंसर के लिए भेजी जायें।

15-9-1976 (ह०)
ए० पी० सक्सेना
समाचार संपादक

सेंसर के दफ़्तर से श्री ठुकराल का फोन

आंध्र प्रदेश के विधायक स्व० श्री नागी रेड्डी ने आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री के खिलाफ़ अदालत की मानहानि के सम्बन्ध में सुप्रीम कोर्ट में जो रिट दायर की है उसकी कारंवाई प्रकाशित न की जाये।

20 सितम्बर, 1976 (ह०)
प्रतिलिपियाँ : संपादक आर० डी० जोशी
नई दिल्ली ब्यूरो चीफ़ सब
डेस्क

सेंसर का फोन (ए० पी० सिंह)

न्यूयार्क टाइम्स के संवाददाता विलियम बार्डर्स ने केवल सिंह को इंटरव्यू दिया था। यह इंटरव्यू या इससे सम्बन्धित कोई खबर न छापी जाये।

20 सितम्बर, 1976 (ह०)
त्रिपाठी
सब-एडिटर

सेंसर का फोन (ए० पी० सिंह)

जयगढ़ क़िले में दफ़न खज़ाने की खोज के बारे में कोई खबर सेंसर को दिखाये बिना न छापी जाये।

(ह०)
त्रिपाठी
सब-एडिटर

21 सितम्बर, 1976
प्रतिलिपियाँ : संपादक
ब्यूरो
सभी चीफ़ सब

श्री लक्ष्मीचंद सेंसर

कृपया डाकू सुंदर के बारे में कोई अटकलबाज़ी की या सनसनीखेज़ खबर न छापें क्योंकि उससे छानबीन के काम में बाधा पड़ सकती है। इस सम्बन्ध में आपसे अनुरोध है कि आप वही छापें जो सरकारी तौर पर कहा जाये।

(ह०)
29-9-1976 एस० के० वर्मा
समाचार उप-संपादक

सेंसर का सन्देश

विदेश मंत्रालय भारत-पाक वार्ता के बारे में एक बयान जारी कर रहा है। आपसे अनुरोध है कि आप किसी टिप्पणी या संपादकीय के बिना केवल उसका सरकारी विवरण ही छापें।

(ह०)
7-10-1976 ए० पी० सक्सेना
समाचार संपादक

के० बी० शर्मा सेंसर का फोन

कृपया पंजाब की धारीवाल मिल में हड़ताल के बारे में कोई खबर न छापें।

6-10-1976 एस० के० वर्मा
समाचार उप-संपादक

श्री रतन सेंसर का फोन

उड़ीसा के छः कांग्रेसी नेताओं ने, जिनमें केन्द्रीय मंत्री जे० बी० पटनायक भी शामिल हैं, पार्टी के मामलात के बारे में पुरी में एक बयान दिया है। इसे सेंसर करा लिया जाये।

12-10-1976 शिवदास
चीफ़ सब

सेंसर का फोन

शेख़ अब्दुल्ला की प्रेस कान्फ्रेंस की रिपोर्ट छापने से पहले सेंसर को भेजी जाये।

(ह०)
12-10-1976 ए० पी० सक्सेना
समाचार संपादक

सेंसर ठुकराल का संदेश

लुसाका में, जहाँ रक्षामंत्री बंसीलाल ठहरे हुए थे, बम फटने की आशंका के बारे में कोई खबर न छापी जाये।

14 अक्तूबर, 1976

(ह०)
शिवदास
चीफ़ सब

लक्ष्मीचंद सेंसर

ईरान को अमरीकी हथियारों की बिक्री के बारे में सारी खबरें और संपादकीय सहित सारी टिप्पणियाँ छापने से पहले सेंसर करा ली जायें।

16-10-1976

(ह०)
समाचार संपादक

सेंसर का फोन

कुछ चुने हुए सीमावर्ती क्षेत्रों में नेपाली नागरिकों पर भारत सरकार की ओर से लगायी गयी पाबंदियों के बारे में कोई खबर और इस विषय में नेपाली सरकार तथा भारतीय राजदूत के बयान छापने से पहले सेंसर कराने के लिए भेजे जायें।

16-10-1976

(ह०)
ए० पी० सक्सेना
समाचार संपादक

सेंसर का फोन

फ़ीज़ो से मिलने के लिए नागा शांति परिषद् के प्रतिनिधिमंडल के इंग्लैंड जाने के बारे में कोई खबर न छापी जाये।

20-10-1976

ए० पी० सक्सेना

उप-मुख्य सेंसर, पिल्ले

हैदराबाद में 29 अक्तूबर से 7 नवम्बर तक चौथा एशियन बैडमिंटन टूर्नामेंट होने जा रहा है। इसमें चीनी टीम के भाग लेने की खबर को बहुत न उछाला जाये (न विवरण के रूप में, न खास फ़ोटो छापकर)।

21-10-1976

(ह०)
ए० पी० सक्सेना
समाचार संपादक

सेंसर से जे० एन० सिन्हा

जम्मू-कश्मीर के नये मंत्रियों के शपथ-ग्रहण के प्रश्न पर, जो आज होने वाला था, केवल जम्मू-कश्मीर सरकार की प्रेस विज्ञप्ति और मुख्यमंत्री का बयान छापा जाये। उसके बारे में कोई टिप्पणी जैसी रिपोर्ट न छापी जाये।

4-11-1976

(ह०)
ए० पी० सक्सेना
समाचार संपादक

सेंसर का सन्देश (लक्ष्मी शंकर)

ए० आई० सी० सी० के अधिवेशन में अम्बिका सोनी और महेश जोशी के भाषण न छापे जायें।

प्रधानमंत्री के भाषण के लिए भी 'समाचार' की भेजी हुई खबर को ही नमूना बनायें।

(ह०)
शिवदास

21 नवम्बर, 1976

सेंसर के दफ़्तर से श्री राघवन का फोन

आज मध्य प्रदेश की विधानसभा में पेश किये गये पहले पूरक बजट की खबर में से नेशनल हेरॉल्ड को चन्दा दिये जाने का हवाला काट दिया जाये।

(ह०)
एस० बनर्जी

30-11-1976

जे० एन० सिन्हा (सेंसर)

दिल्ली की वज़ीरपुर जैसी बस्तियों में औद्योगिक योजनाओं के लिए नवयुवक उद्यमियों के टैक्स देने से इंकार कर देने के बारे में केवल सरकारी विज्ञप्ति ही इस्तेमाल की जाये।

(ह०)
ए० पी० सक्सेना
समाचार संपादक

4-12-1976

सेंसर का सन्देश (पारधी)

14 दिसम्बर को श्री संजय गांधी का जन्मदिवस मनाने के बारे में मुख्यमंत्रियों या कांग्रेसी नेताओं का कोई बयान इस्तेमाल न किया जाये।

(ह०)
शिवदास

9 दिसम्बर, 1976

जे० एन० सिन्हा (मुख्य सेंसर का दफ़्तर)

अमरीका से भारत को 'स्काईहॉक' जेट फ़ाइटर विमानों की सप्लाई के बारे में कोई खबर न छापें। केवल सरकारी घोषणा ही इस्तेमाल की जाये।

10 दिसम्बर, 1976

प्रतिलिपि : संपादक को

लक्ष्मीकान्त (सेंसर)

दक्षिण अफ्रीकी भारतीय परिषद् के अध्यक्ष श्री ए० एम० मूला का रंगभेद के बारे में कोई बयान या भाषण आपके प्रतिष्ठित पत्र में न छपने पाये।

(ह०)
समाचार संपादक

16-12-1976

सेंसर से श्री रतन

पार्टी के अन्दर की खींचातानी और झगड़ों और कांग्रेस तथा युवक कांग्रस की टक्कर के बारे में कोई खबर न छापी जाये।

19-12-1976 (ह०)
ए० पी० सक्सेना

सेंसर के दफ़्तर से आनन्द पारखी का फोन

पाकिस्तानी दूतावास ने जिन्ना की जन्मशती के अवसर पर किसी समारोह का आयोजन किया है। एक समारोह आज इण्डिया इण्टरनेशनल सेंटर में है। एक और समारोह में हमारे राष्ट्रपति को 25 दिसम्बर को राष्ट्रपति भवन में जिन्ना पदक दिया जायेगा। हो सकता है कुछ और समारोह भी हों। इन समारोहों की खबरें ज़रा नीचे स्वरों में दी जायें।

23-12-1976 (ह०)
ए० पी० सक्सेना
समाचार संपादक

श्री मेहरसिंह (सेंसर) का फोन

सेंसर की मंजूरी लिये बिना उत्तर-पूर्वी प्रदेश में विद्रोह के बारे में कोई खबर या लेख न छापा जाये।

23-12-1976 (ह०)
समाचार संपादक

सेंसर से पारखी

डायनामाइट काण्ड के सिलसिले में मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट की अदालत में दिया गया डॉ० कुमारी हुलगोल का बयान न छापा जायें।

23-12-1976 (ह०)
समाचार संपादक

के० बी० शर्मा (सेंसर)

रायपुर में लगाये जानेवाले टेलीविज़न टावर के ढह जाने के बारे में कृपया कोई समाचार न छापें।

28-12-1976 (ह०)
एच० डी० जोशी

मुख्य सेंसर के दफ़्तर से

अफ्रीकी नेशनल कांग्रेस के श्री एम० मूला के बयानों का, जो अफ्रीकी जनता की आकांक्षा का प्रतिनिधित्व करते हैं, पूरी तरह प्रचार किया जाय। उन्होंने कल भोपाल में एक बयान दिया था और शीघ्र ही एक और बयान देनेवाले हैं।

दक्षिण अफ्रीकी सरकार के पिट्ठू संगठन दक्षिण अफ्रीकी भारतीय परिषद् के अध्यक्ष श्री ए० एम० मूला के सम्बन्ध में पहले जो हिदायत दी गयी थी, वह अब भी सार्थक है।

(ह०)
समाचार संपादक

4-1-1977

श्री आर्य (उप-मुख्य सेंसर)

नेताओं की मीटिंगों सहित कांग्रेस तथा युवक कांग्रेस के पार्टी के अन्दर के मामलात के बारे में सारी खबरें छापने से पहले कृपया सेंसर कराने के लिए भेजी जायें।

(ह०)
एस० के० वर्मा
समाचार उप-संपादक

8 जनवरी, 1977

अनुक्रमणिका

□ □

पाँच अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकें

◆ **सब दरबारी :**—लेखक जनार्दन ठाकुर। इन्दिरा गांधी को जिन लोगों ने इस तरह घेर रखा था कि देश की जनता उनकी आंखों से ओझल हो गई थी, उन 'दरबारियों' की अतंरंग और दिलचस्प कहानी।

पेपरबैक संस्करण : 18 रुपये : पुस्तकालय संस्करण : 24 रुपये

◆ **इन्दिरा गांधी के दो चेहरे :**—लेखिका उमा वासुदेव। लेखिका का श्रीमती इन्दिरा गांधी से दशकों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और उनकी लिखी श्रीमती गांधी की जीवनी भी विशेषत: प्रसिद्ध हुई थी। अब उन्हीं द्वारा दिखलाया गया इन्दिराजी का दूसरा चेहरा इस पुस्तक में देखने को मिलेगा।

पेपरबैक संस्करण : 18 रुपये : पुस्तकालय संस्करण : 24 रुपये

◆ **भारतीय जेलों में पाँच साल**—बिहार की जेलों में बिना दावा दायर किये या कोई मुकदमा चलाये पाँच वर्ष से अधिक बन्दी रखी जाने वाली, इंग्लैंड निवासी ३३-वर्षीया युवती मेरी टाइलर की कहानी। दारुण दुर्दशा में बिताये गये ये वर्ष लेखिका की निजी कहानी नहीं रह गये हैं – देश की जेलों में बन्द लोगों के प्रति व्यवस्था की अमानुषिक दृष्टि और दुर्व्यवहार इससे बेपर्द हुए हैं – विशेषत: 'नक्सलवादी' कहे जाकर पुकारे जाने वाले नवयुवक और नवयुवतियों के प्रति पिछली सरकार का नितांत नृशंस रवैय्या नंगे और घिनौने रूप में स्पष्ट दीख पड़ने लगा है।

पेपरबैक संस्करण : 14 रुपये : पुस्तकालय संस्करण : 20 रुपये

◆ **समुचित तकनीक : बेहतर भी, कारगर भी**—अर्थशास्त्र का अध्ययन – मानो जनता का भी अस्तित्व हो। अर्थशास्त्री ई०एफ० शुमाकर की विश्वविख्यात पुस्तक का अनुवाद जिसमें उन्होंने पश्चिम की आकाश-बेल की तरह फैलती हुई तकनीक के सांघातिक परिणामों से सचेत करते हुए छोटी—और इसीलिए बेहतर— तकनीक का समर्थन किया है। श्री शुमाकर गाँधीजी की इस अर्थनीति के, कि हमें बहुमात्रा में उत्पादन नहीं वरन् जनता के अधिकांश द्वारा उत्पादन की आवश्यकता है, समर्थक हैं।

पेपरबैक संस्करण : 18 रुपये : पुस्तकालय संस्करण : 24 रुपये

◆ **अदालती पुनरीक्षण या संसद से टकराव**—सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस श्री हंसराज खन्ना ने इस पुस्तक में तर्क देकर और अपने संबंधित निर्णय से प्रासंगिक अंश उद्धृत करते हुए बतलाया है कि केशवानन्द भारती के केस में उच्चतम न्यायालय का निर्णय और संविधान के बुनियादी ढांचे की संकल्पना से अदालतों और विधानमंडल के बीच टकराव की स्थिति उत्पन्न नहीं होती, और यह निर्णय आर्थिक प्रगति के लिए बनाये जाने वाले कानूनों के मार्ग में बाधक नहीं है।

पेपरबैक संस्करण : 9 रुपये 50 पैसे : पुस्तकालय संस्करण : 15 रुपये

राधाकृष्ण 2, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-2